श्रीः ।

चरित्र-चन्द्रिका ।

प्रथम भाग ।

सम्पादक—

गोविन्द शास्त्री दुगवेकर ।

प्रकाशक—

मैनेजर-निगमागम बुकडिपो, भारतधर्म सिंडिकेट

लिमिटेड, बनारस ।

—०:*:०—

गंगा दशहरा
सं० १९८१ विक्रमीय ।

प्रथम संस्करण

ता० १२ जून
सन् १९२४ ई० ।

आर्यमहिला-हितकारिणी महापरिषद् ।

कार्यसम्पादिका:—हर हाइनेस धर्मसावित्री महारानी शिवकुमारी देवी, नरसिंहगढ़ ।

भारतवर्षकी प्रतिष्ठित रानी महारानियाँ तथा विदुषी भद्र महिलाओंके द्वारा, श्रीभारतधर्ममहामण्डलकी निरीक्षकतामें आर्यमाताओंकी उन्नतिकी सदिच्छासे यह महापरिषद् श्रीकाशी-पुरीमें स्थापित की गई है । इसके निम्नलिखित उद्देश्य हैं—

(क) आर्यमहिलाओंकी उन्नतिके लिये नियमित कार्यव्यवस्थाका स्थापन (ख) श्रुति-स्मृति-प्रतिपादित पवित्र नारीधर्मका प्रचार (ग) स्वधर्मानुकूल स्त्री-शिक्षाका प्रचार (घ) पारस्परिक प्रेम स्थापित कर हिन्दु सतियोंमें एकताकी वृद्धि (ङ) सामाजिक कुरीतियोंका संशोधन और (च) हिन्दीकी उन्नति करना।

परिषद्के विशेष नियम—१—सब प्रकारकी सभ्याओंको इसकी मुखपत्रिका "आर्यमहिला" मुफ्त मिलेगी । २—स्त्रियां ही सभ्याएँ हो सकेंगी । ३—यदि पुरुष भी परिषद्की किसी तरहकी सहायता करें तो वे पृष्ठपोषक समझे जायंगे और उनको भी पत्रिका मुफ्त मिला करेगी । ४—परिषद्की चार प्रकारकी सभ्याओंके ये नियम हैं:—

(क) कमसे कम १५०) एक वार देनेपर "आजीवन-सभ्या" (ख) १०००) एक ही वार या प्रतिमास १०) देनेपर "संरक्षक-सभ्या" (ग) १०) वार्षिक देनेपर "सहायक सभ्या" और (घ) ५) वार्षिक देनेपर या असमर्थ होनेसे ३) ही वार्षिक देनेपर "सहयोगिसभ्या" आर्यमहिला मात्र बन सकती हैं ।

कार्याध्यक्षा,
आर्यमहिलाहितकारिणी महापरिषत्कार्यालय,
श्रीमहामण्डल भवन, जगतगञ्ज, बनारस ।

श्रीः ।

चरित्र-चन्द्रिका ।

प्रथम भाग ।

सम्पादक—

गोविन्द शास्त्री दुगवेकर ।

प्रकाशक—

मैनेजर-निगमागम बुकडिपो, भारतधर्म सिण्डिकेट
लिमिटेड, बनारस ।

—o:※:o—

गंगा दशहरा
सं० १६८१ विक्रमीय।

प्रथम संस्करण

ता० १२ जून
सन् १६२४ ई० ।

Printed by H. N. Bagchi,
Bharat Dharma Press, Benares.

समर्पण ।

—०:❀:०—

जिस पथका हमारे पूर्व पुरुषोंने अनुसरण किया, काल-प्रभावसे अब उस पथपर उठे, उनके पदचिन्ह भी अस्पष्ट हो गये हैं। परन्तु जो उस पथको खोज रहे हैं और जिनके चारित्र्यपर ही भारतका भविष्यत् अवलम्बित है, उन भारतीय कुमारोंके करकमलोंमें यह 'चरित्र-चन्द्रिका' सप्रेम समर्पित है।

गोविन्द ।

निवेदन।

—०—

जिसमें जातीयताकी ज्योति नहीं, वह मनुष्य नहीं। यदि हमारी यह इच्छा है कि, भारतीय युवकोंके हृदयोंमें जातीयताका विकास हो, तो उन्हें आर्यजातिके महापुरुषोंके चरित्रोंका अध्ययन कराना चाहिये। हमारी भारतमाता रत्नप्रसविनी है। यह कितने ही अलौकिक पुरुष-रत्नोंको उत्पन्न कर चुकी, कर रही है और करती रहेगी। भारतवासियोंके आदर्श आर्य सत्पुरुष ही हो सकते हैं, विदेशी या विधर्मी नहीं। श्रीरामचन्द्रकी मर्यादारक्षा और बन्धुप्रीति, श्रीकृष्णका कर्मकौशल, भगीरथका दीर्घोद्योग, शिबिकी शरणागत-रक्षा, दधीचिका त्याग, मार्कण्डेयकी भक्ति, शुकदेवका ब्रह्मचर्य्य, हरिश्चन्द्रकी सत्यप्रियता, ध्रुवकी दृढ़प्रतिज्ञता, प्रह्लादकी सत्याग्रह-शीलता, शङ्कराचार्य्यकी ज्ञानसम्पन्नता, बुद्धदेवकी शान्ति, प्रताप-सिंहका धर्महठ, शिवाजीकी रणचातुरी आदि गुण हमारे देशके नवयुवकोंमें उत्पन्न होनेसे ही देशका उद्धार होगा। आत्मनाशकारी विदेशी रीति नीति, नास्तिकता और कुटिलता सीखकर देशका कल्याण होना कदापि सम्भव नहीं है।

आजकलकी धर्मभावशून्य विषैली विदेशी शिक्षासे हमारी जाति मूर्छित हो गयी है,—अपने आपको भूल गयी है। उसे सचेत करनेके लिये आर्यतत्वज्ञानकी सञ्जीविनी मात्रा पिलानी होगी। वह तत्वज्ञान ही नहीं, जिसका आचरण किया नहीं जा सकता। आर्योंका तत्वज्ञान उनके जीवन चरित्रोंमें पूर्णतया प्रतिबिम्बित हुआ है। उन्हीं चरित्रोंके सहारेसे हम अपने देशके युवकोंका चरित्र-गठन कर सकते हैं। इस प्रकारके चरित्र-गठनके कार्यमें कुछ सहायता पहुंचाने-के विचारसे ही यह 'चरित्र-चन्द्रिका' लिखी गयी है।

चरित्र-सूची।

—०:*:०—

चुन चुन कर चरित्रोंका संग्रह करनेपर भी ग्रन्थ बड़ा हो जानेके कारण स्कूलोंके छात्रोंके सुभीतेके विचारसे इसके दो भाग कर दिये गये हैं। इस प्रथम भागमें श्रीकृष्ण-रामचन्द्रके चरित्रोंसे लेकर मध्वाचार्यतकके २५-३० चरित्र आगये हैं। दूसरे भागमें लोकमान्य तिलकतकके इतने ही ऐतिहासिक महापुरुषोंके चरित्र ग्रथित हुए हैं। यदि स्कूलोंके छात्रों और सर्वसाधारणको इन चरित्रोंके पाठसे कुछ भी लाभ पहुँचा, तो हम अपने परिश्रमको सफल हुआ समझेंगे। आशा है, 'सती चरित्र-चन्द्रिका' की भांति इस ग्रन्थको भी लोग अपनावेंगे।

इस ग्रंथका स्वत्वाधिकार काशीके श्रीविश्वनाथ अन्नपूर्णा दान-भण्डारको हम सहर्ष अर्पण करते हैं और स्वजातीय शास्त्रप्रकाशनके लिये स्थापित 'भारतधर्म सिण्डिकेट' को इसे प्रकाशित करनेकी अनुमति देते हैं।

निवेदक—

सम्पादक।

चरित्र-चन्द्रिका ।

श्रीकृष्णचरित्र ।

लोकानुन्मदयन् श्रुतीर्मुखरयन् क्षौणीरुहान्हर्षयन् ।
शैलान् विद्रवयन् मृगान् विवशयन् गोवृन्दमानन्दयन् ॥
गोपान्सम्भ्रमयन्मुनीन्मुकुलयन्सप्तस्वरान् जृम्भयन् ।
ॐ-कारार्थमुदीरयन् विजयते वंशीनिनादः शिशोः ॥

जो लोगोंको मतवाले बनाती. वेदोंको प्रकाशित करती, पृथ्वी-पर उत्पन्न होनेवाले वृक्ष वनस्पतियोंको आनन्दित करती, पर्वतोंको पसीजाती, मृगों (पशुओं) को वशीभूत कर लेती, गायोंको प्रसन्न करती, गोप-गोपियोंके चित्तोंको चकरा देती, मुनियोंके अन्तःकरणों-को विकसित करती, सात स्वरोंको विस्तार करती और ॐकारके अर्थको प्रकट करती है; बालकृष्णकी वंशीकी उस ध्वनिका जय-जयकार हो ।

संसारके इतिहासमें आर्य्यजाति ही सबसे प्राचीन सभ्य और शिक्षित जाति है । जब अन्यान्य देशके लोग जङ्गली अवस्थामें थे, तब भारतवासी उन्नतिके शिखरपर पहुँच गये थे । चार वर्ण और चार आश्रमोंकी सुव्यवस्थासे यहाँकी मनुष्य-जाति अत्यन्त सुखी और समृद्धिशाली थी । यहाँके ब्राह्मण तपो-बल और ज्ञानबलसे जगत्कल्याणके कार्य्यमें रत थे, क्षत्रिय जग-द्विजयी और आदर्श राज्यकर्ता हो रहे थे, वैश्य समस्त पृथ्वी पर

अपना वाणिज्य विस्तार करनेमें लगे थे और शूद्र सभी वर्णोंको सहायता करते थे। इस प्रकार कार्य्य-विभाग कर भारतका प्रत्येक मनुष्य प्रथम चौथाई जीवनमें ब्रह्मचर्य्यव्रत ग्रहणकर ज्ञान और बलका सञ्चय करता, द्वितीय चौथाई जीवनमें गार्हस्थ्यधर्मका पालन कर देशको सब प्रकारसे उन्नत बनाता, तृतीय चौथाई जीवनमें त्याग और सहनशीलता द्वारा परमात्माकी ओर अग्रसर होनेका अभ्यास करता और चतुर्थ चौथाई जीवनमें ब्रह्मसाक्षात्कार कर ब्रह्मरूप हो जाता था। यहाँके पुरुष संयमी, ज्ञानी और स्त्रियाँ पतिव्रता, सती होती थीं। इस कारण भारतवासी दीर्घायु ही नहीं, किन्तु इच्छामृत्यु होते थे।

संसारमें सबसे पहले यहीं ज्ञानका विकाश हुआ और यहीं प्रकृतिकी पूर्णता देख पड़ती है। श्रीभगवान्की तो यही प्रिय लीलाभूमि-कर्मभूमि-होनेके कारण देवता भी यहाँ जन्मग्रहण करनेके लिये तरसते हैं। गीताके अभिवचनानुसार अधर्मका नाश और धर्मकी स्थापना करनेके लिये इसी पवित्र भारतभूमिमें श्रीभगवान् देह धारण कर अवतीर्ण होते हैं।

साधारण अधर्मको मिटानेके लिये श्रीभगवान्को यद्यपि अनेक अंशावतार लेने पड़े, तथापि द्वापरके अन्त और कलिके आरम्भमें अर्थात् पाँच हज़ार वर्षोंके पहिले यहाँ इतना अधिक अधर्म बढ़गया था कि, श्रीभगवान्को पुनः धर्मस्थापनके हेतु स्वयं पूर्णावताररूपसे अवतीर्ण होना पड़ा। वह अवतार भगवान् श्रीकृष्णका था। ऐसी कोई शिक्षा ही संसारमें नहीं है, जो श्रीकृष्णचरित्रसे न मिलती हो। श्रीकृष्णचरित्र आपाततः मधुर होनेपर भी व्यवहार और मोक्ष दोनों मार्गोंको समान रूपसे प्रकाशित करनेवाला है। अतः आइये, सबसे पहिले हम उन्हींके पवित्र जीवनचरित्रपर दृष्टिपात कर अपना जीवन सफल करें।

पितामह ब्रह्माके पुत्र भगवान् मनुके द्वारा संसारमें मानव-जातिका विस्तार होनेपर, उन मानवोंपर राज्य करनेका अधिकार दो ही वंशोंके क्षत्रिय राजाओंको प्राप्त हुआ। पहिले सूर्य्यवंशी और दूसरे चन्द्रवंशी। सूर्य्यवंशियोंमें इक्ष्वाकु, हरिश्चन्द्र, रामचन्द्र आदि प्रसिद्ध हैं। चन्द्रवंशियोंमें पुरूरवा बड़े प्रसिद्ध हुए। इनका शासनकाल अत्यन्त उज्ज्वल माना जाता है। इनके पुत्र नहुष, नहुषके ययाति और ययातिके पाँच पुत्र हुए। उनमें बड़ा पुरु और छोटा यदु था। पुरुवंशी 'पौरव' और यदुवंशी 'यादव' कहलाये। पौरवोंका राज्य भारतके पश्चिमोत्तर प्रदेशमें और यादवोंका मथुरामें था। यदुके वंशमें वृष्णि, भोज आदि कई प्रतापी नृपति हुए। वसुदेव-पुत्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र वृष्णिके वंशमें ही अवतीर्ण हुए थे।

यादवोंमें भोजवंश श्रेष्ठ होनेके कारण भोजवंशी उग्रसेन मथुराका शासन करता था। उग्रसेनके छोटे भाईका नाम देवक था; ये दोनों राजा आहुकके पुत्र थे। उग्रसेनको नौ पुत्र और देवकको चार पुत्र तथा सात कन्याएँ हुईं। देवककी देवकी, रोहिणी आदि सातों कन्याएँ शूरसेनके पुत्र वसुदेवको व्याही थीं। वसुदेव बड़े ही पुण्यात्मा और नीतिज्ञ राजकुमार थे। उग्रसेनके नौ पुत्रोंमें कंस अत्यन्त बलवान् परन्तु दुष्ट स्वभावका था। उसने आठ वर्षकी अवस्थामें मगध देशके राजा जरासन्धपर चढ़ाई की। जरासन्ध भी असाधारण बली था। उसे हराना कंसके लिये सहज नहीं था, तौ भी कंसका साहस और पराक्रम देख जरासन्ध बहुत प्रसन्न हुआ और उसने अपनी दोनों कन्याएँ कंसको व्याह दीं। इस विजयसे उन्मत्त हो, कंसने मथुरामें प्रजापर अत्याचार करना प्रारम्भ किया। सबसे पहिले उसने अपने पिताको राज्यच्युत कर घोषणा करा दी कि,—"आजसे मथुराका राजा कंस है। इस राज्यमें अब कोई भूलकर भी यज्ञ, दान, तप आदि धार्मिक

कार्य्य न करे। यदि कोई इस आज्ञाका उल्लङ्घन करेगा, तो वह तुरन्त मारा जायगा"।

देवकीका विवाह होनेपर बरातकी विदाई धूमधामसे की गई। साथमें कंस भी था। उस समय आकाशवाणी हुई कि,—"हे कंस ! जिस बहिनके विवाहोत्सवमें तू सम्मिलित हुआ है, उसीके आठवें पुत्रके हाथों तेरी मृत्यु होगी।" कंस चौकन्ना हुआ। उसने तलवारसे उसी समय देवकोको मार डालना चाहा, परन्तु वसुदेवके इस प्रकार समझानेपर कि,—'स्त्रीपर शस्त्र चलाना आप जैसे वीरोंको शोभा नहीं देता,' इस प्रतिज्ञापर छोड़ दिया कि,—'देवकीको जो आठवाँ पुत्र होगा, उसे वसुदेव कंसको सौंप देंगे।' नारदने कंसके आगे आठ रेखाएँ भूमिपर खींचकर कहा कि,—'बाईं ओरसे गिननेसे दाहिनी ओरकी अन्तिम और दाहिनी ओरसे गिननेसे बाईं ओरकी अन्तिम रेखा आठवीं होती है। कौन कह सकता है कि, वसुदेवका पहिला पुत्र तुम्हें मारेगा, या आठवाँ ?' वसुदेव न्यायपरायण होनेके कारण उग्रसेनके पक्षपाती थे। उग्रसेनके पक्षपातियोंको कंस बेतरह सताता ही था। अब नारदके भड़कानेसे तो वह वसुदेवसे बहुत ही साशङ्क होगया। उसने देवकी और वसुदेवको कारागारमें ठूंस दिया। उनके जितने पुत्र होते थे, सबको वह अपने हाथों मार डालता था। इस प्रकार कंसने देवकीके निरपराध सात बालक मारडाले।

जब देवकीको आठवीं बार गर्भ रहा, तब वसुदेव और देवकी दोनों बड़े ही दुःखित और चिन्तित हुए। होनहार बालककी प्राणरक्षा करनेका वे उपाय सोचने लगे। उन्हें एक युक्ति सूझी। गोकुलमें वसुदेवका एक परम मित्र नन्द नामक वैश्य था। वसुदेवने कारावासमें जाते समय अपनी रोहिणी आदि स्त्रियोंको नन्दकी संम्हालमें रख दिया था। उस समय रोहिणी गर्भवती थी।

नन्दके घर उसे पुत्र हुआ, उसीका नाम बलराम था। मतान्तरसे बलराम प्रथम देवकीके गर्भमें ही आये थे; परन्तु घटनाचक्रसे वह गर्भ रोहिणीके उदरमें संक्रमित हुआ और कंससे कह दिया गया कि, देवकीका सातवाँ गर्भ बिगड़ गया। उसी संक्रमित गर्भसे बलराम उत्पन्न हुए।

अबकी बार वसुदेवने नन्दसे पुनः सहायता चाही। सहायता भी भयानक थी। नन्दकी स्त्री गर्भवती थी। वसुदेव यदि अपने पुत्रको किसी प्रकार नन्दके घर पहुंचा सकें, तो नन्द अपना पुत्र वसुदेवको कंसके हाथसे मारनेके लिये दें, यही दोनोंमें निश्चित हुआ।

भाद्रपद कृष्ण अष्टमीको अर्धरात्रिके समय संयोगवश देवकी और नन्दकी स्त्री एक साथ ही प्रसूत हुई। नन्दको कन्या और वसुदेवको पुत्र हुआ। वसुदेवके पुत्र होनेसे ही श्रीभगवान् वासुदेव कहलाये। वासुदेवने जन्मग्रहण करते ही माता-पिताको चतुर्भुज रूपमें दिव्य दर्शन दिये। शंख, चक्र, गदा, पद्म, पीताम्बर, कौस्तुभ आदि आयुध भूषणोंसे युक्त श्रीभगवान्के दर्शन कर देवकी और वसुदेव गद्गद होकर अपने भाग्यको सराहने लगे।

श्रीभगवान्की कृपासे वसुदेव-देवकीके बन्धन टूट गये, कारागारके द्वार खुल गये और द्वारपाल घोर निद्रामें सो रहे। जब चतुर्भुजरूप त्यागकर भगवान्ने बालरूप धारण किया, तब तुरन्त वसुदेवने उन्हें उठालिया और कारागारसे निकलकर तथा भरी यमुना लांघकर नन्दके घर पहुंचा दिया। प्रतिज्ञानुसार नन्दने भी अपनी नवजात कन्या वसुदेवको आँखोंमें आँसू भरकर सौंप दी। वसुदेव कारागारमें लौटकर पुनः बद्ध हो बैठे।

बच्चेका रोना सुन, द्वारपाल जागे। तुरन्त उन्होंने कंसको समाचार दिया। अपना वैरी देवकीका आठवाँ बेटा जन्मा है, यह जान पहिले तो कंस मूर्छित हुआ। फिर सम्हलकर हाथमें

खड्ग लेकर वह कारागृहमें आया और उस नरपिशाचने उस निरपराध अबोध कन्याको पत्थरपर पटक दिया। कन्याको पटकते ही विजली सी चमक गई, चारों ओर प्रकाश छागया और ऐसा भयानक शब्द हुआ, जिससे पृथ्वी काँप गई, जीव जन्तु व्याकुल हो उठे, सबकी आँखें झिप गई और कंस मारे डरके काँपने लगा। अचानक आकाशवाणी हुई कि,—"हे कंस! मुझे मारकर तूने क्या किया? तेरा मारनेवाला कृष्ण गोकुलमें सुरक्षित है।" कंसको देवताओं पर इस कारण बड़ा क्रोध हुआ कि, देवता झूठ बोलते हैं। देवकीको आठवाँ पुत्र होनेके बदले कन्या हुई। वह नहीं जानता था कि, वह कन्या नहीं किन्तु श्रीभगवानकी योगमाया है। आकाशवाणीका रहस्य भी वह समझ न सका और हाथ मींजता हुआ सभामें आकर सोचने लगा कि, ब्राह्मण, गौ, योगी, यति, संन्यासी और तपस्वियोंके अन्तःकरणोंमें देवता रहते हैं, अतः उन्हींको मार डालनेसे देवता भी मर जायँगे! तदनुसार उसने गौ-ब्राह्मणोंको मार डालनेकी आज्ञा दी और यह भी कहा कि, दस दिनके और उससे छोटे मेरे राज्यमें जितने बच्चे हों, वे भी मार डाले जायँ। कंसके राज्यमें जहाँ तहाँ अत्याचार होने लगा। सज्जनोंके रक्तसे भूमि रँगी जाने लगी, बालहत्याकी सीमा न रही। पुत्रवती माताएँ अपने गोदके बच्चोंकी अकारण मृत्युसे करुणाभरी चीखने लगीं, सर्वत्र हाहाकार होने लगा।

इधर नन्दके घर पुत्रोत्सव मनाया जाने लगा। गोप-गोपियाँ गा-बजाकर आनन्द करने लगीं। सङ्गीतकी ध्वनि चारों ओरसे उठने लगी। जी खोलकर नन्द दान देने लगे। पुरवासिनी भगवान्की आरती उतारने लगीं। ब्रह्मादि देवताओंने फूलोंकी वर्षा की। गोकुल मानो आनन्दका घर बन गया। क्रमशः श्रीकृष्ण भी शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी तरह दिन प्रतिदिन बढ़ने लगे।

श्रीकृष्ण एकबार ववंडरमें उड़ गये थे। परन्तु वे शक्तिशाली थे, इससे उन्हें विशेष कष्ट नहीं हुए। यही नहीं, किन्तु बवंडरका रूप धारण कर 'तृणावर्त' नामक जो राक्षस उन्हें उठा लेगया था, उसे उन्होंने अनायास मारडाला। जब कंसको पता लगा कि, वसुदेवका पुत्र गोकुलमें जीवित है, तब वह आग बबूला होगया। उसने श्रीकृष्णको विष पिलानेकी इच्छासे 'पूतना' नामक दाईको स्तनमें विष लगाकर दूध पिलानेके लिये उनके पास भेजा। परन्तु बालकपनसे ही कृष्ण बुद्धिमान् थे। इससे वे उसके स्तनमें ऐसे चिपक गये कि, उसकी स्वांस बंद होगई और वह मर गई। इसी तरह कालिया, शंखचूड़, केशी, धेनुक, वत्स, अघ, बक आदि जीव जन्तुओंके रूपमें विचरण करनेवाले राक्षसोंको, जो गोकुलवासियोंको कष्ट पहुंचाते थे, उन्होंने बचपनमें ही मार डाला था। गोकुलमें ग्वालबालोंके साथ खेलकूद कर कृष्ण और बलरामने अच्छी शारीरिक शक्ति सम्पादन कर ली थी।

श्रीकृष्णमें बचपनसे ही लोककल्याण करनेकी प्रवृत्ति देख पड़ती थी। आगे चलकर उन्होंने काशी, कलिङ्ग, पौण्ड्रक, गान्धार आदि देशोंके राजाओंको संग्राममें हराया था, परन्तु किसीके राज्य हरण नहीं किये। गोकुलमें भेड़ियोंका उपद्रव अधिक होनेके कारण नन्द कृष्णबलरामको लेकर वृन्दावनमें आ बसे थे। यहांपर एकबार बड़ी वर्षा हुई, तब गोवर्धन पर्वतपर रहने वालोंकी श्रीकृष्णने रक्षा की थी। श्रीकृष्णकी कीर्ति सुन, कंसने कालयवनको उन्हें मारनेके लिये भेजा। कालयवनके साथ श्रीकृष्णकी दौड़ लगी। अन्तमें जब वह थक गया, तब श्रीकृष्ण एक गुहामें जा छिपे। वहां राजर्षि मुचकुन्द सोये हुए थे। उन्हें वरदान था कि, उनकी निद्रामें जो बाधा डालेगा, वह भस्म हो जायगा। कालयवनने उन्हींको श्रीकृष्ण समझ, एक लात मारी। उनकी नींद टूटते ही कालयवन भस्म

होगया । श्रीकृष्णने राजाको दिव्य दर्शन दे कृतार्थ किया ।

श्रीकृष्ण और बलराम दोनोंमें बड़ा प्रेम था । प्रायः दोनों मिलकर सब काम करते थे । दोनोंने काशीमें सन्दीपनी ऋषि तथा अङ्गिरस वंशीय घोर ऋषिके पास वेद, शास्त्र तथा धनुर्विद्या आदि विविध विषयोंका अभ्यास किया था । कंस श्रीकृष्णकी बाललीला सुनकर बहुत डरा । उसके श्रीकृष्णका नाश करनेके सब उपाय विफल हुए । तब उसने कुवलया नामक हाथी और चाणूर तथा मुष्टिक नामक मल्लोंसे लड़नेके लिये कृष्ण-बलरामको मथुरामें बुलाया । रामकृष्णने मथुरामें पहुँचकर तीनोंको मार गिराया । अब कंसने नन्दको कैद करने, वसुदेवको मार डालने और राम-कृष्णको निकाल देनेकी आज्ञा दी । यह सुनकर श्रीकृष्णने कंसको सिंहासनसे खींचकर धरतीपर पटका और उसका वध कर डाला । इससे सर्वत्र आनन्द बरसने लगा । उग्रसेन पुनः सिंहासनपर प्रतिष्ठित हुए और वसुदेव आदि उनके पक्षपाती बन्धनसे छूट गये ।

कंसवधका समाचार पाकर उसका ससुर जरासंध अपनी विशाल सेना लेकर यादवोंपर टूट पड़ा । दो चार बार श्रीकृष्णके कौशलसे वह पराजित हुआ, परन्तु रोजका झगड़ा अच्छा नहीं जानकर व्यर्थका रक्तपात रोकनेकी इच्छासे यादवों सहित श्रीकृष्ण रैवतक पर्वतपर चले आये और वहीं समुद्रतटपर द्वारका नामक राजधानी बसाकर रहने लगे । एक बार स्यमन्तक मणिकी चोरी उनपर लगी थी, परन्तु पीछे वे निर्दोष ठहरे । इस चोरीको सफाई करनेमें कई लोगोंके प्राणोंकी सफाई होनेपर जब उनके हाथमें वह मणि लगी, तब उन्होंने वह स्वयं ग्रहण न कर उसके सच्चे अधिकारीको दे डाली ।

विदर्भराज भीष्मककी कन्या रुक्मिणीसे श्रीकृष्णका फुफेरा भाई चेदिवंशी राजा शिशुपाल विवाह करना चाहता था । परन्तु

रुक्मिणी श्रीकृष्णपर अनुरक्त थी। श्रीकृष्णकी भी रुक्मिणीपर प्रीति थी। अन्तमें रुक्मिणीका श्रीकृष्णके साथ बड़े समारोहसे विवाह हुआ और शिशुपाल अपना सा मुंह लेकर रह गया। रुक्मिणीसे ही श्रीकृष्णको प्रद्युम्न हुए थे।

पाण्डव श्रीकृष्णके फुफेरे भाई थे। श्रीकृष्ण उनसे पहिले पहिल द्रौपदीस्वयंवरमें मिले थे और उन्होंने पाण्डवोंको अनेक उपभोग्य वस्तुएँ उपहारमें दी थीं क्योंकि पाण्डव उस समय दुरवस्थामें थे। पाण्डव उन्हें कामक्रोधसे वर्जित, सत्यवादी, सर्वदोषरहित, सर्वलोकोत्तम, सर्वज्ञ और सर्वकृत् समझते थे। पाण्डवोंमें अर्जुन श्रीकृष्णके सखा, शिष्य और बहिनोई थे।

सुभद्राका विवाह दुर्योधनके साथ करनेका बलरामने विचार किया था। परन्तु श्रीकृष्णने चातुर्यसे अर्जुनके साथ करा दिया। एकबार मय नामक कारीगरको श्रीकृष्ण और अर्जुनने खाण्डव-वनमें जलनेसे बचाया था। इसके बदलेमें मयने कुछ सेवा करना चाहा, परन्तु श्रीकृष्ण और अर्जुनने अपने लिये कुछ भी बदला लेना स्वीकार नहीं किया। मयके बहुत आग्रह करनेपर उन्होंने धर्मराजके लिये एक सुन्दर राजसभाभवन बनानेको कहा। तदनुसार मयने ऐसा भवन बनाया, जिसकी तुलना संसारमें नहीं थी। पाण्डव प्रतिज्ञा पूरी कर जब खुलेमुँह संसारमें प्रकट हुए, तब धर्मराजने राजसूय यज्ञ करनेका विचार किया। परन्तु श्रीकृष्णने धर्मराजको पहिले जरासंधका नाश करनेका परामर्श दिया। तदनुसार भीम, श्रीकृष्ण और अर्जुन जरासन्धवधके लिये गये और भीमने उसे मार डाला। जरासन्धने अनेक निरपराध राजाओंको बन्धनमें डाल दिया था, इसीसे श्रीकृष्णने उसका नाश किया; अपना पहिला वैर चुकानेके लिये नहीं। यदि इसमें श्रीकृष्णका स्वार्थ होता तो वे उसका राज्य छीन लेते, परन्तु उन्होंने ऐसा न कर उसके पुत्रको

राज्याभिषेक किया और सब राजाओंको बन्धनमुक्त कर वे लौट आये। अनन्तर राजसूय यज्ञ आरम्भ हुआ। सब राजाओंकी सम्मतिसे श्रीकृष्णको अग्रपूजाका मान दिया गया। परन्तु शिशुपालको यह बात अच्छी नहीं लगी। शिशुपाल उद्दण्ड था। उसकी माता यह जानती थी कि, श्रीकृष्णका अवतार अन्यायियोंको दण्ड देनेके लिये हुआ है और एक दिन श्रीकृष्णकी क्रोधाग्निमें इसकी भी आहुति होगी। इसलिये उसने श्रीकृष्णकी गोदमें शिशुपालको रखकर उनसे वचन लेलिया कि, इसके वे सौ अपराध क्षमा करेंगे। प्रतिज्ञानुसार श्रीकृष्णने शिशुपालके निन्यानवे अपराध क्षमा किये थे। अब भरी यज्ञसभामें शिशुपालने श्रीकृष्णका विरोध करते हुए अनेक दुर्वचन कह कर सौवाँ अपराध किया। इस प्रकार सौ अपराध क्षमा करनेपर श्रीकृष्णने उसे मार डाला। यज्ञ सानन्द समाप्त हुआ। अग्रपूजा श्रीकृष्णकी ही हुई। तथापि श्रीकृष्णने ब्राह्मणोंके पैर धोने और यज्ञरक्षा करनेका काम अपने ऊपर लिया था। जब कौरव-पाण्डवोंमें राज्यके लिये झगड़ा खड़ा हुआ, तब उसे मिटानेके लिये श्रीकृष्णने बहुत प्रयत्न किये, परन्तु कौरवोंकी कच्ची नीतिसे वे सब विफल हुए। सन्धिके लिये जब श्रीकृष्ण हस्तिनापुरमें दुर्योधनसे मिलनेके लिये गये, तब दुर्योधनने श्रीकृष्णका स्वागत तो बड़े ठाठसे किया, परन्तु उनका कहा नहीं माना; उलटे उन्हें बद्ध करना चाहा। लाचार हो श्रीकृष्ण हस्तिनापुरसे लौट आये। दुर्योधनके आग्रह करनेपर भी श्रीकृष्णने उसके यहाँ भोजन नहीं किया और दरिद्र विदुरका सत्कार ग्रहण किया। अर्जुन और दुर्योधन श्रीकृष्णसे युद्धमें सहायता माँगने गये। तब श्रीकृष्णने कहा कि, तुम्हारे इस युद्धमें मैं शस्त्रग्रहण नहीं करूँगा। मेरी प्रचण्ड सेना एक ओर और मैं दूसरी ओर आप लोगोंको सहायता करनेके लिये तैयार हूं। दुर्योधनने श्रीकृष्णकी सेना अपनी ओर लेली

और अर्जुनने निःशस्त्र श्रीकृष्णको ही ग्रहण किया। युद्धमें श्रीकृष्ण अर्जुनके सारथी बने। ठीक युद्ध आरम्भ होनेके समय अर्जुनने कुटुम्बियोंपर शस्त्र चलानेसे मुँह मोड़ लिया। तब श्रीकृष्णने गीता सुनाकर उसका मोह दूर करते हुए उसे कर्मयोगमें प्रवृत्त कराया। अन्तमें पाण्डवोंकी जीत हुई और श्रीकृष्णके प्रयत्नसे भारतमें पुनः धर्मराज्य स्थापित हुआ। अर्जुनको अधिक सतानेके कारण भीष्मपर एकबार श्रीकृष्णने शस्त्र उठाया था, पर चलाया नहीं। यह भीष्मपितामहके कठोर ब्रह्मचर्य्यका प्रताप था कि, स्वयं भगवान्‌को भी अपनी प्रतिज्ञाका उल्लङ्घन करना पड़ा।

श्रीकृष्ण जब द्वारकामें आये, तब प्रायः सभी यादव उन्मत्त और मद्यपी होगये थे। बलरामने मद्यपान बन्द करनेके लिये बहुत उद्योग किये, परन्तु उन्हें सफलता प्राप्त नहीं हुई। यह देख दुःखित हो, उन्होंने शरीर त्याग दिया। पीछे प्रभासतीर्थमें एक दिन सब यादव मद्यपान कर आपसमें लड़कर मर गये। श्रीकृष्णने भी १२५ वर्षोंकी अवस्थामें योगबलसे अपनी भूलोककी यात्रा समाप्त कर दी।

एक बार उत्तराके नवजात मृत बालककी चिकित्सा कर श्रीकृष्णने उसे जिलाया था और जरासन्ध तथा दुर्योधनपर कठोर आघात करनेसे उन्होंने भीमको रोका था। एक मनुष्य जो कार्य नहीं कर सकता, परन्तु मनुष्यों द्वारा जो कार्य्य हो सकते हैं, उनको करनेके लिये ईश्वर अवतार धारण करता है। ऐसे अवतारी पुरुष सनातनसे होते आये हैं और होते रहेंगे। श्रीकृष्ण भगवान्‌के पूर्ण अवतार थे। सज्जनोंकी रक्षा और दुर्जनोंका दमन करनेका ही उनके जीवनका उद्देश्य था। वे दृढ़ नीतिज्ञ, वेदज्ञ, शास्त्रज्ञ, धर्मज्ञ, धर्मात्मा, कर्मयोगी, समदर्शी, अपराजेय, अपराजित, विशुद्ध, पुण्यमय, प्रेममय, दयामय, लोकहितैषी, न्यायशील, क्षमाशील,

निरपेक्ष, निरहङ्कार, ज्ञानी, योगी और आत्माराम थे। वे मानुषी शक्तिसे कार्य्य करते थे, परन्तु उनका चरित्र अमानुषिक था। श्रीकृष्ण संसारी गृहस्थोंके, राजाओंके, योद्धाओंके, राजपुरुषोंके, तपस्वियोंके, धर्मवेत्ताओंके और फिर सम्पूर्ण मनुष्यजातिके एक साथ ही सर्वगुणसम्पन्न आदर्श हैं। श्रीकृष्णमें दान, दाक्षिण्य, शास्त्रज्ञान, लज्जा, कीर्ति, बुद्धि, विनय, अनुपम-श्री, धैर्य्य और सन्तोष आदि सद्गुण सदा विराजमान थे। जो पराक्रम और पाण्डित्यमें, वीरता और शिक्षामें, कर्म और ज्ञानमें, नीति और धर्ममें, दया और क्षमामें समान ही सबसे श्रेष्ठ हो, वही आदर्श पुरुष है। श्रीकृष्णका कार्य्य सर्वजीवहितकारी और सर्वमय था। अब फिर उसी आदर्शपुरुषको जातीय हृदयमें बैठाना होगा।

श्रीकृष्ण स्वयं राजा नहीं बने। परन्तु उनके परामर्शके बिना युधिष्ठिर या उग्रसेन राज्यशासनका कोई कार्य नहीं करते थे। एक बार कर्ण संकटमें पड़ा, तब, उसने धर्मकी दुहाई दी। इसपर श्रीकृष्णने द्रौपदीका अपमान, अन्यायद्यूत, भीमको विषप्रयोग, लाक्षाभवनदाह, अभिमन्युवध आदि कौरवोंके अधर्माचरणका स्मरण दिलाकर कर्णसे कहाः—'दुःखमें पड़कर नीच लोग दैवकी निन्दा प्रायः करते हैं, अपने बुरे कामोंकी ओर कभी नहीं देखते। तुमने जब इतना अधर्म किया है, तब अब धर्म धर्म चिल्लाकर क्यों गला सुखाते हो ?' श्रीकृष्णके मतसे जिससे प्राणियोंकी रक्षा होती है, वही धर्म है। जो धर्मसङ्गत है वही सत्य और जो धर्मसङ्गत नहीं है वही मिथ्या है। स्वाधीनभावसे अपनी जातिको अधिकारानुसार ऐसे धर्मका पालन करते रहना चाहिये। कर्तव्यकर्मके यथाविहित निर्वाहका नाम स्वधर्मपालन है। अर्जुनको धर्मतत्त्वका उपदेश करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैंः—'तस्करोंके हाथसे अपने सर्वस्वकी रक्षा करना परम धर्म है। इस कामके लिये प्राण भी देने

पड़े, तो वह भी प्रशंसाका काम है। पर पैतृक राज्यके उद्धारसे पीछे पैर देना कदापि उचित नहीं है। छोटे मोटे चोरके हाथसे अपनी सम्पत्ति बचानेको न्याय (Justice) और बड़े चोरके हाथसे बचानेको देशानुराग (Patriotism) कहते हैं। इस प्रकारकी आत्मरक्षा सत्कर्मके अनुष्ठानसे होती है। कर्मबलसे देवता प्रभावशाली हुए, कर्मबलसे पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश संसारको धारण किये हैं। भगवान् बृहस्पतिने इन्द्रिय-निरोध कर ब्रह्मचर्य्य धारण किया था, उसी कर्मबलसे वे देवताओंके आचार्य हुए। रुद्र, आदित्य, यम, कुवेर, गन्धर्व, यक्ष, अप्सरा, विश्वावसु और चन्द्रसूर्यादि ग्रहनक्षत्रगण कर्मके प्रभावसे विराजमान हैं। ब्रह्मविद्या, ब्रह्मचर्य और अन्यान्य क्रियाओंका अनुष्ठान कर महर्षियोंने श्रेष्ठता पाई थी। कर्मके विना कोई एक क्षण भी नहीं रह सकता, इसलिये कर्माचरण करो, तभी तुम्हारा उद्धार होगा। तुम जिस दिन अपना कर्तव्यकर्म जान जाओगे उस दिन निःसन्देह मुक्त हो जाओगे।'

कैसा मधुर परिणामकारी और सारगर्भित उपदेश है! यही उपदेश मृतप्राय भारतकी संजीवनी है। यदि हर एक भारतवासी श्रीकृष्णको आदर्श मान कर उनकी आज्ञा पालन करे, तो उसके इहलोक और परलोक बन जायंगे इसमें कहना ही क्या है? महर्षि व्यासने कहा है:—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥

जहाँ योगेश्वर कृष्ण और जहां धनुर्धर अर्जुन हैं, वहीं श्री, विजय, शाश्वत ऐश्वर्य और नीति निवास करती है।

सारांश, जहां कर्म और कर्मी अर्थात् शक्ति और युक्ति एकत्रित है, वहीं सब ऋद्धि सिद्धि आदि सम्पत्तियां निरन्तरके लिये आ बसती हैं।

श्रीभगवान् श्रीकृष्णचन्द्र छोटे बड़े सभीको समदृष्टिसे देखते थे। जैसे वे राजा महाराजाओंसे मिले, वैसेही सुदामासे भी। ब्राह्मणोंके वे बड़े भक्त थे। युधिष्ठिरके यज्ञमें परमपूजनीय माने जाकर भी ब्राह्मणोंकी सेवाका ही काम उन्होंने अपने ऊपर लिया था। निष्काम कर्मयोगकी तो वे मूर्त्ति थे। उन्होंने अपने स्वार्थके लिये कुछ न कर जगत्के उपकारका ही आजन्म कार्य किया। सबसे महत्त्वकी बात यह है कि, वे सदा धर्मका पक्ष लिया करते थे; चाहे वह स्थूल दृष्टिसे दुर्बल ही क्यों न हो। क्योंकि जहां धर्म होता है, वहीं विजय होती है। प्रबल शक्तिशाली कौरवोंके पक्षमें न मिल कर वे पाण्डवों-के पक्षमें मिले, इसका यही रहस्य है। यों उनके चरित्रसे अनेकानेक शिक्षाएँ मिलती हैं, किन्तु उक्त शिक्षाओंको अवश्य ग्रहण करना चाहिये।

श्रीरामचरित्र।

—:*:—

कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदप्राप्तये प्रस्थितस्य।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानां
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम॥

सब प्रकारके कल्याणोंका निधान (ख़ज़ाना), कलिकालके पापोंका नाशकरने वाला, पवित्रसे भी पवित्रतर, जीवन-मरणके चक्रसे छुटकारा पानेकी इच्छा रखकर ब्रह्मपदकी प्राप्तिके लिये निकले हुए बटोहियोंका एकमात्र पाथेय (कलेवा), श्रेष्ठ कवियों-की वाणीका अद्वितीय विश्रामस्थान, सज्जनोंका जीवन और धर्म-वृक्षका बीजस्वरूप भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका शुभ नाम आपका मङ्गल करे।

सूर्यवंशमें इक्ष्वाकु, भगीरथ, हरिश्चन्द्र, दिलीप आदि जो अनेक अलौकिक नृपति हुए, उन्हींमें महाराज दशरथकी भी गणना की जाती है। उत्तरकोसल प्रदेशमें सरयू नदीके तटपर बसी हुई अयोध्या नगरी, महाराज दशरथकी पैतृक राजधानी थी। दशरथकी राज्यव्यवस्था बड़ी ही प्रशंसनीय थी। इनके राज्यमें सभ्यता-सूचक सब सुधार पूर्णताको प्राप्त हुए थे, इस कारण वहां कोई दुःखी नहीं देख पड़ता था। वैर-विरोधका तो नाम तक नहीं था और सब वर्ण अपने अपने धर्मोंका निष्कण्टक होकर पालन करते थे।

दशरथकी तीन रानियां थीं। बड़ीका नाम कौशल्या, मझली-का सुमित्रा और छोटीका केकयी था। तीनों रूप गुणोंमें अद्वितीय होनेपर भी कई वर्षोंतक किसीको कोई सन्तान नहीं हुई। अपनी अवस्था ढलती देख, अपुत्र दशरथ भी विशेष चिन्तित हुए। तब मन्त्री और कुलगुरु वशिष्ठादि ऋषियोंकी सम्मतिसे उन्होंने पुत्र-कामेष्टि याग करनेका निश्चय किया। उनके जामाता (मानी हुई 'शांता' नाम्नी कन्याके पति) ऋष्यशृङ्गके तत्त्वावधानमें बड़े समा-रोहसे यज्ञ हुआ। यज्ञके अन्तमें स्वयं अग्निनारायणने प्रकट होकर 'चरु' प्रदान किया। उसके दो भाग किये गये। एक भाग कौशल्या और दूसरा केकयीने पाया। दोनोंने अपने अपने भागोंमेंसे आधा आधा भाग सुमित्राको दिया। उस चरुको सेवन कर श्रीअग्नि-नारायणकी कृपासे तीनों गर्भवती हुईं और नौ मास पूर्ण होनेपर चैत्र सुदी नवमीको मध्याह्नके समय तीनों प्रसूत हुईं। कौशल्यासे श्रीरामचन्द्र, केकईसे भरत और सुमित्रासे लक्ष्मण और शत्रुघ्न उत्पन्न हुए। चारों बालक दिव्य तेजधारी होनेपर भी श्रीरामचन्द्र-जीका स्वरूप अद्भुत था। उत्पन्न होते ही उन्होंने चतुर्भुज रूपमें

माताको दर्शन दिया। वह श्याममनोहर रूप अभीतक भक्तोंके हृदयोंमें ज्यों का त्यों विराजमान है ।

राजा दशरथ पुत्रवान् हुए सुन, नगरमें आनन्द छा गया । लोगों-ने अपने अपने घर और दूकानदारोंने दूकानें सजाईं । जहाँ तहाँ नृत्य, गान, दान, पुण्य, ब्राह्मण भोजनादि होने लगे । रात्रिमें दीपोत्सव हुआ । सुख-समीर बहने लगी । अग्निहोत्रियोंकी आहुतियाँ श्रीअग्निनारायण दाहिनी ज्वालाओंसे लेने लगे । राज-प्रासादके उत्सवका तो वर्णन ही नहीं हो सकता ।

रामचन्द्र आदि चारों भाई क्रमशः बढ़ने लगे । अयोध्याके लोगोंके तो वे नयनोंके तारे थे । सभी लोग उन्हें देखकर अपने नेत्रोंकी सफलता हुई समझते थे । राजा दशरथने उनकी शिक्षाका सुप्रबन्ध किया । थोड़े ही दिनोंमें चारों भाई १४ विद्या और ६४ कलाओंमें निष्णात हो गये । चारों भाइयोंमें परस्पर बड़ा ही घनिष्ठ प्रेम था । उन्हें देख यही जान पड़ता था कि, एक ही आत्माने मानों चार शरीर धारण किये हैं ।

रामचन्द्रकी अवस्था १४ वर्षोंकी हुई होगी, महर्षि विश्वामित्रने अपने तपोवनमें एक महायज्ञ आरम्भ किया । परन्तु उनके यज्ञमें मारीच और सुबाहु नामक दो राक्षस आकाशसे रक्त और मांसकी वर्षा कर बारम्बार विघ्न कर देते थे । इस कारण कई बार यज्ञारम्भ करनेपर भी उनका कोई यज्ञ निर्विघ्न समाप्त नहीं हुआ । यद्यपि विश्वामित्र अपने तपोबलसे राक्षसोंको भस्म कर सकते थे, परन्तु यज्ञ करते हुए क्रोध करना निषिद्ध होनेके कारण उन्होंने ऐसा नहीं किया । वे अन्तर्दृष्टिसे जान गये थे कि, श्रीभगवान्‌ने असुरोंका नाश कर भूभार उतारनेके लिये सूर्य्यवंशमें राजा दशरथके घर जन्म लिया है । अतः उन्हींसे यज्ञरक्षाके हेतु सहायता लेनेका निश्चय कर वे महा-राज दशरथसे मिले ।

महाराजने यज्ञरक्षार्थ सेना आदि ले जानेकी बहुत प्रार्थना की, परन्तु विश्वामित्रने एक नहीं सुनी। विवश और कातर हो राजाने रामको आंखोंमें आँसू भरकर ऋषिके हाथ सौंप दिया। वियोगकी व्याकुलता ही भक्तके हृदयोंमें भक्तिके अंकुर जमाती है। श्रीरामचन्द्र भक्तमानस-मन्दिरोंमें प्रतिष्ठित होने लगे और यहींसे उनका अवतारकार्य आरम्भ हुआ।

मार्गमें, ऋषि मुनियोंको कष्ट देनेवाली 'ताटिका' नामकी राक्षसीको रामने सहज ही मार डाला और विश्वामित्रके यज्ञारम्भ करनेपर बहुत दिनोंका परचा हुआ ताटिकापुत्र मारीच और उसका सेनापति सुबाहु भी रामके हाथों मारा गया।

मिथिला देशके पूर्ण योगी राजर्षि जनकने अपने नगरमें धनुष-यज्ञका आयोजन कर सियस्वयंवर रचा और उसमें देश विदेशके राजकुमार निमन्त्रित किये गये। जनकने यह प्रण किया था कि, मेरे यहाँ जो शिवधनु रक्खा है, उसे जो वीर उठाकर तान देगा, उसे अपनी कन्या सीता (जो खेतसे उत्पन्न हुई थी) व्याह देंगे। विश्वामित्र भी दोनों कुमारोंके साथ निमन्त्रित होकर उक्त यज्ञमें सम्मिलित हुए थे। मार्गमें गौतमऋषिके आश्रममें जब सब पहुँचे, तब रामका एक स्वच्छ शिलासे पैर टकराते ही वह शिला एक सुन्दरी स्त्री बन गई और श्रीरामचन्द्रके चरणोंपर गिरकर उनकी स्तुति करने लगी। अनुसन्धान करनेपर पता लगा कि, यह गौतम-पत्नी अहिल्या है। पतिके शापसे यह शिला बन गई थी और अब श्रीभगवान्‌के चरणोंके स्पर्शसे पुनः पूर्वरूपमें परिणत हुई है। रामने उसे आशीर्वाद देकर पतिके पास भेज दिया, तबसे वह पतिव्रताओंमें पहिले गिनी जाने लगी।

जब विश्वामित्र दोनों कुमारोंके साथ जनकपुर पहुंचे, तब जनकने ऋषिकी अर्घ्यपाद्यसे पूजा की और कुमारोंका भी उचित सम्मान

किया। जनकपुरके लोग रामलक्ष्मणके स्वरूप पर मुग्ध हो, मन ही मन सोचने लगे कि, सीताके लिये इन्हींमेंसे कोई कुमार निर्णीत हो, तो जोड़ी बड़ी अच्छी मिलेगी। यथा समय सैकड़ों मल्लोंने मिलकर सभामें अति परिश्रमसे शिवधनु ला रक्खा। रावणादि बड़े बड़े महारथी वीरोंसे जो धनु जरा भी नहीं डिगा, वह रामने सहज ही उठा लिया और प्रत्यञ्चा चढ़ाकर खींचते ही दो टूक होगया। उसके टूटनेका शब्द आकाशमण्डलतक गूँज उठा। सब सभा प्रसन्न हो गई। आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी। मङ्गलवाद्य बजने लगे। जनक और जानकीके आनन्दकी सीमा न रही। सीताने प्रेमपूर्वक रामचन्द्रके गलेमें वरमाल पहिनाई। माया-ब्रह्म एक हुए। इसी अवसरपर जनकने अपनी दूसरी कन्या उर्मिला लक्ष्मणको, अपने भाई कुशध्वजकी एक कन्या माण्डवी भरतको तथा दूसरी श्रुतकीर्ति शत्रुघ्नको व्याह दी। महाराज दशरथका जनकने अच्छा सत्कार किया। सब बराती जनकके बरतावसे बहुत प्रसन्न हुए। महाराज दशरथ चारों पुत्रोंका विवाह कर बहुओं और बरातियों सहित धन, रत्न, पशुओंको लेकर अयोध्याकी ओर बड़े उत्साह और आनन्दसे चल पड़े। हेकड़ राजा महाराजा अपनासा मुँह लेकर रह गये।

धनुर्भङ्गका शब्द जमदग्निऋषिके पुत्र परशुरामने जब सुना, तब वे तुरन्त मारे क्रोधके उसके तोड़नेवालेका पता लगाने निकले। मार्गमें रामचन्द्रसे उनकी भेंट हुई। वे राम-लक्ष्मणपर बहुत लाल पीले हुए। लक्ष्मणने उनकी दुरुक्तियोंपर क्रोध कर उन्हें अधिक चिढ़ाया। परन्तु रामने विनीत भावसे उन्हें समझाया और कहा—"मैंने जान बूझकर धनुष नहीं तोड़ा है। उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर खींचते ही वह आप ही टूट गया। आप बड़े हैं,—क्षमावान् हैं; मुझसे जो कुछ अपराध हुआ हो, उसके परिमार्जनके लिये ऐसा

कोई उपाय बतावें, जिससे आपका क्रोध शान्त हो।" परशुराम बोले,—"मेरे गुरु शिवजीका धनुष टूटनेसे मुझे अत्यन्त क्रोध और दुःख हुआ है। यह मेरे पास दूसरा विष्णुधनु है। इसपर यदि तुम रोदा चढ़ा दोगे, तो मैं तुम्हें क्षमा कर सकता हूँ। नहीं तो मेरा क्रोध विना तुम्हारा प्राण हरण किये शांत नहीं हो सकता।" रामने तुरन्त विष्णुधनु पर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर वह तान दिया और बाण लगा कर कहा—"मुने! आज्ञा करें। इस बाणसे मैं आपका आकाश-पथ रोक दूँ?" परशुराम बहुत ही प्रसन्न हुए। वे समझ गये कि, श्रीभगवान्का अवतार हो गया है। उन्होंने रामकी बहुत स्तुति की और रामको अनेक दिव्य शस्त्रास्त्र देकर वे तपस्याके लिये हिमालयकी ओर चले गये।

दशरथ, पुत्रों और पुत्रवधुओंको लेकर दलबल सहित अयोध्या आ पहुँचे। नगरमें भी विवाहोत्सव धूमधामसे मनाया गया। कुछ काल बीतने पर एक दिन अपनी वृद्धावस्था देख, दशरथने मन्त्रियोंकी सम्मतिसे रामचन्द्रको राज्याभिषेक करनेका निश्चय किया। महर्षि वशिष्ठने शुभ मुहूर्त बताया। राज्यमें राज्यारोहणकी तैयारियाँ होने लगीं।

इधर देवताओंने यह सोचा कि, अभी यदि रामको राज्याभिषेक होगा, तो असुरदलन और भूभारहरणका कार्य्य रह जायगा। अतः उन्होंने कलिको भेज, केकयीकी दासी मन्थराके शरीरमें प्रवेश कराया। अभिषेक होनेको एक दिन रह गया था। मन्थरा सन्ध्या समयमें राजभवनपर चढ़कर नगर-शृँगारका कौतुक देख रही थी। कलिके प्रवेश करते ही वह चौकन्नी हुई और दौड़कर केकयीके पास गई। केकयी सो रही थी। उसे जगाकर उसने कहा- "क्या यह सोनेका समय है? तू नहीं जानती कि, कल रामको राज्याभिषेक होगा?" केकयी बोली—"मैं जानती हूं; परन्तु

तूने यह शुभ समाचार सुनाया, इसलिये ले, यह रत्नमाला तुझे पारितोषिक रूपसे देती हूँ।" मन्थराने माला फेंक कर कहा- "क्या तू रामकी दासी बनेगी? यदि अपना भला चाहती है, तो एकवार युद्धके समय दशरथका रथचक्र टूटनेपर तूने अपने हाथोंसे रथ सम्हालकर उन्हें सहायता की थी, उस समय उन्होंने तुझे जो दो वर दिये हैं, वे इस समय मांग ले। एक वरसे भरतको राज्याभिषेक और दूसरेसे रामको १४ वर्षों तक वनवास।" केकयी रामको बहुत प्यार करती थी, परन्तु देवताओंने सरस्वतीके द्वारा उसकी भी मति फेर दी और वह मन्थराके कहनेमें आ गई।

रात्रिमें केकयीसे वरोंकी भयानक याचना सुनते ही दशरथ मूर्छित होगये, क्योंकि रामचन्द्र ही उनके प्राणसर्वस्व थे। क्षत्रिय होनेके कारण प्राण जानेपर भी वे अपना बचन नहीं मेट सकते और प्राणसमान पुत्रको वनमें जानेकी आज्ञा भी नहीं दे सकते थे। पिता दुविधेमें पड़े हैं देख, पितृबचन सत्य करनेके अभिप्रायसे पितृभक्त रामचन्द्रने स्वयं राज्य त्यागकर वनवास करना स्थिर किया। पिता माता और गुरुजनको वन्दन कर राम वनमें चले। उनकी धर्मपत्नी जानकी और अनुज लक्ष्मण भी साथ हो लिये। रामचन्द्रने बहुत कुछ उन्हें समझाया कि, तुम हमारे साथ कष्ट न उठाओ, परन्तु उन्होंने रामका साथ न छोड़ा। राम, लक्ष्मण और जानकीके जाते समय नगरके नरनारीगण दुःखित अन्तःकरणसे पुक्का फाड़कर रोने लगे। दशरथ, कौशल्या और सुमित्राके दुःखकी सीमा ही न रही। नगरकी सीमातक सुमन्त आदि मन्त्री तथा पुरजन रामचन्द्रको पहुंचा आये। नगरके स्त्री-पुरुष रथके आगे सोकर रामको जानेसे रोकते जाते और राम हाथ जोड़ बड़े अनुनय-विनयसे उन्हें समझाकर लौटाते जाते थे। सबके लौटनेपर रामने रथ भी लौटा दिया। लोगोंने लौटकर

रामविहीन अयोध्याको श्मशानके समान रमणीयतासे विहीन देखा। परन्तु करते क्या? मन मार कर रह गये। इधर राम, लक्ष्मण और सीता तीनों तमसा नदीको लांघकर चलते चलते गङ्गातटपर पहुंचे। सुकुमार सीताकी कुश-कंकड़ और कण्टकोंसे आकीर्ण वनमार्गसे चलते हुए कैसी दशा हुई होगी, सो वर्णन नहीं की जा सकती। रथसे उतर थोड़ा ही चलकर जब सीताने रामसे पूछा—"नाथ! अब वह वन कितनी दूर है?" तब लक्ष्मण जैसे वीरके भी नेत्रोंमें आँसू भर आये।

गङ्गातटपर राम लक्ष्मणने सन्ध्यावन्दन कर पार उतारनेके लिये केवटोंके राजा गुहसे नाव मांगी। गुहने एक कठौतेमें पानी ले दोनोंके पर धोये। इसका कारण पूछनेपर उसने कहा—"महाराज! आपके चरणके छूनेसे एक शिला स्त्री बन गई थी। मैं अपनी नावसे ही कुटुम्बका पालन करता हूं। आपके चरण-स्पर्शसे वही यदि स्त्री बन जाती, तो मेरी जीविका मारी जाती। इसी विचारसे कठौती आपके चरणसे छुआकर मैंने अनुभव कर लिया कि, आपके चरणस्पर्शसे काठ स्त्री नहीं बनता। अस्तु, अब मैं आपसे उतराई नहीं लूँगा। जब मैं आपकी नदीके निकट आऊँगा, तब आप भी मुझे विनामूल्य पार उतार देना।" गुहकी निष्कपट और भक्तिभरीं बातें सुन रामचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए और उसे उन्होंने गले लगाकर अपना मित्र बना लिया। गङ्गा पार कर तीनों प्रयागमें भरद्वाजके आश्रममें गये और वहाँ कुछ दिन रहकर चित्रकूट पर्वतपर वाल्मीकिके निकट पहुंचे।

श्रवणकुमार नामक ब्राह्मणको अनजाने ही मार डालनेके कारण उसके वृद्ध माता पिताने दशरथको शाप दिया था कि, तू भी पुत्रशोकसे मरेगा। तदनुसार रामवियोगसे दशरथका देहान्त होगया। भरत ननिहालमें थे, जब दूत भेजकर बुलाये गये, तब

वे उजड़ी अयोध्याको देख पहिले तो बड़े आश्चर्यचकित हुए, परन्तु केकयीकी करतूत सुनते ही मूर्छित हो गिर पड़े। केकयीने भरतसे कहा कि, तुझे राज्य प्राप्त हो, इसीलिये मैंने इतना उद्योग किया है। भरतने उसे बहुत फटकारा, फिर पिताके देहका रोते हुए अन्तिम संस्कार किया और स्वयं राजपाट त्यागकर तथा बल्कल धारण कर अयोध्यावासी स्त्री पुरुष, मन्त्रीमण्डल एवं माताओंके साथ रामको लौटा लानेको वे निकले। इस घटनाका प्रधान कारण मन्थराको जान शत्रुघ्नने उसे बहुत पीटा। पर पीटनेसे अब क्या लाभ है? जो होना था सो होगया, जानकर मारा नहीं।

भरतजी चित्रकूट पर्वतपर पहुंचकर परिवार सहित रामचन्द्रसे मिले। दशरथकी मृत्युका समाचार सुन राम भी बड़े दुःखित हो, मूर्छित हो गये। सावधान होनेपर सबने मन्दाकिनीके तटपर पितृश्राद्ध तर्पण आदि धार्मिक और्ध्वदेहिक कार्य किये। रामको लौट चलनेके लिये भरतने बहुत अनुरोध किया,—अन्न त्यागकर उनके कुटीरके द्वारपर धन्ना दिया; परन्तु रामने पितृवचन पालनका महत्त्व समझाकर और १४ वर्ष बीतनेपर लौट आनेका अभिवचन देकर उन्हें विदा किया। भरतने राज्य करना अस्वीकार किया। तब रामने अपनी पादुकाएँ देकर कहा, इनको राजा मानकर तुम प्रतिनिधिरूपसे राज्य करो। खिन्न होकर भरतने आज्ञा सिर चढ़ाई। रामने उन्हें राजनीतिका उपदेश दिया। भरत परिवार सहित लौट आये, परन्तु अयोध्या न जाकर उन्होंने निकट ही 'नन्दिग्राम' नामक छोटासा ग्राम बसाया। वहीं वे रहने लगे और साधुवृत्तिसे राज्यसूत्र हिलाने लगे। उन्होंने रामसे प्रतिज्ञा करा ली थी कि, वे १४ वर्ष समाप्त होते ही लौट आवेंगे। यदि एक दिनका भी विलम्ब होगा तो, भरत अग्निमें जल मरेंगे। भरतके तापस वेषमें होनेके कारण मन्त्रीमण्डलने भी काषाय वस्त्र

धारण किये। कौशल्या और सुमित्रा सती होना चाहती थीं, परन्तु वशिष्ठने उन्हें सहगमन करने नहीं दिया। केकयीको भी पीछेसे बहुत पछतावा हुआ। परन्तु अब क्या? "सहसा करि पाछे पछताई!" भरतका भ्रातृप्रेममूलक स्वार्थत्याग और केकयीका स्त्रीचरित्र वास्तवमें अवर्णनीय है। एक विद्वानने लिखा भी है कि,—"केकयीके सहस्त्रों दोष, हम उस समय क्षमाके योग्य समझते हैं, जब हमें इस बातका ध्यान होता है कि, वह भरत जैसे सुपुत्रकी माता थी।"

चित्रकूटमें कुछ दिन रहकर सीतासहित राम लक्ष्मण अत्रिऋषिके आश्रममें गये। वृद्ध ऋषि तीनोंका दर्शन कर आनन्दके मारे फूले नहीं समाते थे। फल फूल आदि भेंटकर अत्रिने रामके साथ अनेक शास्त्रोंकी आलोचना की। उनकी वृद्धा तपस्विनी पत्नी अनुसूयाने भारतवासियोंके अस्तित्व और जीवनके एकमात्र आधार-स्वरूप पातिव्रत्य धर्मका सीताको उपदेश दिया, जो प्रत्येक आर्य-महिलाको अपने हृत्पटलपर अङ्कित कर लेना चाहिये। ऋषि और उनकी पत्नीसे बिदा मांग, तीनों दण्डकारण्यकी ओर गये। दण्डकारण्यका राजा विराध नामक राक्षस था, जो ब्राह्मणोंको बहुत कष्ट देता था। उसने इतने ब्राह्मण मारेथे कि, उनकी अस्थियोंके पर्वत बन गये थे। उसकी विकराल मूर्त्तिको देख सीता डरीं। विराधने सीताको उठा लिया और राम लक्ष्मणको धुतकार दिया। यह विचित्र विडम्बना देख, दोनोंसे न रहा गया। तुरन्त दोनोंने मिलकर उसको मारडाला। वास्तवमें वह शापग्रस्त तुम्बरू नामक गन्धर्व था, जो रामके हाथोंसे मारा जाकर राक्षसयोनिसे छूट गया। फिर तीनों शरभङ्ग, सुतीक्ष्ण, अगस्ति आदि ऋषियोंके आश्रमों और पञ्चाप्सर आदि तीर्थोंको देखते हुए गोदावरीके तट-पर पञ्चवटीमें पहुँचे और एक सुन्दर कुटी बनाकर वहीं रहने लगे।

लङ्कापति रावणकी बहिन शूर्पनखा अपने भाई खरके साथ उसी वनमें रहती थी। रामको देखते ही वह उनपर मोहित होगई। उसने रामके पास इच्छा प्रकट की; परन्तु राम एकपत्नी ब्रह्मचारी थे। उनको उसकी घृणित इच्छा सुनकर क्रोध हुआ। रामने उसे लक्ष्मणके पास यह कह कर भेजा कि, मेरी स्त्री साथ है, वह विना स्त्रीका है, उससे अपनी इच्छा प्रकट करो। लक्ष्मणने भी मीठी मीठी बातें कर उसे रामके पास भेजा। इस प्रकार दो चार बार उसे इधर उधर भटका कर रामका संकेत पाकर लक्ष्मणने उसके नाक कान काट लिये। बहिनकी यह दुर्दशा देख, खर अपने सेनापति दूषण और त्रिशिरा सहित रामसे लड़ने आया; परन्तु चौदह हज़ार सेना सहित वह मारा गया।

रामसे इस अपमानका बदला चुकानेके विचारसे शूर्पनखा रावणके पास गई और उससे सब वृत्तान्त कह सुनाया। रावण जानता था कि, रामसे लड़कर जीतना सहज नहीं है; क्योंकि राम सब राक्षसोंसे बलवान् हैं। इसलिये उसने उनसे कपट करना स्थिर किया। एक दिन रामचन्द्र, सीता और लक्ष्मण लताकुञ्जके बाहर एक स्वच्छ शिलापर बैठे थे। इतनेमें रावणने मारीच नामक अपने एक मायावी मित्रको सोनेके हरिणका रूप देकर वहाँ भेजा। उसे देख सीताने रामसे कहा, यदि इस हरिणका चर्म आप मुझे ला दें, तो मैं उसकी चोली बनाऊँगी। रामने सीताकी रक्षाके लिये लक्ष्मणको नियुक्त कर हरिणको पछियाया। हरिण रामको बहुत दूर ले गया। अन्तमें रामका बाण लगते ही उसका मूलरूप प्रकट हुआ और वहीं उसके प्राण निकल गये। रामने समझ लिया कि, इसमें कुछ न कुछ धोखा अवश्य है।

इधर सीता और लक्ष्मणको यह करुणध्वनि सुनाई दी कि,—"हे लक्ष्मण! दौड़ो और शीघ्र आकर मुझे सहायता करो।" रामकी

करुणाभरी उक्ति सुन, सीता घबड़ा गयी और लक्ष्मणसे शीघ्र जानेके लिये कहने लगी। लक्ष्मणने उसे बहुत समझाया कि, यह रामकी वाणी नहीं है; परन्तु सीताका समाधान नहीं हुआ। वह लक्ष्मणको अनेक दुरुक्तियाँ कहने लगी। विवश हो लक्ष्मणको जाना ही पड़ा। जाती समय कुटीकी चारों ओर उन्होंने एक गोल अग्निरेखा जला दी और सीतासे कह दिया कि, जब तक हम लौट न आवें, तब तक इस रेखाका उल्लङ्घन न करना। लक्ष्मणको गये बहुत देर न हुई होगी कि, एक साधु सीताके निकट आकर भिक्षा माँगने लगा। सीताने कहा—"थोड़े ठहरो, घरके लोग बाहर गये हैं, वे आते हैं तो मैं भिक्षा देती हूँ।" साधुने कहा—"मुझे ठहरनेका अवकाश नहीं है। भूखसे मेरे प्राण व्याकुल हो रहे हैं, जो कुछ हो, थोड़ा ही आहार मिलनेसे मेरी तृप्ति हो जायगी।" सीताको उसकी दया आई। वह उसे भिक्षा देने गई, तो उसने कहा—"इस अग्निरेखाके बाहर आकर निर्भय हो मुझे भिक्षा दें। साधुसे डरनेका आपको कोई प्रयोजन नहीं है।" सरलहृदया सीता ज्यों ही बाहर आई, त्यों ही साधुने अपना मूलरूप प्रकट कर उसे उठा लिया। वह बेचारी चिल्ला भी न सकी और साधुवेषधारी रावणने उसे रथमें बैठाकर शीघ्रतासे लङ्काकी ओर प्रयाण किया। इस विपत्तिमें पड़कर सीताने एक चातुरी की कि, अपने अलङ्कार उतार उतार कर वह बराबर मार्गमें फेकती जाती थी, जिससे ढूँढनेवालोंको उसके मार्गका पता लगे।

सीताका रोदन सुन, उसको छुड़ानेके लिये मार्गमें जटायु नामक वृद्ध तपस्वी गृध्रराजने रावणसे युद्ध किया। परन्तु रावणने निर्दयतासे उसके पंख काट डाले। इधर राम और लक्ष्मण पर्णकुटीमें आकर देखते हैं कि, सीता नहीं है। दोनों बड़ी चिन्तामें पड़कर उसे खोजने निकले। मार्गमें उन्हें मृतप्राय जटायु मिला।

उसने सीताका वृत्तान्त कह सुनाया। उसकी दशा देख, रामको करुणा आई। उन्होंने उसे गोदमें उठा लिया। रामकी गोदमें जटायुने प्राण त्याग किये। रामने कृतज्ञतासे अपने इस विपत्ति-सहायक मित्रकी और्द्ध्वदेहिक क्रिया की। यहीं शबरी भीलिनने आकर राम लक्ष्मणकी फल फूलोंसे पूजा की। रामने कृपाकर उसे अपनाया। उसका जन्म सफल हुआ।

लङ्कामें आकर रावणने सीताको वश करनेके लिये अनेक यत्न किये, परन्तु सब निष्फल हुए। यह देख, उसने सेवकोंको आज्ञा दी कि, इसे अशोक वनमें ले जाकर रक्खो। जब इसे बहुत कष्ट होंगे, तो आप ही सब कुछ स्वीकार कर लेगी। अनेक राक्षसियाँ उसके पास आकर रावणके वैभव और बलका गान करतीं, पर सीता उधर ध्यान नहीं देती थी। वह अशोकवनमें दिन रात पतिका स्मरण करती हुई दिन काटने लगी।

राम लक्ष्मण, सीताका खोज करते हुए दक्षिणभारतकी किष्किन्धा राजधानीमें पहुंचे। वहाँके परम बली राजा बालीने अपने छोटे भाई सुग्रीवकी स्त्री हरण कर ली थी और भाईको मार भगाया था। बालीको शाप था कि, वह ऋष्यमूक पर्वतपर जायगा तो उसका सिर फट जायगा। इस कारण बेचारा सुग्रीव भाईके डरसे ऋष्यमूकपर्वतपर जा बसा था। उसका मंत्री हनूमान् असाधारण शक्तिशाली और अत्यन्त चतुर था। रामचन्द्र सुग्रीव और हनूमान्से मिलकर बहुत प्रसन्न हुए। सुग्रीव रामके सखा और हनूमान् दास हुए। रामने बालीको चतुरतासे मारकर उसके पुत्र अंगदको युवराज और सुग्रीवको किष्किन्धाका राजा बनाया। फिर सभी सीताकी खोजमें लग गये। सुग्रीवने बन्दरोंको मार्गमें मिले हुए अलङ्कार, राम-लक्ष्मणको दिखाये। लक्ष्मणने केवल पायजेब ही पहिचाने। क्योंकि प्राचीन मर्यादाके अनुसार

वे सीताकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखते थे। प्रतिदिन चरणवन्दनाके समय पायजेब देख पड़ते थे, सो ही वे पहिचान सके। रामने सब अलंकार पहिचाने। बन्दरोंने जान लिया कि, रावण दक्षिण दिशामें ही सीताको ले गया है। सुग्रीवकी आज्ञा पाकर हनूमान्, नल, नील, अंगद आदि सीताको खोजते हुए समुद्रतटपर आये।

जटायुके भाई सम्पातीने कहा कि, सीता समुद्रपार लङ्कामें रक्खी गई है। वहाँ जानेका किसीको धैर्य्य नहीं होता देख, हनूमान् एक ही उड्डानमें लङ्का पहुंचे। मार्गमें सुरसा, सिंहिका आदि राक्षसियोंने हनूमान्को जानेमें बाधा की; परन्तु उन्हें चकमा दे, वे आगे बढ़ गये। वहाँ रामभक्त विभीषणसे मिलते हुए अशोक-वनमें सीताके निकट पहुँचे। राक्षसियोंसे घिरी हुई जनकनन्दिनी एक वृक्षके नीचे, नीचा सिर किये, शोकाकुल हो बैठी थी। हनू-मान्को उसकी वह कृश और विपन्न अवस्था देख तथा रामचन्द्रकी विरहदशाका स्मरण कर रोमाञ्च हो आये। राक्षसियोंके हट जानेपर उन्होंने रामनामका गान किया, जिसे सुन सीताके मुरझे हृदयपर मानो अमृतकी वर्षा हुई। हनूमान्ने रामकी दी हुई चिन्हौतीकी अंगूठी सीताको दी और राम लक्ष्मणके कुशल समाचार सुनाये। परिवर्तनमें सीताने रामको देनेके लिये हनूमान्को एक शीशफूल दिया। हनूमान्ने कहा,—"आज्ञा हो तो मैं आपको कन्धेपर रख, रामके पास पहुँचा दूँ।" परन्तु सीताने कहा,—"यह ठीक नहीं, इस प्रकार भाग जाना महाराजके लिये कीर्तिकर न होगा। यदि महाराज स्वयं यहाँ पधारेंगे, तो यहाँके असंख्य दैत्योंका नाश होकर देशका उपकार होगा और मुझ अभागिनीका छुटकारा भी हो जायगा।" सीतासे यह उत्तर पाकर हनूमान् प्रसन्नचित्तसे सीताको प्रणाम कर रामचन्द्रके पास लौट आये।

आते समय रावणका उद्यान उन्होंने इसलिये उजाड़ दिया कि, यहांके लोग लड़ेंगे तो उनके बलका पता तो लग जायगा। उद्यान उजड़ा देख, रावणने क्रोध कर ८० हजार राक्षसोंसहित अपने पुत्र अक्षयकुमारको हनूमान्को पकड़ लानेको भेजा; परन्तु हनूमान्ने सबको मार डाला। फिर रावणका दूसरा पुत्र मेघनाद गया। उसने हनूमानपर ब्रह्मास्त्र फेंका। उसे भी वे तोड़ सकते थे, पर अस्त्रकी सम्मानरक्षाका विचार कर, वे आप बँध गये। इस बहानेसे उन्होंने रावणकी सभा भी देख ली। रावणने हनूमान्की पोंछ जला देनेकी आज्ञा दी। तदनुसार अनेक राक्षसोंने कपड़े लत्ते हनूमान्की पोंछमें बांधे और तेलमें भिगोकर उसमें बत्ती लगा दी। हनूमान् जलती पोंछ लेकर भागे और लङ्काका एक एक घर जलाने लगे। केवल रामभक्त विभीषणके घर और सीताके अशोकवनको छोड़, सारी स्वर्णपुरी हनूमान्ने जलाकर भस्म कर दी।

राम लक्ष्मणने हनूमान्से सीताकी दशाका वर्णन सुना, जिससे उन्हें उसके पता लगनेका तो आनन्द हुआ ही, परन्तु उसकी दुरवस्थाका वर्णन सुन अत्यन्त दुःख हुआ। अस्तु, रावणसे युद्ध करनेके लिये बन्दर और भालुओंकी बड़ी भारी सेना इकट्ठी की गई तथा समुद्रपार करनेके लिये एक प्रचण्ड पुल बाँधा गया। समुद्रने पहिले तो पुल बाँधनेमें आपत्ति की, परन्तु रामबाणसे डर कर पीछेसे उसने स्वीकार किया और परिवार सहित श्रीरामकी भक्तिभावसे पूजा की। पुल बांधते समय बन्दर बड़े बड़े वृक्ष और पर्वत समुद्रमें फेंक रहे थे। उन्हींके साथ एक गिलहरी भी बालूमें लेट जाती और फिर समुद्रके पास आकर पानीमें अपना शरीर झाड़ देती थी। उसे देख बन्दरोंकी हँसी रोकनेसे भी नहीं रुकी। तब रामने बन्दरोंसे कहा—"देखो, जितनी जिसकी शक्ति है, उसके

अनुसार ध्यान लगा कर अपने भरसक यदि काम वह करे, तो उसकी योग्यता प्रचण्डशक्तिशाली कार्यकर्त्ताओंकी अपेक्षा कम नहीं होती।" कहते हैं कि, रामने प्रेमसे उसकी पीठपर हाथ फेरा था, जिसके चिन्ह अभी तक गिलहरीकी पीठपर देख पड़ते हैं।

पुल बँध जानेपर रामने राजनीतिके अनुसार अङ्गदको दूत बनाकर सन्धिका प्रस्ताव करनेके लिये रावणके पास भेजा। अङ्गदने चतुरतासे दूतकार्य्य कर कहा—"आप जानकीजीको लौटा दें, नहीं तो परिवार सहित मरनेको प्रस्तुत हो जावें।" रावणने अङ्गदकी कौन कहे, मन्दोदरी, इन्द्रजित्, मन्त्री आदि किसीकी नहीं सुनी और वह रामसे युद्ध करनेको प्रस्तुत हो गया। दोनों दलोंमें घमासान युद्ध हुआ। रक्तकी नदियाँ बह निकलीं और मृत शरीरोंके पर्वत बन गये। एक एक करके सब राक्षस मारे गये। इन्द्रजित्ने लक्ष्मणपर शक्ति चलाई थी, जिससे लक्ष्मण मूर्छित हो गये थे। परन्तु देवोंके वैद्य सुषेणकी सम्मतिसे द्रोणाचलसे हनूमान्ने सञ्जीवनी लाकर उन्हें सचेत किया। फिर युद्ध हुआ। अन्तमें रावण कुम्भकर्ण भी मारे गये। इन्द्रजित्की स्त्री सुलोचनाने पति-सहगमन किया। युद्ध समाप्त कर, श्रीरामचन्द्र सीतादेवीको छुड़ा लाये। सर्वत्र आनन्द ही आनन्द हो गया। रावणके पश्चात् बिभीषणको रामने लङ्काके राज्यपर प्रतिष्ठित किया। क्योंकि युद्धके पहले ही वह रामकी शरणमें आ गया था और उसने युद्धमें रामको बहुत कुछ सहायता पहुंचाई थी।

सीताके विषयमें लोग सन्देह करने लगे कि, इतने दिनोंतक राक्षसोंके यहाँ रहकर वह शुद्ध कैसे रही होगी? यदि वह सचमुच शुद्ध होगी, तो अग्निमें प्रवेश कर अपनी पवित्रता सिद्ध करे। गुरुजनने सीताकी पवित्रताके सम्बन्धमें लोगोंको बहुत कुछ विश्वास दिलाया; परन्तु उनका समाधान नहीं हुआ। लाचार

हो, रामने चिता तैयार करायी और उसमें सीताने प्रवेश किया। सीताका इस प्रकारसे लोकापवादके कारण अन्त हुआ देख, सज्जनोंको बहुत दुःख हुआ। परन्तु थोड़े ही समयमें देखते क्या हैं कि, स्वयं अग्निनारायण स्वर्णसिंहासनपर बैठकर सीताको गोदमें लिये हुए चितासे प्रकट हुए और उन्होंने त्रिलोकपावनी सीताको प्रेमपूर्वक रामके स्वाधीन कर दिया। चारों ओरसे सीताके नामकी जयध्वनि सुनायी देने लगी। स्वर्गसे देवताओंने पुष्पवृष्टि की। राम, लक्ष्मण, सुग्रीव आदि प्रसन्न हुए। उसी दिनसे संसार सीताके सतीत्वका यशोगान मुक्तकण्ठसे गा रहा है।

वनवासके चौदह वर्ष समाप्त कर, सीताके साथ राम और लक्ष्मण रावणके पुष्पक विमानपर चढ़कर अपनी राजधानी अयोध्यामें लौट आये। साथमें सुग्रीव, अंगद, विभीषण, हनूमान आदि युद्ध-सहायक वीर भी आये थे। भरत चिता तैयारकर बैठे ही थे,—क्योंकि उसी दिन रामको गये चौदह वर्ष समाप्त होते थे,—उस दिन यदि राम न आते, तो वे अग्निमें देह अर्पण कर देते। परन्तु विमानको दूरसे आते देख और आगे आये हुए हनूमानसे रामके आगमनका समाचार सुन, शत्रुघ्नके साथ रामकी अगवानीका प्रबन्ध करनेमें वे लग गये। बड़े ठाठसे सबका स्वागत किया गया। अयोध्याका शृङ्गार देखते ही बनता था। अयोध्यावासियोंके मुरझाए हुए हृदय फिरसे लहलहा गये। बन्धुविरहसे भरत सूखकर काँटा हो रहे थे। सिरपर जटा बढ़ाये, गेरुआ ओढ़े, जोगिया वेषमें जब वे रामके चरणोंमें आगिरे और रामने उन्हें उठाकर छातीसे लगा लिया, उस समयका दृश्य पत्थरको भी पिघला देता था। राम-लक्ष्मण और सीताने माताओं और महर्षि वशिष्ठ आदिको प्रणाम किया। सबने रामचन्द्रका सिर सूंघा और बहुत बहुत आशीर्वाद दिये। सुमुहूर्तपर रामचन्द्रका राज्याभिषेक

हुआ। विभीषणादि अभिषेकमहोत्सव समाप्त होनेपर रामकी आज्ञा पाकर अपने अपने राज्योंमें चले गये। हनूमानजी रामके निकट ही रहे। उन्हें रामने कर्मोपासनाज्ञानकाण्डके रहस्यको प्रकाशित करनेवाली गीता सुनायी थी। रामचन्द्रकी राज्य-व्यवस्थासे सब प्रजा अत्यन्त प्रसन्न रहा करती थी।

कुछ समय आनन्दसे व्यतीत होनेपर सीता और उसकी तीनों देवरानी गर्भवती हुईं। परन्तु सीताके विषयमें लोकापवाद बना ही रहा। इस कारण रामने उन्हें त्यागकर वनमें छोड़ दिया। उनके नौ मास पूर्ण होगये थे। गर्भकी कठोर यातनाएँ असह्य हो रहीं थीं। तौभी लोकाराधनके हेतु धारण की हुई कठोरताके लिये सीताने रामको दोष न देकर अपने भाग्यको ही दोष दिया। वे रामचरणको हृदयमें रखकर वाल्मीकिके आश्रममें गईं। वहीं प्रसूत हुईं। उन्हें दो पुत्र हुए। ऋषिने एकका नाम लव और दूसरेका कुश रक्खा। वाल्मीकिने योग्य समयमें उनके चूड़ाकर्म, उपनयनादि संस्कार कर, समस्त विद्या-कलाओंमें उन्हें पारङ्गत कराया। साथ ही अपनी बनाई रामायण भी उन्होंने दोनों कुमारोंको ताल-स्वरके साथ कण्ठस्थ करा दी थी।

इधर स्वर्णमयी सीताकी प्रतिमा बनाकर रामचन्द्रने अश्वमेध यज्ञ करना विचारा। अश्वमेधका घोड़ा वाल्मीकिके आश्रममें आते ही लव और कुशने उसे पकड़लिया। अश्वरक्षक लक्ष्मणपुत्र चन्द्रकेतु, हनूमान् आदिसे लव-कुशका युद्ध हुआ। वह युद्ध देख, राम-लक्ष्मण आदि सभी चकित हुए। किसी प्रकार समझा बुझाकर सब लोग घोड़ेको छुड़ा लाये। यज्ञकार्य प्रारम्भ हुआ। जो राक्षस यज्ञके शत्रु थे, वे ही इसकी रक्षा करने लगे। निमंत्रित अनेक राजन्यगण और ऋषिगणमें वाल्मीकि भी लव-कुश सहित यज्ञदर्शनके लिये पधारे थे। साथमें गुप्त रूपसे सीता भी आईं थीं।

साङ्ग यज्ञ समाप्त होनेपर वाल्मीकिके प्रबन्धसे एक नाटक खेला गया। राम-लक्ष्मण, ऋषि-महर्षि, देव-गन्धर्व आदि दर्शक हुए। नाटकमें गुरुकी आज्ञा पाकर लव और कुशने अपने सुमधुर कोमल कण्ठोंसे वीणाके साथ मनोहर रागिनियोंमें रामचरितका गान आरम्भ किया। वाल्मीकिकी प्रतिभासे भरी प्रसादपूर्ण कविता और कुमारोंके रसमय स्वरोंको सुन, सभी चित्रचकितसे होगये। स्वयं रामचन्द्र तो अपने चरित्रश्रवणमें ऐसे तल्लीन हुए कि, उन्हें देहभान न रहा। जब सीतात्यागका करुणाजनक प्रसङ्ग निकला, तब तो हार्दिक वेदनाओंसे वे मूर्छित होगये। उनकी यह भयानक दशा देख, वाल्मीकिने उन्हें सावधान कर सीतासे पुनः मिला देनेका अभिवचन दिया। गुप्त रूपसे वहाँ सीता आई ही थीं, उन्हें बुलाकर वाल्मीकिने रामसे उनकी भेंट करा दी। सीताको देखते ही रामने उन्हें आलिङ्गन किया और वाल्मीकिसे परिचय पाकर दोनों कुमारोंका प्रेमसे चुम्बन किया।

यज्ञ-समयमें एक ब्राह्मणकुमार अनायास मर गया था। उसके पिताने उसका मृतशरीर रामके सम्मुख ला रक्खा और कहा कि, "हे राम! तुम्हारे पापसे मेरा पुत्र मरा है, इसकी हत्या तुम्हें लगेगी।" राम घबड़ाये। उनके राज्यमें अकालमृत्यु नहीं होती थी। विमानपर चढ़कर उन्होंने देखा कि, शम्बूक नामक एक शूद्र तपस्या कर रहा है। यह आचरण वर्णाश्रमधर्म्मके विपरीत देख, उन्होंने तुरन्त तलवारसे उसका शिर काट डाला। वह शापग्रस्त गन्धर्व था। मरते ही दिव्यलोकमें चला गया और इधर ब्राह्मणका कुमार जी गया।

मथुरामें लवणासुर ब्राह्मणोंको बड़ा कष्ट देता था। रामाज्ञासे शत्रुघ्नने उसे मारकर अपने ज्येष्ठ पुत्र शत्रुघातीको मथुरा और कनिष्ठ पुत्र सुबाहुको विदिशाका राजा बनाया। भरतने मामा

युधाजित्के कहनेसे सिन्धु देशपर चढ़ाई कर और वहाँके गन्धर्वोंको हराकर वहाँका राज्य अपने तक्ष और पुष्कल नामक दोनों पुत्रोंको दे डाला। लक्ष्मणने अपने दोनों पुत्र अङ्गद और चन्द्रकेतुको कारापथ देशका राज्य दिया और लव-कुश कुशावती तथा शरावतीके राजा हुए।

अब भी लोग सीताके चरित्रके सम्बन्धमें सन्देह करते ही थे उनका सन्देह मिटानेके लिये सीताने 'वन्दे मातरम्' का उच्चार कर भरी सभामें भूमिकी प्रार्थना की। तुरन्त स्वर्ण-सिंहासनपर विराजमान होकर भूदेवी प्रकट हुईं और सीताको गोदमें लेकर पुनः पृथ्वीमें समागईं। इस विचित्र घटनासे सब लोग भयभीत और चकित हुए। सीता-वियोगसे कौशल्या, सुमित्रा और केकयीका तो देहान्त ही होगया।

माता पिताका श्राद्ध आदि कर, एक दिन चारों भाई अध्यात्म विषयकी चर्चा कर रहे थे। इतनेमें कालमुनि रामसे मिलने आये। वे एकान्तमें मिलना चाहते थे। उन्होंने प्रतिज्ञा करा ली कि, हमारे एकान्तमें यदि कोई आवे, तो राम उसे मार डालेंगे। उनकी बातें चल रही थीं और लक्ष्मण द्वारपर खड़े थे। इतनेमें दुर्वासाने आकर उन्हें धमकाया कि, इसी समय यदि मुझे रामसे मिलने न दोगे, तो मैं तुम्हारा वंश शाप देकर निर्मूल कर डालूंगा। लक्ष्मणने वंशरक्षार्थ आत्मसमर्पण करनेका निश्चय कर, रामके पास जाकर दुर्वासाके आनेका समाचार कहा। तुरन्त कालमुनि यह कह कर चले गये कि, 'महाराज! आपका अवतारकार्य समाप्त होगया है, अब आप वैकुण्ठ पधारिये।' राम दुर्वासासे मिले। उन्हें भोजनकी अपेक्षा थी। रामने बड़े प्रेमसे उनको भोजन कराया। परन्तु कालमुनिसे की हुई रामकी प्रतिज्ञाके अनुसार लक्ष्मणको प्राणदण्ड भोगना पड़ा। लक्ष्मणने रामचन्द्रको भक्तिभावसे

५

प्रणाम कर और अपराधोंकी क्षमा मांग, सरयूतटपर जाकर अपना तेज विष्णुस्वरूपमें मिला दिया। राम, भरत और शत्रुघ्नने भी अपने अपने तेज भ्रातृवियोगसे विह्वल हो, भगवान् विष्णुमें मिला दिये। लक्ष्मण शेषावतार और सीता लक्ष्मी थीं, इस कारण दोनों पहिले वैकुण्ठमें रामके स्वागतके लिये गये। भरत, शत्रुघ्न, बन्दर, भालु आदिके रूपोंमें जो देवता अवतीर्ण हुए थे, वे रामके साथ हो लिये। महावीर हनूमानजी चिरञ्जीवी होकर अब तक भक्तोंकी कामनाएँ पूर्ण करते हैं।

भगवान् रामचन्द्रने मर्यादापुरुषोत्तम रूपसे इस प्रकार ११ सहस्र वर्षोंतक भूमण्डलमें राज्य कर अपनी अवतारलीला समाप्त की। रामचरित्रसे मनुष्यजातिको कैसी अपरिमित शिक्षाएँ मिलती हैं, उनका वर्णन नहीं हो सकता। सीताका पातिव्रत्य और भरतका त्याग तो अनिर्वचनीय है। रामकी राज्यप्रणाली स्वप्नकी सम्पत्तिसी हो रही है। पितृवचनपालन, कर्त्तव्यनिष्ठा, बन्धुप्रेम, शरणागतोंकी रक्षा, प्रजारञ्जन, वर्णाश्रमधर्ममर्यादा, शालीनता, चारित्र्यशुद्धि, निर्मोहता, न्यायपरायणता, वेद-शास्त्र-पारङ्गतता, स्वार्थत्याग आदि उनकी गुणावलियोंका गान करते हुए बड़े बड़े त्रिकालदर्शी महर्षियोंकी जिह्वा थक गई और लेखनी रुक गई है। अनन्त कालसे जगत् उनके गुणानुवाद गाता आया है और अनन्त कालतक गाता रहेगा। उनकी मर्यादारविके थोड़े ही किरण यदि हम भारतवासियोंके अन्तःकरणोंमें विकसित हों, तो हमारा देश पुनः अपने पूर्वगौरवको प्राप्त कर लेगा। श्रीभगवान् हमपर ऐसी ही कृपा करें, इस हेतु विनयावनत हो, हाथ जोड़ कर हम—

आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम्।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम्।

समस्त विपदाओंको हरण कर सम्पूर्ण सम्पदाओंको देनेवाले त्रिभुवनमनोहर श्रीरामचन्द्रको वारवार प्रणाम करते हैं।

आदर्श गृहस्थके लिये जिन शिक्षाओंकी आवश्यकता है, वे सब श्रीभगवान् रामचन्द्रके चरित्रसे मिलती हैं। मातृ-पितृवचनपालनमें दक्षता, बन्धुप्रेम, एकपत्नीव्रत, शरणागतरक्षा आदि उनकी बातें तो प्रसिद्ध ही हैं, किन्तु स्वधर्मपालन और प्रजारञ्जनके आगे वे संसारके सब सुखोंको तुच्छ समझते तथा धर्म और प्रजाके लिये सर्वस्व त्यागनेको तत्पर रहते थे। प्रथम सुग्रीवकी स्त्रीको छुड़ाकर तव उन्होंने सीताका उद्धार किया था। प्रथम विभीषणको राज्य दिलाकर तब वे स्वयं राज्यासनपर बैठे थे। प्रजाके सन्तोषके लिये प्राणसे प्यारी पत्नीको और धर्मपालनके विचारसे आत्मातुल्य भ्राताको उन्होंने त्याग दिया था। धर्मरक्षाके लिये उनका जन्म हुआ था और धर्मरक्षाके लिये उन्होंने देहविसर्जन किया। रामचरित्रकी इस उदारतर शिक्षाको विशेष रूपसे ग्रहण करना चाहिये।

ध्रुव।

अत्यन्त प्राचीन कालमें एक वेदज्ञ ब्राह्मणने इतनी अधिक तपस्या की कि, सब देवताओंने उसे स्वर्गमें सबसे ऊँचा पद देनेका निश्चय कर लिया। यद्यपि वह ब्राह्मण इच्छारहित और भगवान्के चरणकमलोंमें भ्रमरके समान लवलीन था, तथापि एक दिन एक राजपुत्रका वैभव देखकर उसे यह इच्छा हुई कि, मुझे भी ऐसाही वैभव प्राप्त हो। इस क्षुद्र इच्छालेशके रह जानेके

कारण उसे ऋषियोंमें श्रेष्ठ स्वायम्भुवमनुके पुत्र उत्तानपाद नामक राजाके घर जन्मग्रहण करना पड़ा। उत्तानपादकी दो रानियाँ थीं। बड़ी सुनीति और छोटी सुरुचि। वह ब्राह्मण सुनीतिके गर्भसे उत्पन्न हुआ। उसका नाम ध्रुव रक्खा गया। छोटी रानी,—जो राजाको विशेष प्रिय थी,—उसे भी उत्तम नामक एक पुत्र था। ध्रुव और उत्तम एक साथ ही खेलते कूदते और एक दूसरेको हृदयसे चाहते थे।

एक दिन ध्रुव और उत्तम खेलते हुए उत्तानपादके पास आये। राजा सुरुचिके भवनमें बैठे थे। उत्तम पिताकी गोदमें जा बैठा। ध्रुव भी गोदमें बैठने लगे। तुरन्त सुरुचिने हाथ पकड़कर उन्हें झटक दिया और कहा—"इस गोदमें वही बैठ सकता है, जो मेरी कोखसे उत्पन्न हुआ हो। तुझे यदि इसी गोदमें बैठना है, तो वनमें जाकर ऐसी तपस्या कर, जिससे मेरे पेटसे तेरा जन्म हो।"

स्वाभिमानी ध्रुवसे यह अपमान नहीं सहा गया। उन्होंने विमाताको प्रणाम कर दृढ़तासे कहा—"मां! तुम्हारा उपदेश शिरोधार्य है। अब मैं उसी गोदमें जाकर बैठनेका यत्न करूंगा, जहांसे कोई मानवी-शक्ति मुझे उठा न सके और जिस गोदमें निखिल-चराचर निरन्तर आनन्दसे खेल रहा है।" ध्रुवने सुनीतिके पास अपना दुःख आंखोंमें आंसू भरकर कह सुनाया। ध्रुवको छातीसे लगाकर सुनीति भी बहुत रोयी। उसने भी श्रीपतिके चरणोंका ही आश्रय ग्रहण करनेकी सम्मति दी। ध्रुव तपस्याके हेतु वनमें चलेगये। इस समय उनकी अवस्था केवल पाँच वर्षोंकी थी। ध्रुव जैसे सुशील और प्राणाधारस्वरूप इकलौते पुत्रके चले जानेसे पति त्यक्ता सुनीतिके दुःखकी सीमा नहीं रही। ध्रुवके चले जानेसे उत्तानपाद और प्रजाजन भी शोकाकुल होगये।

मार्गमें ध्रुवको सप्तर्षि मिले। उनसे—मतान्तरसे नारदसे—

उन्होंने मन्त्रोपदेश लिया और यमुना तटपर मधुवनमें वे घोर तपस्या करने लगे। पहिले मासमें फल और दूसरे मासमें साग-पात खाकर, तीसरेमें जल पीकर और चौथेमें वायु सेवनकर उन्होंने तप किया। पाँचवे महीनेसे सब छोड़, पैरके एक अँगूठेके बल पर खड़े हो, वे श्रीपतिके ध्यानमें डूब गये। ध्रुव जब दहिने पैरपर खड़े होते, तब दहिनी ओरकी और जब बाएँ पैर पर खड़े होते, तब बाईं ओरकी पृथ्वी दब जाती थी। एक अँगूठेके बलपर खड़े होनेपर तो सारा भूमण्डल डोलने लगता था। यही नहीं, किन्तु उनके श्वास रोकनेपर जीवमात्रका श्वास रुँध जाता था। उनकी इस तपस्यासे देवता घबड़ाये। उन्होंने ध्रुवका तपोभङ्ग करनेके लिये बनावटी सुनीतिको उनके पास भेजा। माँने करुणा-से बहुत समझाया, परन्तु ध्रुवने उधर ध्यान ही नहीं दिया। तब मुहँसे ज्वालाएँ उगालने वाले देवताओंके भेजे बहुतसे राक्षस, सर्प, सिंह आदि कोलाहल करते हुए उनपर दौड़ आये। फिर भी ध्रुव तपसे नहीं डिगे। अन्तमें सब देवता हारकर विष्णु भगवान्‌के पास जाकर ध्रुवसे जगत्‌की रक्षा करनेकी प्रार्थना करने लगे। विष्णु भगवान् गरुड़पर आरूढ़ हो, ध्रुवके निकट आ खड़े हुए। ध्रुव भगवान्‌की मूर्तिके ध्यानमें डूब रहे थे। भगवान्‌ने अपना शंख उनके गालको छुलाया। ध्रुवने आँखें खोलीं। सामने साक्षात् नारायणको देख, वे गद्गद हो; उनके चरणोंपर गिर पड़े और हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे। भगवान्‌ने प्रसन्न होकर वर देते हुए कहा–"ध्रुव! तुम अब अपना तप समाप्त कर घर लौट जाओ। तुम्हें उत्तानपाद अपना राज्य देदेगा। तुम छत्तीस हजार वर्षों तक राज्य कर, अनेक यज्ञादि पुण्यकार्य करोगे और देहान्तके पश्चात् सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र और सप्तर्षियोंसे भी ऊँचे लोकमें पहुंचोगे। वहीं तुम्हारे साथ तुम्हारी माता सुनीति भी रहेगी। उस लोकका

नाम 'ध्रुवलोक' होगा। कल्पान्तमें भी वह नहीं डिगेगा और धर्म, अग्नि, कश्यप, आदित्य आदि उसीके आसपास घूमा करेंगे।" भगवान् यह कहकर वहीं अदृश्य होगये और ध्रुव घर लौट आये।

ध्रुवका भाई उत्तम हिमालयकी तरहटीमें आखेटके समय एक यक्षके हाथसे मारागया और उसकी माता वहीं दावाग्निमें पड़कर जल मरी। दूतों द्वारा ध्रुवके लौट आनेका समाचार सुनकर राजा आनन्दसे उछल उठा और विपत्नी तथा उसके पुत्रकी मृत्युके दुःखको भूलकर, मन्त्री और पुरवासियों सहित ध्रुवकी अगवानीके लिये नगरकी सीमापर पहुंचा। उस दिन राजाने इतना दानधर्म किया, जिसकी गणना नहीं की जा सकती। तपसे ध्रुवका शरीर कृश होगया था, परन्तु तपस्तेजके कारण उनके शरीरसे प्रकाश निकलकर चारों ओर छा रहा था। उनका दिव्य स्वरूप देख, सब दर्शकोंके हृदय श्रद्धासे विनीत हो गये। सबने ध्रुवको भक्तिभावसे प्रणाम किया। राजाकी आँखें ड़बड़बा गईं। पश्चात्ताप-तप्त-हृदय पिता और दृढ़-निश्चयी पुत्रका मधुर प्रेमालिङ्गन देखते ही बनता था। हाथीपर बैठ, ध्रुव बड़े ठाठ बाटसे राजमहलमें आये। नगरमें सर्वत्र आनन्दोत्सव मनाया गया। शुभमुहूर्तपर राजाने ध्रुवको राज्याभिषेक किया। ध्रुवके राज्यमें प्रजा, दुःख क्या वंस्तु है, सो नहीं जानती थी।

ध्रुवका विवाह हुआ। उनको दो पुत्र होनेपर उत्तानपाद वनमें तपके हेतु चले गये। छत्तीस सहस्र वर्षोंतक राज्य कर और अनेक यज्ञ तथा पुण्यकार्य्य करनेके उपरान्त ध्रुव भी वद्रीनारायणमें जाकर श्रीभगवान्के ध्यानमें डूब गये। तब उन्हें लेजानेके लिये विष्णुदूत विमान लेकर आये। ध्रुव उनके साथ सानन्द हो लिये। मृत्युने उनसे हाथ जोड़कर कहा,—'महाराज! मेरा अङ्गीकार

कीजिये'। ध्रुवने उसके सिरपर पैर रखकर विमानमें आरोहण किया। कैलाश, वैकुण्ठ आदि लोकोंमें बहुत समय तक रहकर ध्रुवजी अपने नवनिर्मित ध्रुवलोकमें चले गये। वहीं उनकी माता उन्हें मिलीं। ध्रुवलोक अब भी अटल है। उसीके आसपास आकाशके ग्रह-उपग्रह घूमा करते हैं। भगवद्ध्यान-परायण ध्रुवने वहाँ पहुंच कर जान लिया कि—

"यस्मिन्वस्तुनि।ममता मम तापस्तत्र तत्रैव।
यत्रैवाहमुदासे तत्र मुदासे स्वभावसन्तुष्टः॥"

जिस वस्तुमें मेरी ममता थी, उसमें मुझे ताप ही हुआ और जिसके विषयमें मैं उदासीन था, उस पदको प्राप्तकर मैं स्वाभाविक-रूपसे सन्तोषके साथ प्रसन्न रहता हूँ। ध्रुवजीका यह अनुभव-पूर्ण वचन प्रत्येक हिन्दुसन्तानको अपने हृदयपर अङ्कित कर लेना चाहिये।

जो मनुष्य इस ध्रुवचरित्रको पढ़ता है, वह समस्त पातकोंसे मुक्त होकर देहावसानके पश्चात् स्वर्गमें पहुँचता है और पृथ्वीपर दीर्घायु होकर पुत्र-पौत्र-धनादि सुखोंसे युक्त होता है। पृथ्वी तथा स्वर्गमें वह उच्च पद प्राप्त करता है और कभी अपने स्थानसे च्युत नहीं होता।

यह जो लोगोंकी धारणा है कि, वृद्धावस्थामें ही तप करनेसे भगवान् प्रसन्न होते हैं, सो ठीक नहीं है। दृढ़प्रतिज्ञ भगवद्भक्त बालकोंपर श्रीभगवान् कितने शीघ्र प्रसन्न होकर कितनी अधिक कृपा करते हैं, ध्रुवचरित्रसे इसकी अच्छी शिक्षा मिलती है।

———

भक्तवर प्रह्लाद।

ब्रह्माजीके वंशमें उत्पन्न कश्यपके दिति नामकी स्त्रीसे दो पुत्र हुए। एकका नाम हिरण्याक्ष और दूसरेका हिरण्यकशिपु था। दोनोंने उग्र तप करके ब्रह्माजीसे बड़े बड़े बर मांग लिये थे। दोनोंको मारनेके लिये श्रीभगवान्‌को स्वयं अवतार धारण करना पड़ा था। हिरण्याक्षको मार डालनेके उपरान्त हिरण्यकशिपुने देवताओंसे विरोध बाँधा। उसे वरदान था कि, वह दिनमें–रात्रिमें, अस्त्रसे–शस्त्रसे, मनुष्यद्वारा–पशुद्वारा किसी प्रकार मारा नहीं जायगा। इस वरदानको पाकर वह उन्मत्त हो गया और सब देवताओंको उसने सता डाला। अधिकार पाकर प्रायः सभी लोग न्याय-नीतिको भूलकर अत्याचार करने लगते हैं और उन्हीं अत्याचारोंके अतिरेकसे उनका नाश भी होता है। हिरण्यकशिपुका नाश भी ऐसा ही हुआ।

गौ, ब्राह्मण और सज्जनोंके कष्ट भगवान्‌से नहीं देखे गये। उन्होंने अपनी विभूतिसे युक्त प्रह्लादको उसके पुत्ररूपमें उत्पन्न किया, तभीसे हिरण्यकशिपुके दिन फिर गये। उसकी दुर्बुद्धिसे उसका पुण्य बल घटने लगा। प्रह्लाद जन्मसे ही बड़े भगवद्भक्त, शीलवान, जितेन्द्रिय और समदर्शी थे। षण्डामर्क नामक अध्यापकके पास जब उन्हें पढ़नेके लिये भेजा, तब भगवद्भजनके अतिरिक्त उन्होंने कुछ नहीं पढ़ा। यही नहीं, किन्तु पाठशालामें जो अन्यान्य बालक पढ़ते थे, उन्हें भी उन्होंने भगवद्भक्त बना डाला। सब बालक पढ़ना लिखना छोड़, हरिनामकी गर्जना करने लगे। अध्यापकने दैत्य-शत्रु भगवान्‌का नाम लेनेसे सबको रोका, पर किसीने न माना।

तब अध्यापकने इस अपराधसे चिढ़कर सब बालकोंको धमकाया और प्रह्लादको तो बेतसे भी पीटा। पर उनका 'नारायण' स्मरण चलता ही रहा। बेंतके शब्दोंका ताल धर, वे 'गोविन्द' का भजन गाने लगे। अन्यान्य बालक सकपका गये, परन्तु प्रह्लादने अपना सत्कार्य्य नहीं रोका। सबके राजभक्त होनेपर भी प्रह्लाद भगवद्भक्त ही बने रहे। सच्चे और झूठे देशभक्तोंकी इस प्रकारकी परीक्षा संसारमें प्रतिदिन ही हुआ करती है, परन्तु प्रह्लाद जैसे सत्यनिष्ठ विरले ही इस परीक्षामें उत्तीर्ण होते हैं।

अध्यापक महाशय उकताकर प्रह्लादको हिरण्यकशिपके पास ले आये। प्रह्लादने पिताको विनीत भावसे प्रणाम किया। हिरण्यकशिपने उसको गोदमें बैठा लिया और प्रेमसे उसका सिर सूँघकर पूछा—"बेटा! तुमने इतने दिनोंतक जो कुछ पढ़ा, उससे तुम्हें क्या ज्ञान हुआ?" प्रह्लादने हाथ जोड़कर कहा—"पिताजी! समस्त विद्याओंका सार भगवत्प्रेम है। यह संसार नाशमान और भगवान् अविनाशी हैं। चराचर सृष्टिमें वे ही विराजमान होकर अपने आनन्दरूपमें रममाण रहते हैं। उनका न आदि है, न अन्त। वे अच्युत हैं। उनकी शरण लेनेसे जीवका पतन नहीं होता। उनकी कथा सुनना, उनके गुण गाना, उनका ध्यान करना, उनकी सेवा करना, उनको अपना सर्वस्व समझना, इन्हीं उपायोंसे जीव कृतकृत्य होता है।" प्रह्लादकी इन बातोंसे हिरण्यकशिप बड़ा क्रुद्ध हुआ। प्रह्लादको गोदसे ढकेलकर उसने अध्यापकको यह कह कर बहुत डांटा कि,—"क्या तुमने मुझे नीचा दिखानेके लिये मेरे पुत्रको मेरे शत्रु देवताओंका भक्त बनाया है?"

अध्यापकने प्रह्लादके साथ जैसा व्यवहार किया था, सो सब कहकर इसे पढ़ानेमें अपनी असमर्थता प्रकट की। हिरण्यकशिपने तब षण्डामर्कके गुरु शुक्राचार्यके पास पढ़नेके लिये प्रह्लादको भेजा।

शुक्राचार्य्यने भी बहुत प्रयत्न किये, परन्तु प्रह्लाद विष्णु-विमुख नहीं हुए। हिरण्यकशिपने पुनः प्रह्लादको बुलाकर पूछा कि, क्या अब भी तेरी बुद्धि बदली या नहीं? प्रह्लादने उत्तर दिया,-"पूज्य पिताजी! समस्त इन्द्रिय, मन और बुद्धिके सञ्चालक मुझे विष्णु भगवान् ही प्रतीत हुए। उनके अतिरिक्त और कोई वस्तु मैं देखता, तो बुद्धि-का बदल जाना सम्भव था, परन्तु उनके अतिरिक्त मुझे कुछ देख ही नहीं पड़ता। वे सर्व व्यापक, सर्वशक्तिमान्-" हिरण्यकशिप ऐसी बातें कब सुन सकता था? प्रह्लाद अपनी बात पूरी भी नहीं कर सका था कि, किटकिटाकर उस दैत्यने तुरन्त सेवकोंको आज्ञा दी कि;-"ऐसे कुलनाशक पुत्रका न होना ही अच्छा है। इसे अभी हाथियोंके पैरों तले कुचलवा दो।" इस आज्ञाको सुनते ही अनेक विकराल राक्षस प्रह्लादपर टूट पड़े। आँगनमें बड़े बड़े मत्त हाथी प्रह्लादपर छोड़े गये। जब प्रह्लादपर हाथी पैर रखते, तो वे आप ही चिग्घाड़ते हुए भागते और जब अपने दाँत गड़ाते तो उनके दाँत ही टूट जाते थे। यह चमत्कार देख, हिरण्यकशिप अधिक चिढ़ा। उसने बड़े बड़े विषधर सर्पोंसे उन्हें डसाया, पर फल कुछ नहीं हुआ। सर्पदंशसे प्रह्लादके शरीरसे रक्त बहने लगा सही, परन्तु जिन सर्पोंने उन्हें काटा, वे तुरन्त छटपटाकर मर गये। यह देख, प्रह्लाद बड़े दुःखित हुए। उन्होंने अपना रक्त हरिनाम लेकर सर्पोंको लगाया। वे जी गये और प्रह्लाद फूले हुए पलाशकी तरह शोभा पाने लगे। जहाँ जहाँ सर्प काटे थे, वहाँके व्रण हरिनामके अक्षरोंसे अङ्कित हो गये। सर्प भाग गये, यह देख हिरण्यकशिपने प्रह्लादको तपे तेलकी कढ़ाईमें छोड़नेकी आज्ञा दी। उबलते हुए तेलमें प्रह्लादको बड़ी निर्दयतासे दैत्योंने छोड़ा। भगवान्-की कृपासे वह उष्ण तैल शीतल चन्दन सा बन गया। प्रह्लाद वहीं आनन्दसे हरिगुण गाने लगे। प्रह्लाद जलते हुए अग्निकुण्डमें फेंके

गये, वहाँ भी अग्निज्वालाएँ मालती और गुलाबके फूलोंमें परिणत होकर उनके शरीरको सुख देने लगीं। फिर हिरण्यकशिपने अनेक सिद्ध अस्त्र और शस्त्रोंसे प्रह्लादपर आघात करनेकी आज्ञा दी। अनेक सिद्धहस्त राक्षसोंने भाँति भाँतिके अस्त्र शस्त्र प्रह्लादपर चलाये। पर प्रह्लादके शरीरमें किसीने स्पर्श नहीं किया। जो शस्त्र या अस्त्र तीव्रतासे चलाये जाते, वे प्रह्लादके पास आते ही हतप्रभ हो जाते थे। प्रह्लादने पिताके चरणोंको छूकर प्रार्थना की कि,—"आप क्यों व्यर्थ कष्ट करते हैं? मुझे कोई अस्त्र शस्त्र मार नहीं सकता। समस्त आयुधोंमें जब चक्रपाणि विराजमान हैं, तो वे अपने भक्तोंका संहार कैसे करेंगे? पिताजी! आप भी उस श्यामसुन्दरके रूपका ध्यान करिये और अपने आत्माको पवित्र कीजिये। इस जगत्में जीवका वही एक मात्र सहारा है।" हिरण्यकशिपने उनकी बात काटकर कहा,—"चुप रहो। ऐसी बातें मैं नहीं सुनना चाहता। इस ब्रह्माण्डमें मुझसे बढ़कर कोई शक्तिशाली नहीं है। देवता मेरे सेवक हैं। कौन है? इसे पहाड़की चोटी परसे ढकेल दो। देखें, इसका 'सहारा' वहाँ इसको कैसे सम्हालता है!" सेवक प्रह्लादको उठाकर पहाड़की चोटीपर ले गये। प्रह्लादके हाथ पाँव बाँध दिये, गये और उन्हें वहांसे सैकड़ों कोस नीचे खाईमें फेंक दिया। 'हरि हरि' की ध्वनि उस जनशून्य अरण्यमें गूँज उठी। चारों ओरसे आँधीसी उठी और सब लोग हक्काबक्का हो गये। थोड़े समयमें सबने क्या देखा कि, पहाड़की तराईमें कमलके कोमल पत्तोंपर प्रह्लाद लेटे हुए 'नारायण' नामकी गर्जना कर रहे हैं, चारों ओरसे जुही चमेलीकी लताएँ उनपर फूलोंकी वर्षा कर रही हैं, पारिजातके वृक्ष अपनी टेहुनियोंके चवँर डुला रहे हैं और पाससे छोटे छोटे झरने बह कर उनके कण्ठस्वरमें अपने कलकल स्वर मिला रहे हैं। हिरण्यकशिपने जब

यह समाचार सुना, तब तो क्रोधसे वह दिङ्मूढ़ होगया। कभी पत्थरोंको, कभी वृक्षोंको और कभी अपने आपको प्रह्लाद समझकर पीटता और नोचता खसोटता था। उसने बड़े बड़े विष बनाने वाले रसायन शास्त्रियोंको आज्ञा दी कि, ऐसा विष बनाओ जिसके स्पर्श या गन्धसे ही मनुष्यकी कौन कहे, बड़े बड़े जीवजन्तु भी मर जायँ। रासायनिक वैसा ही कालकूट विष बना लाये। हिरण्यकशिपने अपनी पत्नीसे कई वार कहा कि, वह पुत्रको समझावे। उसने अपने भर सक बहुत समझाया, पर बेचारी वह क्या कर सकती थी। प्रह्लाद उलटे उसीको भगवन्महिमा समझाने लगे। उसका प्रभाव माताके हृदयपर बहुत पड़ा और वह पतिसे प्रह्लादको क्षमा करनेकी प्रार्थना करने लगी। इससे हिरण्यकशिप बहुत ही चिढ़ा। उसने पत्नीको आज्ञा की कि,—"यह जो विष बनकर आया है, वह तू ही अपने हाथसे प्रह्लादको पिला।" पतिव्रता कयाधु (प्रह्लादकी माता) ने आँखोंमें आँसू भरकर पतिकी आज्ञाको सिर चढ़ाकर, पुत्रको गोदमें लिया और प्रेमसे उसका मुख चूमकर उसे विष पिला दिया। प्रह्लादने जनार्दनका स्मरण कर विष आनन्दसे पी लिया और वे हँसते हुए भगवन्नाम स्मरण करने लगे। यह देख हिरण्यकशिप आदि राक्षस बहुत ही दुःखित हुए, परन्तु माता कयाधुके आनन्दकी सीमा न रही।

हिरण्यकशिपके आश्रित कई मन्त्रशास्त्री पुरोहित थे। जो जारण-मारणादि षड्कर्मोंमें सिद्धहस्त थे। उन्होंने राजाज्ञासे प्रह्लादको मारनेके लिये बड़ा यज्ञ कर एक 'कृत्या' उत्पन्न की। कृत्याके अग्निकुण्डसे निकल कर सिंहगर्जना करतेही धरती कांप गई। वह विकराल वेष धारण की हुई राक्षसी हाथमें तीखा त्रिशूल लेकर प्रह्लादपर झपटी और उसने प्रह्लादपर त्रिशूल चलाया त्रिशूल प्रह्लादका स्पर्श होते ही टूक टूक हो गया। प्रह्लाद गदाधर-

का स्मरण करते हुए हँसते दिखाई पड़े। कृत्या जब विफल हुई, तो उसने उन पुरोहितोंको ही मार डाला, जिन्होंने उसे उत्पन्न किया था। यह देख प्रह्लादको बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने पुण्डरीकाक्ष-का स्मरण कर ब्राह्मणोंको स्निग्ध दृष्टिसे देखा। प्रह्लादके पुण्यसे वे तुरन्त जी गये। जीकर उन्होंने प्रह्लादको बहुत आशीर्वाद देते हुए उनकी मङ्गलकामना की।

हिरण्यकशिपुका शम्बर नामक एक मायावी दैत्य था। उसने प्रतिज्ञा की कि, मैं अपनी मायासे प्रह्लादको अवश्य मार डालूँगा। उसने सब शक्ति लगाकर अपनी माया प्रह्लादपर चलाई। प्रह्लादने विष्णु भगवान्के सुदर्शन चक्रका स्मरण किया। तुरन्त सब माया तितर बितर हो गई और शम्बर अपनासा मुँह लेकर रह गया। फिर दैत्येन्द्रने पवनको आज्ञा दी कि, वह प्रह्लादको सोख ले। अष्ट दिक्पाल हिरण्यकशिपुसे भयभीत हो उसके वशवर्त्ती हो रहे थे। पवन देव रूखे, ठण्ढे और तीव्र होकर प्रह्लादके शरीरमें घुसे। प्रह्लादको पवन-प्रवेशका अनुभव होते ही 'केशव' का स्मरण कर उन्होंने उसको पीकर पचा डाला। अब यह युक्ति निकली कि, प्रह्लादको समुद्रमें फेंककर शिलाओंसे पाट दिया जाय। दैत्यों द्वारा ऐसा ही किया गया। समुद्रमें गिरकर प्रह्लादने शेष-शायी भगवान्का स्मरण किया। वे तुम्बीकी तरह तैरने लगे और शिलाओंने कमलपत्रोंका रूप धारण करलिया। प्रह्लाद अब भगव-त्प्रेममें इतने रंग गये थे कि, वे अपने आपको नारायण समझने लगे। उनके रोम रोमसे 'विष्णु विष्णु' की ध्वनि उठने लगी। जिधर वे देखते या उनके शरीरसे हो कर जिधर जिधर हवा बहती, उधर सूखे वृक्ष हरे भरे हो जाते, दुःखी सुखी होते और जीवमात्र प्रसन्नतासे डोलने लगते थे।

सब उपाय कर देखे, पर किसीसे प्रह्लादका नाश नहीं हुआ।

तब तो हिरण्यकशिपकी अवस्था बहुत ही शोचनीय हो गई। उसे दिन रात नींद नहीं आती, किसीसे बोलता भी नहीं, राजकार्य्य भी देखता नहीं, उद्विग्न हो कर विना अन्नजल ग्रहण किये वह पागलकी तरह भ्रमता रहा।

वैशाख शुक्ला चतुर्दशीके दिन सन्ध्या समय प्रह्लादने आ कर पिताको प्रणाम किया और कहा—"पूज्यचरण! आपकी यह दशा देख मुझे बहुत दुःख होता है। अब भी आप विचार कर देखें कि, श्रीविष्णुभगवान्‌की शक्ति कैसी अनन्त, अतुल और अद्भुत है। उनकी आज्ञा या इच्छाके विना जगत्‌का एक परमाणु भी स्वतन्त्रता-पूर्व्वक टससे मस नहीं कर सकता। अपनी क्षुद्रशक्तिका अभिमान उस अगाधशक्तिके सम्मुख करना, उपहास-पात्र बनना है। वे सब शक्तियोंकी शक्ति हैं, उनसे वैर करना अपना नाश कर लेना है। पिताजी! आप क्रोध न करें और विष्णुभक्ति कर अपना जीवन सफल करें।" उन्मत्त हिरण्यकशिपने अति क्रुद्ध हो, उत्तर दिया—"प्रह्लाद, तू मेरा पुत्र नहीं, शत्रु है। क्या तू नहीं जानता कि, मेरे भयसे तीनों लोक काँपते हैं? मुझसे बढ़कर शक्ति है किसमें? मेरे सामने शत्रुकी बड़ाई करते तुझे लज्जा नहीं आती? मैंने अब-तक बहुत सही, अब मैं क्षणभर भी सह नहीं सकता। मैं अब अपने हाथों इसी खड्गसे तेरा शिरच्छेद करूँगा। देखें तेरा विष्णु तुझे मेरे पञ्जेसे कैसे बचाता है? तेरा वह विष्णु कहाँ है, सो मुझे बता, तो मैं उसका अभी गला घोंटकर लोहू पी जाऊँगा।" प्रह्लाद बोले,—"पिताजी! आपसे मेरी उत्पत्ति हुई है, आप मेरा भला बुरा सब कुछ कर सकते हैं, परन्तु उस जगत्‌पिताके विषयमें ऐसे वचन कहना आपको उचित नहीं है। वे जगज्जीवन सर्वत्र व्यापक हैं, परन्तु उन्हींको उनके दर्शन होते हैं, जिनका हृदय विशुद्ध हो।" हिरण्यकशिपने द्वारकी चौखटके खम्भेकी ओर

अंगुली-उठाकर पूछा,—क्या इस खम्भेमें भी तेरा विष्णु है ?" प्रह्लादने हाथ जोड़कर कहा,—"पिताजी ! मैं इस खम्भेमें भी उनका स्वरूप देख रहा हूँ ।" हिरण्यकशिपने प्रह्लादको मारनेके लिये खड्ग खींच लिया और खम्भेमें रोषसे एक घूँसा मारा। बस फिर क्या था, एकबार बिजलीसी चमक गई। खम्भा फट गया और ऐसा भयङ्कर शब्द हुआ, जिससे त्रिभुवन डगमगा गया। स्वर्गसे देवता, क्या चमत्कार है यह देखनेके लिये, वहां दौड़ आये। हिरण्यकशिप सहित सब दैत्य उस गर्जना और तेजसे मूर्छित हो गये। सबकी दशा भयानक हो गई।

खम्भेसे भगवान् नृसिंहका आविर्भाव हुआ। उनका ऊपरका धड़ सिंह और नीचेका मनुष्यकासा था। उनके विकराल विशाल देहको देखनेका भी किसीको साहस नहीं होता था। क्रोधसे उन्होंने हिरण्यकशिपको गोदमें उठाकर अपने पैने नखोंसे उसका पेट फाड़ डाला और उसकी अँतड़ियां गलेमें पहिन लीं। चारों ओर रक्त बहने लगा और वे दांतोंसे उसका शरीर छिन्न विच्छिन्न करने लगे। देवताओंने बहुत स्तुति की, पर नृसिंहदेवका कोप शान्त नहीं हुआ, तब प्रह्लाद स्तुति करने लगे। कयाधुने भी बहुत विनय किया। भगवान् नृसिंह शान्त हुए और उन्होंने प्रह्लादको अभय दे गोदमें बैठा लिया। प्रह्लादसे वर मांगनेका वे अनुरोध करने लगे। प्रह्लादने कहा,—"प्रभो ! आपके दर्शनोंसे मैं कृतार्थ हुआ। अब मुझे कोई इच्छा नहीं है। फिर भी आप यदि कुछ देना हो चाहते हैं, तो मेरे पिताके अपराध क्षमा करें और ऐसी कृपा करें जिससे मैं अपने कर्मानुसार किसी योनिमें क्यों न उत्पन्न होऊँ, आपके चरणोंको न भूलकर आपके ही गुण गाता रहूं।" भगवान् 'तथास्तु' कहकर अन्तर्धान हुए। प्रह्लाद दैत्योंके राजा बनाये गये। एक कल्प तक प्रह्लादने राज्य कर अन्तमें मोक्ष प्राप्त किया।

भक्तवर प्रह्लादका जन्म सुफल हुआ । उनकी तरह अनेक विपत्तियोंको सहकर भी जो सत्यमार्गसे नहीं डिगते, उनपर भगवान् अवश्य प्रसन्न होते हैं, यही प्रह्लादचरित्रसे बोध मिलता है । किसी कविने ठीक कहा है—

सकल धार्मिक विष्णुपदपर पिण्ड देते भातका ।
सो दिया प्रह्लादने प्रत्यक्ष अपने तातका ॥

इसीसे प्रह्लाद त्रिभुवनमें धन्य कहलाये हैं । जो मनुष्य भक्ताग्रगण्य प्रह्लादका चरित्र पढ़ते सुनते और सुनाते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो कर श्रीभगवान्के चरणोंको पाते हैं और उनकी रक्षा भगवान् वैसी ही करते हैं, जैसी उन्होंने भक्तशिरोमणि प्रह्लादकी की थी ।

महाराज हरिश्चन्द्र ।

कोई मनुष्य जन्मसे ही उन्नत नहीं हुआ रहता । दृढ़तापूर्वक त्याग, संयम और सत्कर्मोंके अनुष्ठानसे उसकी क्रमशः उन्नति हुआ करती है । उदाहरणके लिये हरिश्चन्द्रका चरित्र मनन करने योग्य है ।

सूर्य्यकुलमें परम महत्वाकाङ्क्षी राजा सत्यव्रत (त्रिशङ्कु) हुए । उन्हींके पुत्र राजा हरिश्चन्द्र थे । साधारण सुयोग्य नृपतियोंमें जो गुण होते हैं, वे सब हरिश्चन्द्रमें होनेके कारण इनकी प्रजा बहुत सुखी थी । अयोध्यामें हरिश्चन्द्रका राज्य था, किन्तु समस्त देशोंके राजन्यगण इन्हें अत्यन्त आदरकी दृष्टिसे देखते थे । हरिश्चन्द्र सच्चरित्र होनेपर भी उनमें ऐसा कोई असाधारण गुण नहीं था, जिसका विशेष रूपसे उल्लेख किया जा सके ।

हरिश्चन्द्रकी युवावस्था ढल गई, परन्तु विवाह किये बहुत दिन बीत जानेपर भी उन्हें कोई पुत्र नहीं हुआ। 'अपुत्रको शुभ गति प्राप्त नहीं होती' इस शास्त्रीय व्यवस्थापर विचार कर उन्हें बहुत दुःख हुआ। वे अपने कुल-गुरु वशिष्ठके पास जाकर कहने लगे,-"गुरो! आप मन्त्रवेत्ता महर्षि हैं। कोई ऐसा उपाय बताइये, जिससे मुझे पुत्र हो और मैं पितरोंके ऋणसे उऋण हो जाऊँ।" वशिष्ठने वरुणकी आराधना करनेका उपदेश दिया। राजाने वरुणकी आराधना कर उन्हें प्रसन्न किया और उनसे पुत्र माँगा। वरुणने कहा,-"यदि तुम अपने पुत्रको पशुकी तरह यज्ञमें हमें भेंट दो, तो हम तुम्हें पुत्र दे सकते हैं।" राजाने यह बात मान ली। वरुण लौट गये। दस महीनोंके पश्चात् राजाको पुत्र हुआ, जिसका नाम रोहिताश्व रक्खा गया। नगरमें पुत्रोत्सव मनाया जाने लगा। राजाने ब्राह्मणों और दीन दरिद्रोंको मनमाना धन बाँटा।

रोहिताश्व शुक्लपक्षके चन्द्रमाके समान दिन-प्रतिदिन ज्यों ज्यों बढ़ने लगा, त्यों त्यों राजाका भी पुत्रमोह बढ़ता गया। पुत्रके होते ही राजाके पास वरुणने आकर राजपुत्रका बलि माँगा। राजाने उनसे कहा, "महाराज! दस दिनों तक बालक अशुद्ध होता है, उसका इसी समय बलिदान कैसे किया जाय?" वरुण यह सुन कर चले गये और दस दिनोंके बाद आये। उस समय राजाने कहा,-"बिना दाँतोंका पशु पवित्र नहीं होता।" वरुण फिर चले गये और जब बच्चेके दाँत निकल आये, तब आ पहुँचे। राजा बोले,-"बालकका अभी चौल (मुण्डन) नहीं हुआ है। गर्भके बाल अशुद्ध होते हैं, मुण्डन हो जानेपर आप आनेकी कृपा कीजियेगा।" वरुण लौट गये और राजपुत्रका मुण्डन होनेके उपरान्त आये। राजाने बहुत सोच विचार कर कहा,-"प्रभो! मैं अपनी प्रतिज्ञाका अवश्य पालन करूँगा, परन्तु जब तक उपनयन-

संस्कार नहीं होता, तब तक बालक शूद्र समझा जाता है। अतः कृपा कर आज्ञा दीजिये तो मैं कुमारका यज्ञोपवीत-संस्कार कर लूँ, तब यज्ञ करूँ।" वरुणने हँसते हुए यह प्रार्थना भी स्वीकार कर ली। ब्राह्मणोंका आठवें वर्षमें, क्षत्रियोंका ग्यारहवें वर्षमें और वैश्योंका सोलहवें वर्षमें यज्ञोपवीत-संस्कार करनेकी शास्त्राज्ञा है। तदनुसार ग्यारह वर्षों तक हरिश्चन्द्र वरुणको इसी तरह टालते गये। जब राजपुत्रका यज्ञोपवीत-संस्कार हो गया, तब वरुणने आकर राजाको पुनः स्मरण दिलाया। अबकी बार राजा बहुत ही उद्विग्न हुए। उन्होंने वरुणकी अर्घ्यपाद्यसे पूजा कर हाथ जोड़ कहा,—"महाराज! बिना समावर्त्तनके उपनयन-संस्कार समाप्त नहीं होता। अतः कुछ दिन और क्षमा कीजिये। समावर्तन होते ही यज्ञ कर मैं आपको अपने पुत्रका बलि दूँगा।" इस पर वरुण बहुत क्रुद्ध हो झुँझला कर बोले,—"राजन् मैं कई बार आया और विमुख हो कर लौट गया। प्रत्येक वार तुमने कोई न कोई बहाना गढ़ सुनाया, यह ठीक नहीं। अस्तु, तुम समावर्तन कर लो। अबकी बार मैं कोई बहाना नही सुनूँगा और यदि तुमने फिर बगलें झाँकीं; तो मैं तुम्हें तुरन्त शाप दूँगा।"

यथा समय समावर्तन भी हो गया। राजाने दुःखितान्तःकरणसे यज्ञकी तैयारी करना आरम्भ किया। इस यज्ञका समाचार जब रोहिताश्वने सुना, तो वह बहुत डरा और रातों रात राजमहलसे कहीं भाग गया। दूसरे दिन राजपुत्रकी बहुत खोज हुई, पर उसका कहीं पता न चला। इधर वरुणदेव भी आ उपस्थित हुए। उनको देखते ही राजा बेंतकी तरह काँपने लगे। वरुणके यह पूछने पर कि,—"राजन्! अब तुमने कौनसा बहाना सोच रक्खा है?" राजाके मुँहसे एक शब्द नहीं निकल सका। वे पाषाणकी तरह केवल हाथ जोड़ कर सकरुण हो खड़े रहे।

वरुणको जब पता लगा कि, राजपुत्र प्राणभयसे कहीं भाग गया है, तो वे राजाको यह शाप देकर कि,-"मुझे तूने अनेक बार धोखा दिया है; इस कारण तुझे जलोदर रोग हो जाय !" क्रोध करते हुए चले गये।

राजा रोगसे पीड़ित हुए। इस महारोगकी पीड़ा उन्हें असह्य हो उठी। वनमें जब पिताके रुग्ण होनेका समाचार रोहितने सुना, तो वह अपने प्राणोंको समर्पित कर पिताके प्राण बचानेके विचारसे घरकी ओर चला, परन्तु मार्गमें इन्द्रने समझा बुझाकर उसे लौटा दिया। इधर राजाके जीवनकी आशा न रही। मन्त्र, मणि, औषधि आदिके बहुत उपचार किये, पर कोई फल नहीं हुआ। पिताकी इस तरह मृत्यु हो जाना पुत्रधर्मके विरुद्ध है, यह सोच रोहित पुनः घरकी ओर चला, पर इन्द्रने पुनः उसे लौटा दिया। रोगकी गुरुतर वेदनाओंसे विह्वल हो, राजाने इस दुःखसे छुटकारा पानेका उपाय अपने कुलगुरु महर्षि वशिष्ठसे पूछा। उन्होंने कहा,-"शास्त्रोंमें दस प्रकारके पुत्र कहे गये हैं, उनमें क्रीत (मोल लिया हुआ) पुत्र भी है। अतः तुम कोई पुत्र मोल लेकर यज्ञमें उसीका वलि करदो, तो तुम्हारा रोग छूट जायगा।"

राजाने बालकोंकी खोज कराई। अनायास उन्हें एक अच्छा बालक मिल गया। अजीगर्त नामक एक अत्यन्त धनलोभी ब्राह्मणने अपना मझला लड़का शुनःशेपको बहुतसा धन लेकर राजाके हाथ वेंचडाला। लड़का पाकर राजा प्रसन्न हुए। उन्होंने यज्ञकी तैयारी की। बड़े बड़े ब्रह्मज्ञानी, जमदग्नि, वशिष्ठ, उपास्थ जैसे ऋषि महर्षि ऋत्विक् बने। यज्ञकार्यका प्रारम्भ हुआ। शुनःशेप वधस्तम्भमें बांध दिया गया। इधर ऋत्विक् वेद-पाठ करते थे और उधर वह क्रीत-बालक मारे जानेके भयसे रोता चिल्लाता था। जब पशुवलिका समय आया, तब शमिता (यज्ञके पशुको मारनेवाला) को राजाने आज्ञा दी कि, वधस्तम्भमें बँधे हुए इस बालकको मार

डालो। शमिता शस्त्र लेकर उसके पास गया सही, परन्तु उस निरपराध बालककी करुण ध्वनि सुनकर और दीन दशा देखकर उसका उसपर हाथ नहीं उठा। वह शस्त्र फेंककर बोला,—"महाराज! मैं पशुको मारता हूं, मनुष्यको नहीं। केवल धन-लोभसे,—क्षमा करें, यह काम मुझसे नहीं होगा। स्वार्थके लिये नर-हत्या—ब्रह्महत्या—करनेसे मुझे मेरा हृदय रोक रहा है।"

शमिता अपना काम नहीं करता, यह देख राजाने उपस्थित लोगोंसे पूछा,—"अब क्या किया जाय? इस समय दूसरा शमिता कहांसे लाया जावे?" ब्राह्मण-बालकका करुण रोदन सुन, सब ब्राह्मण-मण्डली सहर उठी। कोई राजाके प्रश्नका उत्तर नहीं देते देख, शुनःशेपका पिता अजीगर्त उठ कर बोला कि,—"जब मैंने अपने पुत्रको बेच ही डाला है, तो उसे मार डालनेमें मुझे क्या सङ्कोच है? महाराज! आपका यज्ञभङ्ग मैं नहीं होने दूँगा। मैं स्वयं पुत्रवध करूंगा, परन्तु शमिताको जो धन दिया जाता है, उससे द्विगुण धन मैं लूँगा।" राजाने तुरन्त इच्छित धन देना स्वीकार कर लिया। अजीगर्त शस्त्र लेकर पुत्रकी ओर चला। पिताको वधिकके रूपमें देख, शुनःशेपने हाथ जोड़ कर कहा,—"पिताजी! क्या इसी दिनके लिये आपने मुझे पाल-पोस-कर बढ़ाया था? आज जो काम करनेपर आप उद्यत हुए हैं, जब मैं अबोध था, उसी समय यदि वह कर डालते, तो मुझपर प्रार्थना करनेकी बारी न आती!" अजीगर्तने उत्तर दिया कि,—"उस समय यदि मैं यह काम करता, तो मुझे इतना धन कैसे मिलता?" इस उत्तरसे शुनःशेप अवाक् हो गया। उपस्थित लोग उसीके साथ कातर हो रोने लगे। इधर राजा शुनःशेपको मारनेके लिये निष्करुण हो, अजीगर्तसे त्वरा कर रहे थे। महर्षि विश्वामित्रसे नहीं रहा गया। वे तुरन्त उठकर राजाके पास आये और कहते

लगे,—"राजन्! तुम ऐसा अत्याचार न करो। तुम्हारा यह काम क्षत्रियोंके योग्य नहीं है। क्षत्रियका धर्म है कि, वह लोगोंको सङ्कटसे बचावे, न कि जीवित निरपराध मनुष्यको स्वार्थके लिये मार डाले। संसारमें दयाके समान पुण्य नहीं और हिंसाके समान पाप नहीं है। नाशवान् शरीरके लिये निर्दयतासे ब्राह्मण-कुमारका वध करना कौनसी राजनीति है? जो अपनी प्राणरक्षाके लिये दूसरोंके प्राणोंको हरण करता है, जन्मान्तरमें मारा गया प्राणी मारनेवालेको अधिक कष्ट देकर मारता है। फिर यह तो ब्रह्महत्या है। इससे तुम जन्म जन्मान्तरमें भी छुटकारा नहीं पा सकते। राजा प्रजाके पाप-पुण्यके छठे हिस्सेका अधिकारी होता है। मनुष्य-विक्रय शास्त्रमें निषिद्ध माना है। तुम्हें अपने राज्यमें इस प्रथाको रोकना थां, सो तुम स्वयं उसे उत्तेजना ही नहीं देते, किन्तु क्रीत-मनुष्यका बध करनेको प्रस्तुत होते हो। तुम्हारा जन्म सूर्य्यवंशमें हुआ है। अपने धार्मिक पूर्वजोंकी कीर्तिका स्मरण करो और इस अधर्मसे मुँह मोड़ लो। तुम्हारे पिता त्रिशङ्कुको जब कि मैंने सदेह स्वर्ग भेज दिया, तब तुम्हारा यह यज्ञ साङ्ग सम्पन्न करोना मेरे लिये कठिन नहीं है। मैं अपने तपोबलसे तुम्हें यज्ञका फल प्राप्त करा दूँगा और तुम्हारा रोग भी छुड़ा दूँगा। यजमानको चाहिये कि, वह यज्ञमें ब्राह्मणोंकी इच्छाको पूरी करे। मेरी यही इच्छा है कि, तुम इस बालकको छोड़ दो। अन्तमें तुमसे यह भी कह देता हूँ कि, यदि तुमने मेरा कहा न माना, तो तुम बड़े पापके भागी होंगे और बहुत दुःख पाओगे।"

अनेक ऋत्विजोंने महर्षि विश्वामित्रके उपदेशका अनुमोदन किया, परन्तु राजाने किसीका कहा न माना। तब विश्वामित्र क्रोध और दयासे प्रेरित हो, रस्सीसे बँधे पड़े उस बालकके पास गये। उसे ढाढ़स दिलाया और एक ऐसा मंत्र जपनेको,

कहा, जिससे वरुण प्रसन्न हो सम्मुख आकर खड़े हो गये। वरुणको देख राजा उनके चरणोंपर गिर कर स्तुति करने लगे। वरुणने कहा,–"राजन्! इस ब्राह्मण-कुमारको तुम छोड़ दो। तुम्हारा यज्ञ पूरा हो गया और अब तुम्हारा रोग भी छूट जायगा।"

वरुणके चले जानेपर सब लोगोंसे शुनःशेपने पूछा,—"महात्मा लोगो! अब आप बताइये कि, मैं किसका पुत्र हूँ?" इस प्रश्नका उत्तर सहसा कोई नहीं दे सका। बहुत शास्त्रार्थ हुआ। कोई कहता कि,—"यह अजीगर्तका ही पुत्र है," तो तुरन्त उसे उत्तर मिलता कि,—"जब अजीगर्तने धनलोभमें पड़कर इसे बेच डाला और वह इसे मारनेको प्रस्तुत हुआ, तब यह उसका पुत्र नहीं, किन्तु विक्रेता (मोल लेनेवाला) राजाका पुत्र है।" इसपर वामदेव बोले,–"कभी नहीं, जब तक इसे राजाने वधस्तम्भमें नहीं बँधवाया था; तभी तक यह उनका पुत्र था, अब तो इसके प्राण बचानेवाले वरुणका ही यह पुत्र है।" बहुत कहा सुनी होनेपर महर्षि वशिष्ठने कहा,–"किसी देवताका कोई जप करे, तो उसका प्रसन्न होना स्वाभाविक है। वरुण इस कुमारके जपसे प्रसन्न हुए, इस कारण वे इसके पिता नहीं हो सकते। वास्तवमें इसे प्राणरक्षाका उपाय विश्वामित्रने बताया है, इस कारण यह उन्हींका पुत्र है।"

यह व्यवस्था सर्व सम्मतिसे स्वीकृत हुई। विश्वामित्र भी शुनःशेपको प्यारसे अपने आश्रममें ले गये। शुनःशेपके आनन्दकी सीमा न रही। विश्वामित्रकी चरणधूलिको शिर चढ़ाकर, वह उन्हींके साथ रहकर वेदाध्ययन करने लगा। राजाका रोग छूट गया और यज्ञ समाप्त हुआ जानकर रोहित भी घर लौट आया। सर्वत्र आनन्द मङ्गल हो गया। इसके उपरान्त हरिश्चन्द्रने राजसूय यज्ञ किया, जिसमें असंख्य ब्राह्मणोंको दान दक्षिणा देकर संतुष्ट

किया, परन्तु विश्वामित्रके मनमें राजाके हठ, निर्दयता और स्वार्थ-परताकी बात चुभती ही रही।

एकबार इन्द्रकी सभामें वशिष्ठजीका बहुत आदर हुआ देख, विश्वामित्रने उनसे पूछा,—" ऋषे! आपने कौनसा ऐसा बड़ा कार्य किया है, जिससे आपका यहां इतना आदर है?" वशिष्ठने उत्तर दिया,—"मेरा शिष्य बड़ाही उदार,पुण्यात्मा,परोपकारी,धार्मिक,प्रतापी, सत्यवादी और प्रजापालक है। ऐसा दाता न हुआ न होगा। उसी-की पुण्यकीर्त्तिसे देवराज मेरा इतना आदर करते हैं। यह सुन विश्वामित्र क्रोधसे झल्ला उठे और बोले,—" देवराजका यह निरा पक्षपात है। हरिश्चन्द्रके समान पापी, अनुदार, स्वार्थी, अधार्मिक, भीरु, मिथ्याभाषी, प्रजाको पीड़ा पहुंचानेवाला और कृपण आज तक मैंने कोई राजा नहीं देखा। वारुणयज्ञमें उसकी परीक्षा हो चुकी है। उसकी बड़ाई मेरे आगे न कीजिये।" दोनोंमें बहुत कहा सुनी हुई। अन्तमें इन्द्रने दोनोंको समझा बुझाकर किसी प्रकार बिदा किया। महर्षि वशिष्ठ तप करने हिमालयपर चले गये और महर्षि विश्वामित्र हरिश्चन्द्रकी सत्वपरीक्षा करनेका अपने मनमें सङ्कल्प कर, उग्रसिद्धियोंकी प्राप्तिके लिये अनुष्ठान करने लगे। विश्वामित्रको सिद्धियाँ प्राप्त हुईं। उन्होंने अपने काममें सबको सबको सहायता देनेकी प्रार्थना की। सब सिद्धियोंने उनकी बात मान ली। तब उन्होंने क्षमा, दया, कामना आदि विद्याओंको हरि-श्चन्द्रके राज्यसे हटानेके लिये तप किया।

विद्याओंने स्त्रियोंका रूप धारण कर आखेटके लिये आये हुए हरिश्चन्द्रके सामने रोकर अपनी व्याकुलता प्रकट की। हरिश्चन्द्रने उन्हें ढाढ़स दिलाया और उनका नाश करनेवाले विश्वामित्रसे उनके आश्रममें जाकर इसका कारण पूछा। विश्वा-मित्रने राजाको कोई उत्तर नहीं दिया, किन्तु उसपर वे मन ही मन

अधिक क्रुद्ध हुए, जिससे उक्त विद्याएँ हरिश्चन्द्रके राज्यसे चल बसीं।

विश्वामित्रने अपना कार्य्य सफल हुआ जान, एक दानवको शूकरका वेष देकर राजाके पास भेजा। जिसका पीछा करते हुए हरिश्चन्द्र वनमें बहुत दूर जाकर मार्ग भूल गये और शूकर भी अदृश्य हो गया। इसी समय ब्राह्मणका वेष धारण कर विश्वामित्र वहाँ आ पहुँचे। राजाने तृषाकुल और पथभ्रष्ट होनेके कारण उनसे जल देने और मार्ग दिखानेकी प्रार्थना की तथा अपना परिचय देकर यह भी कहा कि, इस उपकारके बदले आपकी जो इच्छा होगी, उसे मैं पूर्ण करूँगा। ऋषिने एक स्वच्छ सरोवर और राजधानीका पथ उन्हें दिखा दिया। सरोवरमें स्नान कर विश्वामित्रसे कहा,—"महाराज! इस समय आपको क्या माँगना है; सो माँग लीजिये। मैं यह जल पीकर इतना प्रसन्न हुआ हूँ कि, न देने योग्य वस्तु भी आपको दे डालूँगा। विश्वामित्रकी मायासे राजा मुग्ध हो रहे थे, अपने दातृत्वकी प्रशंसा करते जाते थे और ऋषि मुसकुराते हुए सब सुन रहे थे।

थोड़ी ही देरमें विश्वामित्रने मायापुरी रची और वहाँ राजाको ले जाकर एक वधूवरका जोड़ा दिखा कर कहा,—"यह मेरा पुत्र है, इसके विवाहके लिये मुझे धनकी आवश्यकता है।" राजा बोले,—"आप अयोध्यामें आइये; जितना धन मागेंगे, उतना मैं दे दूँगा।" महर्षिने कहा,—"महाराज! आप सत्यवादी हैं, यह मैं वशिष्ठके मुँहसे सुन चुका हूं। परन्तु अयोध्या पहुंच कर अपना वचन भूलियेगा नहीं।" राजाने गर्वसे कहा,—"आप मांगिये तो सही, फिर मैं कैसा दाता हूं, सो आपको दिखा दूँगा।" राजा राजधानीमें पहुँचे ब्राह्मणने विवाहकी तैयारी कर, राजाको बुलाया और कहा,—"इस वेदीपर आपको जो कुछ चढ़ाना हो, चढ़ा दीजिये।" राजाने

कहा,—"आपने मनमें जो कुछ मांगनेकी इच्छा की है, वह मैंने आपको दे डाला।" वारुणयज्ञके समय जो कृपणता राजाने दिखलाई थी, वे वह भूले नहीं थे। उसका प्रायश्चित्त राजसूय यज्ञमें कर ही डाला था। पर अब वे अपना उत्तर चरित्र अधिक आदर्श-स्वरूप बनाना चाहते थे। इस कारण महर्षिके बार बार इस प्रकार तिखारनेपर कि,—"राजन्! सोच विचारकर वचन दीजियेगा" राजा यही कहते गये कि,—"आप मांगिये, मैंने भली भाँति सोच समझकर ही वचन दिया है।" अन्तमें विश्वामित्रने कहा,—"महाराज! आप अपना सर्वस्व चढ़ा दीजिये।" मायामोहित राजाने तुरन्त कह दिया कि,—"मैंने अपना सर्वस्व इन वधू-वरोंको चढ़ा दिया।" वरने भी 'गृहीतम्' कह दिया। तब मुनि बोले,—"राजन्! अब दानकी साङ्गताके लिये दक्षिणा चाहिये। क्योंकि विना साङ्गताकी दक्षिणा दिये दानयज्ञकी समाप्ति नहीं होती।" राजाके पूछने पर ऋषिने अढ़ाई भार (एक प्रकारकी पुरानी सोने-की तौल) सोना मांगा और राजाने भी देना स्वीकार कर लिया। इतनेमें विश्वामित्रने अपनी माया हटा ली और कपटवेष त्याग कर राजासे कहा,—"राजन्! तुमने असामान्य दान किया है। अब यह राज्य, कोष, धन आदि सब मेरा है। आप अब इस राज्यसे चल दें और शेष दक्षिणा देनेका प्रबन्ध करें। यदि आप मनमें यह समझते हों कि, मैंने अविचारसे दान दिया है, तो स्पष्ट कहिये, मैं आपका दिया हुआ सब लौटा देता हूँ"। राजा, रानी, राजपुत्र, मन्त्री, परिजन आदि सभी हक्कावक्का हो गये। किसीके मुखसे चूँ भी नहीं निकला। राजाने दृढ़तापूर्वक कहा,—"महाराज! मैं अपने वचनमें दृढ़ हूं। अनजाने नहीं, किन्तु जानकर मैंने दान दिया है। मुझसे आजतक स्वार्थवश कितने ही अन्याय अपराध हुए होंगे। उनके परिमार्जनके लिये यह त्यागका सुअवसर मैं

अपने हाथसे जाने न दूँगा। जिसका विशुद्ध यश संसारमें रह जाता है, वास्तवमें वही अमर है। कल प्रातःकालमें मैं स्त्री-पुत्र सहित इस राज्यसे चला जाऊँगा। आप आनन्दपूर्वक इसको सम्हालिये। आज रातभर मैं आपका अतिथि हो कर रहूँगा।" राजवियोग होगा, इस विचारसे प्रजा अत्यन्त दुःखित हुई सही, पर हरिश्चन्द्रके दानकी प्रशंसा भी मुक्तकण्ठसे करने लगी।

प्रभात होते ही हरिश्चन्द्र प्रातःकृत्यसे निवृत्त हो, कुलदेव श्री-सूर्य्यभगवान्, सरयू और अयोध्या नगरीको प्रणाम कर, प्रजाजनसे क्षमा मांग, वन जानेको प्रस्तुत हुए। इतनेमें विश्वामित्र भी आ पहुँचे। राजाने उन्हें विनीतभावसे अभिवादन कर उनके चरणों-पर राजमुकुट और राजमुद्रा रख दी। हरिश्चन्द्रके साथ रानी शैव्या और राजकुमार रोहित भी हो लिये। उनको महलसे जाते देख, विश्वामित्रने रोक कर कहा,—"राजन्! मेरी दक्षिणा देते जाओ। यदि नहीं देना है, तो स्पष्ट कह दो, मैं फिर नहीं मागूँगा। यही नहीं, किन्तु यह तुम्हारा राजपाट भी तुम्हें लौटा दूँगा। मैं यह जानता हूँ कि, तुम दे न सकोगे। कहांसे, कैसे दोगे? अब तुम्हारे पास रह ही क्या गया है? तुम्हारा सर्वस्व तो मेरा हो गया। फिर भी मांगना मेरा काम है, देना या न देना तुम्हारा।" राजाने उत्तर दिया,—"महात्मन्! मुझे अधिक लज्जित न कीजिये। सब भर हमारा राज्य होनेपर भी काशीमें किसीका राज्य नहीं, वहांके राजा देवादिदेव शङ्कर हैं। हमारे पास कुछ नहीं बचा है सही, किन्तु अभी हमारे तीन शरीर अवशिष्ट हैं। काशी जा कर जैसे होगा, इन शरीरोंसे आपकी दक्षिणा चुका दूँगा। कृपया मुझे आप एक मासकी अवधि दें। अवधि बीत जानेपर भी यदि मैं दक्षिणा न दे सका, तो आपकी जो इच्छा हो, कीजियेगा।" विश्वामित्रने अवधि स्वीकार कर ली और हरिश्चन्द्र स्त्रीपुत्र सहित पैदल चल-

कर बड़ी वड़ी कठिनाइयोंसे सामना करते हुए किसी प्रकार काशी पहुँच गये। तीनों परम सुकुमार होनेके कारण कुश-कण्टक कङ्कड़ों-परसे चलनेमें उन्हें कैसे कष्ट हुए होंगे, इसकी कल्पना करनेसे ही हृदय विदीर्ण होने लगता है। रानी शैव्या और राजकुमार रोहितकी दशा तो देखी भी नहीं जाती थी। उनके पैरोंमें छाले पड़कर फूटगये थे और उनसे रक्त वह रहा था। यों तीनों भूखे प्यासे थे, पर रोहित जब कहता,—"मा! भूख लगी है।" तो दोनों अवाक् होकर उसके मुखपर हाथ फेरते हुए आँसू वहाने लगते थे; क्योंकि उसकी क्षुधा-तृप्तिके लिये उनके पास कोई वस्तु नहीं थी।

काशी पहुंचकर सबने पतितपावनी श्रीगंगाजीमें स्नान कर श्रीविश्वनाथ, अन्नपूर्णा, कालभैरव आदि देवताओंके दर्शन किये, जिससे तीनोंके हृदयोंमें शान्ति हुई। कन्दमूल फलोंका आहार कर और भगवद्भजनमें मन लगाकर तीनों दिन काटने लगे। देखते देखते एक मास बीत गया। अन्तिम दिन विश्वामित्र सवेरे ही दक्षिणाके लिये उनके पास आ उपस्थित हुए। उनको देख, तीनोंने प्रणाम किया। राजा पीपलके पत्तेकी तरह काँपते हुए हाथ जोड़ नत-मस्तक हो, उनके सामने निःस्तब्ध हो कर खड़े हो गये। विश्वामित्र उन्हें अनेक कटुवचन सुनाने लगे। राजाने कहा,—"महर्षे! अभी १२ घण्टे दिन डूबनेमें शेष हैं। तबतक मैं अपने स्त्रीपुत्रोंको वेच कर आपकी दक्षिणा दे दूँगा।" बुरी तरहसे धमका कर विश्वामित्र चले गये।

राजाधिराज अपनी प्यारी पत्नी और प्राणसमान पुत्रको बाज़ारमें खड़े हो वेच रहे हैं! कर्मकी गति भी विचित्र होती है! देढ़भार सोनेपर एक ब्राह्मणके हाथ राजाने रानी शैव्या और कुमार रोहितको वेच डाला। जब पीछे राजाकी ओर करुणासे देखते हुए दोनों विलाप कर जाने लगे, तब राजा मूर्छित हो, भूमि-

पर गिर पड़े। रानी और कुमारको वह ब्राह्मण मारता पीटता और घसीटता हुआ अपने घर ले गया और दोनोंसे चाकरी कराने लगा। इधर विश्वामित्रने आ कर राजाको सचेत कर कहा;—“बार बार तगादा करनेमें मुझे लज्जा आती है। दक्षिणा देनी हो, तो दे दो, या नहीं कह दो। तुम्हारे ये ढङ्ग ढकोसले मुझे अच्छे नहीं लगते।” राजाने गिड़गिड़ा कर कहा,—“पिताजी! मैं आपका पुत्र-दास-हूं, मुझपर आप क्रोध न कीजिये। स्त्री-पुत्रको बेचकर यह देढ़भार सोना मैंने पाया है, सो आप लीजिये। शेष एकभार सोना,—अभी दो घड़ी दिन है,—अपने देहको बेचकर दे दूँगा या उतने सोनेके बदले आप ही मुझे मोल ले लीजियेगा।” मुनि अधिक क्रुद्ध हो बोले,—“अरे हरिश्चन्द्र! अबतक तूने मुझे बहुत तङ्ग किया है, इस तरह चकमा देकर फिर भी मुझे ठगना चाहता है? भला मैं तुझे मोल लेकर क्या करूँगा? तपस्वी तो आप ही जगत्के दास होते हैं। अब मैं एक भी नहीं सुनूँगा। या तो अभी एकभार सोना लूंगा या तुझे शाप देकर भस्म कर डालूँगा।” ऋषिकी सिंहगर्जना और लाल लाल आँखें देख राजा बहुत ही भयभीत हुए। इतनेमें वहां एक विकराल वेष धारण किये डोम आया, जो किसी मनुष्यको मोल लेना चाहता था। तुरन्त विश्वामित्रने कहा,—“ले यह एक तेरा ग्राहक है। इसके हाथ तू बिक जा और मेरी दक्षिणा चुका दे।” डोमके हाथ बिकनेमें राजा आनाकानी करने लगे। इसपर ऋषिने पुनः कटूक्तियोंके साथ शापका भय दिखाया। विवश हो राजा उसीके हाथ बिक गये और उन्होंने ऋषिकी दक्षिणा चुकाकर उन्हें भक्तिभावसे प्रणाम किया। विश्वामित्र दक्षिणा लेकर चले गये।

डोमने राजाको श्मशानमें मुर्दोंकी कफन कसौटी लेनेका काम सौंप कर घरका रास्ता लिया। राजा श्मशानवासी हुए। चिन्ता,

दुःख, उद्वेग आदिने उनके हृदयमें डेरा जमाया। परन्तु धीरतासे उस अवस्थामें भी वे अपना कर्तव्य पालन करने लगे। अब हरिश्चन्द्र राजा हरिश्चन्द्र नहीं, किन्तु चाण्डालके क्रीत दास हैं। उनका वह शरीरका तेज नहीं, वह राजविलास नहीं, वह प्रियजन-सहवास नहीं; श्मशानकी राखसे मलिन और दुःख-चिन्ताओंसे सूख कर काँटा हुआ शरीर, हाथमें कपाल-क्रियाका फटा बांस, कन्धेपर जीर्ण कम्बल, मुर्दोंके परिवारकी आर्तवाणीका अहर्निश श्रवण, यही उनका ठाठ रह गया था। स्त्री-पुत्र प्रजा-परिवारका स्मरण कर कभी उनका हृदय व्याकुल हो उठता और सत्यरक्षार्थ सर्वस्व दान कर, स्त्री-पुत्र तथा अपने शरीरको भी वेचकर ऋषिके ऋणसे उऋण होनेका विचार कर कभी वे गद्गद भी हो उठते थे।

इतनी उनकी दुर्दशा करने भी विश्वामित्रको संतोष नहीं हुआ। उन्होंने मायाका साँप बना कर उससे रोहितको कटवा दिया। रोहितका देहावसान हुआ जान शैव्याकी जो दशा हुई, वह वर्णन नहीं की जा सकती। पतिप्राणा सती, पतिके हाथों वेची जाकर दासी हुई। वहाँ एकमात्र जीवनाधार पुत्र साथ था, सो भी भगवान्ने उठा लिया! ऊपर आकाश और नीचे पृथ्वीके अतिरिक्त अब उसका कोई सहारा नहीं रहा। उसकी स्वामिनी बड़ी ही कड़ुवे स्वभावकी थी, जो दिन रात उसे सताया करती थी। किसी प्रकार समझा बुझाकर उससे पुत्रका दाह कर आनेकी आज्ञा लेकर वह श्मशानपर आई और मृतपुत्रको आगे रखकर जी खोल कर विलाप करने लगी। उसके रानीके समान विलापवचन सुन और भिखारी जैसे वेषको देख, लोगोंको सन्देह हुआ कि, यह कोई गुप्तरूपमें बालघातिनी स्त्री है। इसीने किसीका यह बालक मार डाला है और अपना अपराध छिपानेके लिये यह ढङ्ग फैला रही है। धीरे धीरे बहुत लोग एकत्रित हुए। सबने उसे रस्सीसे बाँध

डाला और चाण्डालसे कहा,—"इसे मार डालो, नहीं तो क्या ठिकाना है, यह और कितने बालकोंको मार डालेगी।" चाण्डाल उसे श्मशानपर ले आया और हरिश्चन्द्रके हाथमें तलवार देकर बोला,—"इसे मार डाल।" हरिश्चन्द्रने कहा,—"आप किसी बैरीका नाम बताइये, उसे तुरन्त यमसदनका मार्ग दिखाऊँ, स्त्रीपर मैं शस्त्र नहीं चला सकता।" इसपर चाण्डाल कहने लगा,—"डोमके हाथ बिका और शूरवीरों जैसी बातें करता है? कुछ नहीं, तू मेरा क्रीत दास है, तुझे इसे मारना ही पड़ेगा।" हरिश्चन्द्र विवश हुए। उन्होंने तलवार उठा ली।

शैव्याने राजाको पहिचान लिया था। वह करुणस्वरसे बोली, "नाथ! मैं अपने प्रियपुत्रका दाहसंस्कार कर लेती हूं, फिर मुझे मारना।" लोगोंने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। ज्योंही वह पुत्रको उठा लायी, त्योंही राजाने भी अपने स्त्रीपुत्रको पहिचान लिया। दोनों गलेसेगले लग कर फूट फूट कर रोने लगे। इधर चाण्डाल, राजासे शैव्याको शीघ्र मारनेके लिये त्वरा कर रहा था। राजाने जी कड़ा कर रानीसे कफ़न मांगा। रानीने भी कफ़न फाड़ कर दे दिया। राजाने सोचा, रोहितकी चिता जलते ही उसीमें मैं कूद पड़ूंगा। रानीने सोचा, प्रियपतिके हाथसे मृत्यु होना, इससे बढ़कर सती स्त्रीके लिये सौभाग्यकी बात क्या हो सकती है? यों दोनों सोच-साचकर अपने अपने कामोंमें लग गये। राजाने तलवार तानी और रानीने पुत्रको चितापर रख कर उसे जलानेके लिये अग्नि हाथमें ले लिया। वह भयानक दृश्य, पाषाणको पिघला देने वाला था, फिर सत्यके पक्षपाती देवतागण उसको कब देख सकते थे? ज्योंही रानीने चिता जलाना और राजाने तलवार चलाना चाहा, त्योंही स्वर्गसे पुष्पवृष्टि होने लगी और मङ्गल वाद्योंको बजाते तथा हरिश्चन्द्रका

जयजयकार करते हुए इन्द्रादि देवता विश्वामित्रके साथ वहां उतर आये। इन्द्रने दोनोंके हाथ पकड़ लिये और रोहिताश्वपर अमृतकी वर्षा कर उसे जिला लिया। तीनों परस्पर प्रसन्नतासे मिले और विश्वामित्र एवं सब देवताओंने तीनोंको बहुत बहुत आशीर्वाद दिये।

महाराज हरिश्चन्द्रसे इन्द्रने स्वर्ग चलनेको कहा, पर हरिश्चन्द्र बोले,—"मेरी प्रिय प्रजाको छोड़ मैं स्वर्ग जाना नहीं चाहता।" इन्द्रने कहा,—"सब प्रजा पुण्यवती नहीं है। वह अपने शुभाशुभ कार्यानुसार फल पावेगी।" राजा बोले,—"उसीके धनसे मैंने पुण्य-कर्म किये हैं, अतः सबके साथ यदि एक दिन ही मुझे स्वर्ग मिले तो मैं सन्तुष्ट होऊँगा।" राजाकी उदारताको देख, सब प्रसन्न हुए। तब महर्षि विश्वामित्रने कहा,—"राजन्! तुम सत्त्वपरीक्षामें उत्तीर्ण हुए हो। अतः मैंने साठ सहस्रवर्षोंतक जो घोर तप किया, उसका फल तुम्हें अर्पण करता हूँ। जिसके हाथ तुम बिके, वह चाण्डाल नहीं, किन्तु ये देखो, साक्षात् धर्म हैं। रानीको मोल लेनेवाले वृहस्पति हैं और जिन जिन दुर्जनोंने तुम्हें कष्ट पहुँचाये, वे सब देवता थे। वशिष्ठने तुम्हारे गुण यथार्थ कहे थे। मैंने तुम्हें बहुत सताया, इसका मुझे दुःख है।" राजाने ऋषिके चरण पकड़ कर कहा,—"हे तपोधन! आपकी कृपासे मैं कृतार्थ हुआ। मैंने ब्राह्मणकुमारको मोल ले कर उसका वध करना चाहा था, उसका फल मुझे भोगना पड़ा, इसमें आपका क्या दोष है? आप दुःख न करें। क्योंकि शास्त्रोंमें लिखा है कि, अत्यन्त उत्कट पापपुण्योंका फल इसी जन्ममें भोगना पड़ता है। मेरे चरित्रसे दोनों बातें सिद्ध होती हैं। आपकी करुणाका ही यह फल है कि, आज मैं सब देवताओंके प्रत्यक्ष दर्शन कर रहा हूँ। अब प्रार्थना यही है कि, आपको मुझसे जो कुछ कष्ट हुए हों, उन्हें क्षमा कर इस सेवकको

निरन्तर अपनाते रहिये। विश्वामित्रने हरिश्चन्द्रको गलेसे लगा लिया। फिर सब लोग शैव्या, रोहित और हरिश्चन्द्रको अच्छे अच्छे वस्त्र पहिना कर बड़े ठाठसे अयोध्या ले गये। वहां जा कर सबने रोहितको राज्याभिषेक किया। यथासमय राजा, रानी और जिनकी इच्छा थी, उन प्रजाओंके साथ स्वर्ग सिधारे। रोहित भली भाँति राज्य करने लगे।

मनुष्य अपना चरित्र सुधार कर पुण्य और यशकी कितनी ऊँची सीमातक पहुंच सकता है, इसकी शिक्षा राजा हरिश्चन्द्रके चरित्रसे मिलती है। उनकी सत्य प्रतिज्ञाकी तुलना संसारके इतिहासमें नहीं है। इसीसे किसी कविने कहा है—

चन्द्र टरै सूरज टरै, टरै जगत व्यवहार।
पै दृढ़व्रत हरिचन्द्रको, टरै न सत्य विचार॥



राजा वेण और महात्मा पृथु।



उपजहिं एक सङ्ग जलमाहीं, जलज-जोंक जिमि गुण बिलगाहीं।
सुधा-सुरासम साधु-असाधू, जनक एक जग जलधि अगाधू॥
मिलत एक दारुण दुख देहीं, बिछुरत एक प्राण हरि लेहीं।
भल-अनभल निज निज करतूती, लहत सुयश अपलोक विभूती॥


गोस्वामी तुलसीदासजीकी इन उक्तियोंके अनुसार एक ही पवित्र सूर्यवंशमें राजा वेण और महात्मा पृथुका जन्म

होने पर भी दोनोंके स्वभाव-गुण एक दूसरेसे बिलकुल विरुद्ध थे।

महाराज ध्रुवका चरित्रवर्णन हम कर चुके हैं। ध्रुवके पुत्र श्रिष्ट हुए। उनके पुत्र रिपु, रिपुके पुत्र चाक्षुष, चाक्षुषके पुत्र

चाक्षुषमनु, चाक्षुषमनुके पुत्र ऊरु, ऊरुके पुत्र अङ्ग और अङ्गके पुत्र महा नास्तिक वेण हुए।

वेणका राज्य-प्रबन्ध निन्दनीय नहीं था। जगत्के सब सुधार उनके राज्यमें विद्यमान थे। शासन, सन्धि, मैत्री, दण्ड आदि राजनीतिके सब अङ्गोंका उन्हें अच्छा ज्ञान था। प्रजाकी सुविधाके लिये न्यायालय, रुग्णालय, विद्यालय, शिल्प-विज्ञानालय, पुस्तकालय आदि स्थान स्थानपर उन्होंने खुलवा दिये थे। उनकी सेना, कृषि, व्यापार आदि विभाग उन्नत थे। राजपथ, पोत (जहाजें) विमान, रथ, शास्त्रास्त्र आदि उत्कृष्ट थे और चोर, डाँकू, ठग आदिका उपद्रव उनके राज्यमें नहीं था। यह सब कुछ होनेपर भी वे वर्णाश्रम-धर्मको नहीं मानते थे और न उनकी प्रजाको मनुष्योचित कुछ स्वतन्त्रता ही थी। प्रजाके सब जन्मसिद्ध अधिकार उन्होंने हरण कर लिये थे। उनके शासनके विरुद्ध, सत्य होनेपर भी, न कोई कुछ कह सकता, न लिख ही सकता था। ज्ञानी ब्राह्मणोंका उनके राज्यमें बड़ा ही अनादर था। यही नहीं, किन्तु उन्होंने घोषणा करा दी थी, कि—

न यष्टव्यं न दातव्यं न होतव्यं द्विजैः क्वचित्।
इति न्यवारयद्धर्मं भेरीघोषेण सर्वशः॥

अर्थात् न कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य पूजन करे, न दान करे और न हवन करे। यदि यह सब करना ही हो, तो किसी देवी देवताके लिये नहीं, किन्तु मेरे लिये करे। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य उनकी इस आज्ञाका उल्लङ्घन करता, उसे वे कठोर दण्ड देते थे। राज्यके सब उच्च पदोंपर शूद्र अधिकारी थे, जो द्विजोंसे द्वेष करते और उनपर मनमाने अत्याचार करते थे। इसकी सुनाई राजदरबारमें नहीं होती थी। क्रमशः वेणकी प्रजा बहुत असन्तुष्ट होती गई और राजद्रोही बनकर राजाका नाश करनेपर उद्यत हो गई।

प्रजाने अपने प्रतिनिधियोंको चुनकर एक महासभा की । जिसमें यह प्रस्ताव किया गया कि, कुछ विद्वान् धर्मात्मा इस सभासे चुन कर राजाके पास भेजे जायँ, जो उसे वर्णाश्रमधर्मानुसार राजधर्म समझावें और अत्याचारसे पराङ्मुख करें । यदि वह मान गया, तो ठीक ही है; नहीं माना, तो उसे ब्रह्मतेज (सात्विक शक्तियों) से भस्म कर दिया जाय ।

इस प्रस्तावानुसार प्रतिनिधिमण्डल राजाके पास गया । जिसमें वड़े वड़े तपोधन ऋषि-महर्षि, स्वदेशसेवी राजन्यगण और कृषि-गोरक्षा करनेवाले धक्काड़ व्यापारी भी थे । ऋषियोंने राजासे आदरपूर्वक समझा कर कहा,—"राजन् ! शास्त्रोंमें राजाको पिता और प्रजाको पुत्र कहा है । जो राजा प्रजाके जन्मसिद्ध अधिकारोंको सुरक्षित रखता है, उसके अधिकार भी चिरकाल तक अक्षुण्ण रहते हैं । किसीके धर्ममार्गमें हस्तक्षेप करना राजनीतिके विरुद्ध है । राजाको चाहिये कि, वह अपना राजशासन प्रजाकी सम्मतिसे करे । प्रजापर अत्याचार करना राजाका धर्म नहीं है । प्रजाको जो प्रसन्न रक्खे, वही राजा कहाता है । अविनाशी ईश्वरको न मानकर, आध्यात्मिकतापर विश्वास न रखकर, केवल नाशमान भौतिक वलपर ही भरोसा रखकर जो राजा प्रजाको पीड़ा देता है, उसका राज्य वहुत दिनोंतक नहीं रहता । शास्त्रोंमें लिखा है,—

प्रजापीडनसन्तापात्समुद्भूतो हुताशनः ।
राज्ञः कुलं श्रियं प्राणांश्चादग्ध्वा न निवर्तते ॥

अर्थात् प्रजाको पीड़ा देनेपर उसके क्रोधसे जो अग्नि उत्पन्न होती है, वह राजाके कुल, वैभव (राज्य) और प्राणोंको जलाये विना शान्त नहीं होती । आपको भगवान्‌ने राजाधिराज वनाया है । आपका जन्म सूर्य्यवंशमें हुआ है । आपके पूर्वजोंकी कीर्ति स्वधर्म-पालनके कारण ही तीनों लोकोंमें फैली है । यदि इतना

बड़ा पद पाकर भी आपने धर्मसाधन कर इह-पर-लोक नहीं बनाया, तो इस उच्च पदका क्या फल हुआ? अन्ततः आप प्रजाको स्वतन्त्रतापूर्वक धर्मकार्य करने दें और स्वयं वर्णाश्रमधर्मकी मर्यादाका पालन कर अचल कीर्तिको प्राप्त करें। नर-तन पाकर जिसने धर्म-धन नहीं बटोरा, उसका जीवन ही वृथा है। शरीर नाशमान है, वह कालान्तरमें यहीं पड़ा रहेगा, किन्तु धर्म ही आपके साथ जायगा। अस्थायी राज्यपदके मदमें उन्मत्त न हो कर, चिर-स्थायी स्वाराज्यपदको पानेकी चिन्ता कीजिये, यही हम लोगोंकी आपसे प्रार्थना है।"

ऋषियोंका उपदेश सुन, अभिमानसे हँसते हुए राजा वेण कहने लगे—"ऋषियो! आप लोगोंके अज्ञानको देख मुझे हँसी आती है। बड़े बड़े नीतिशास्त्रोंको आप लोग उलट पलट गये, पर यह नहीं जाना कि,—"सर्वदेवमयो नृपः" अर्थात् सब देवी देवता—सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, वरुण, कुवेर, दुर्गा, ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि—जिनमें शाप और वर देनेकी शक्ति है—राजाके शरीरमें रहते हैं। एक राजभक्ति करनेसे ही सब देवताओंकी भक्तिका फल मिलता है। जो राजभक्त है, वही स्वर्गका अधिकारी है। उसके लिये अन्य किसी आराध्य-देवकी आवश्यकता नहीं है। मुझसे भिन्न किसी अदृश्य भगवान्-की कल्पना कर दान, यज्ञ, तपादि द्वारा उसे प्रसन्न करनेकी चेष्टा करना, अधर्मको धर्म समझ लेना है। मैंने खूब सोच समझ कर जो आज्ञा दी है, उसका पालन करो, इसीमें आप लोगोंका भला है।"

ऋषियोंने कहा,—"राजन्! फिर भी आप सोचें और हमारी प्रार्थनापर ध्यान दें। क्या आप नहीं जानते कि,—

"जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृप अवशि नरक-अधिकारी॥

यह वचन सुनते ही वेण झल्ला उठा और सेवकोंसे बोला,—

"पकड़ो इन मूर्खोंको और छः वर्षोंतक कारावासमें खूब सताकर अन्तमें इन्हें मार डालो। ये ब्राह्मण ही सबको उभाड़ते हैं, इस कारण सबसे पहिले इन्हींको मारना। ऋषियोंसे उसकी यह उद्दण्डता सही नहीं गई। तुरन्त उन्होंने एक अभिमंत्रित कुश उसपर फेका, जिससे वह छटपटाकर मर गया। मतान्तरसे उन ऋषियोंकी क्रोध भरी 'हुंकार' से ही वह भस्म हो गया।

ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणोंके हाथों मारा जानेके कारण वेण ब्रह्मलोकको प्राप्त हुआ। किसी राजाके मर जानेसे प्रजा शोक मनाती है, किन्तु वेणके मरनेपर प्रजाने आनन्दोत्सव मनाया। पुनः प्रतिनिधिसभा सङ्गठित हुई। उसने सोचा, बिना राजाके प्रजा उच्छृङ्खल हो जायगी। अतः वेणके पुत्रोंमेंसे किसीको राजतिलक करना चाहिये। वेणके दो पुत्र थे। एक उसके पापांश और दूसरा पुण्यांशसे उत्पन्न हुआ था। पापांशसे उत्पन्न पुत्रका नाम 'निषाद' था। उसे प्रजाने विन्ध्याचल पर्वतपर चले जानेकी आज्ञा दी। उसीके वंशज निषाद (कोल, भील) कहलाये और पुण्यांशसे उत्पन्न पुत्रका नाम 'पृथु' था, उसीको सर्वसम्मतिसे राजगद्दी प्राप्त हुई। वेण जितने दुष्ट अत्याचारी और नास्तिक थे, पृथु उतने ही प्रतापी, उदार और भगवद्भक्त थे। जगत्में नवविधा भक्तियोंमेंसे श्रवण-भक्तिके आदर्श अकेले पृथु ही हुए।

पृथुका राज्याभिषेक आङ्गिरस आदि देवताओंके साथ ब्रह्मा-जीने स्वयं आकर किया और उपहारमें उन्हें सब देवताओंने अपने अपने आयुध वस्त्र आदि दिये। अग्निदेवने अपना तेज, वरुणने उज्वल छत्र, कुवेरने स्वर्ण-सिंहासन, इन्द्रने किरीट, वायुने चामर, चन्द्रमाने रस, यमने दण्ड, ब्रह्माने कवच, सरस्वतीने हार, समुद्रने सब तीर्थोंका जल, पृथ्वीने बहुमूल्य रत्न, सूर्य्यने ज्ञान और ऋषियोंने वेदमन्त्रोंसे आशीर्वाद देकर उनका सत्कार किया और स्वयं धर्मने

अपने हाथोंसे उन्हें माला पहिनाई। स्वर्गसे उन्हें 'आजगव' नामक धनुष, दिव्य वाण और अच्छेद्य कवच भी मिला। राजा वेणके राजत्वकालमें प्रजा जितनी दुःखित थी, उससे पृथुके समयमें सहस्रगुण अधिक सुखी हुई। राज्यभरमें याग-यज्ञोंकी धूम मच गई। प्रजा स्वतन्त्रतापूर्वक अपने अपने शुभकर्मोंके अनुष्ठान करने लगी, जिससे राज्यश्री अति समृद्ध हुई और पहिली राज्यकी उदासी नष्ट हो कर सर्वत्र हरियाली देख पड़ने लगी। पृथुकी प्रजाहित-तत्परता और हरिभक्तिसे मुग्ध हो, उन्हें देख, समुद्र स्तम्भित होता था, पर्वत उन्हें रास्ता देते थे, उनकी पताका कभी भङ्ग नहीं हुई, पृथ्वीमें विना जोते अन्न होता था, गौवें मनचाहा दूध देती थीं और छत्ते छत्तेमें मधु भरा रहता था।

महाराज पृथुने राज्य पाते ही पैतामह यज्ञ किया। उससे उसी दिन सोमभूमिमें महाबुद्धिमान सूत और मागध उत्पन्न हुए। वे पृथुका यश गाने लगे। उन्होंने कहा,—"हे नरनाथ! आप सत्यवादी, दानी, लज्जावान्, शीलवान्, क्षमावान्, जगन्मित्र, पराक्रमी, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, दयालु, रिपुशासक, मधुरभाषी, ब्राह्मणपूजक, माननीयोंके सम्मानरक्षक, साधुओंके उपदेशोंको माननेवाले, न्यायके समय शत्रु-मित्रको समदृष्टिसे देखनेवाले और भगवद्भक्त हैं। आपका जय जयकार हो।" पृथु बोले,—"महापुरुषो! आपने वर्णन किया, उनमेंसे एक भी गुण मुझमें नहीं है, किन्तु आपके उपदेशोंको हृदयमें रखकर इन गुणोंको सम्पादन करनेका यत्न करूँगा।" राजा उक्त वर्णनके अनुसार अपना बरताव रखने लगे।

उन्हें 'विजिताश्व' नामक पुत्र हुआ। उसे अश्वरक्षक नियुक्त कर उन्होंने ९९ अश्वमेध यज्ञ किये। जिनमें प्रत्यक्ष शिव, विष्णु आदि देवता आकर आहुति ग्रहण करते थे। जब १०० वाँ अश्वमेध उन्होंने आरम्भ किया, तब वारवार साधु, भिखारी आदिका वेष

धर, इन्द्र घोड़ा चुरा ले जाता था। 'विजिताश्व' के सहायक महर्षि अत्रि थे। उनकी कृपासे 'विजिताश्व' को घोड़ा मिल जाता था, पर इस प्रकार घोड़ेके चुराने और छुड़ानेमें यज्ञ पूरा नहीं होने पाता था। इन्द्रकी इस दुष्टतासे क्रुद्ध हो, पृथु 'आजगव' धनु और बाण लेकर इन्द्रको मारनेपर उद्यत हुए, परन्तु ऋत्विजोंके यह कहनेपर कि,—"महाराज! यज्ञमें यज्ञके पशुके अतिरिक्त और किसीका बध करना निषिद्ध है। आप चिन्ता न करें, हम वेद-मन्त्रोंसे इन्द्रको यहीं बुलाकर उसकी अग्निमें आहुति दे देते हैं।" पृथु लौट आये और ब्राह्मणोंने मन्त्र पढ़ना आरम्भ किया। मन्त्र सिद्ध हुआ। ब्राह्मण 'स्वाहा' कहना चाहते ही थे कि, ब्रह्माने आकर उनका स्रुवा थाम लिया और कहा,—"राजन्! परमात्माके प्रधान अङ्ग देवराजका नाश कर स्वर्गकी शोभा नष्ट करना, आपको उचित नहीं है। आप सौ यज्ञ कर शतक्रतु (इन्द्र) तो बनना चाहते ही नहीं, मुक्ति चाहते हैं। मैं आपको वरदान देता हूँ कि, आपको सौ यज्ञोंका फल प्राप्त हो और आपकी कीर्ति अटल रहे।" पृथुने ब्रह्माकी आज्ञा मानकर यज्ञ समाप्त किया, जिससे विष्णु आदि देवता बहुत प्रसन्न हुए। सनत्कुमारोंने आकर यज्ञके अन्तमें उन्हें ब्रह्मज्ञानका उपदेश दिया और पृथु अहर्निश भगवद्गुणानुवादका ही श्रवण करने लगे।

वेणके राज्यमें पृथ्वीने सब औषधि-वनस्पतियोंको पेटमें रख लिया था, इससे प्रजा बहुत कष्ट पाती थी। प्रजाका कष्ट देख, पुनः पृथुने 'आजगव' उठाया। पृथ्वी भयभीत हो ब्रह्माके पास गौका रूप धारण कर जा छिपी। वहाँ भी रक्षा नहीं होती देख, वह बोली,—"महाराज! मुझे न मारिये और भूमिको चौरस कर दीजिये, तो आपकी प्रजाको अन्न मिला करेगा।" पृथुने ऐसा ही किया। पहिले लोग कन्द मूल फल खाकर ही जीते थे। पृथुकी

कृपासे अब लोगोंको सुस्वादु अन्न मिलने लगा। तभीसे भूमिका नाम पृथ्वी पड़ा।

सनत्कुमारादि ऋषि और ब्राह्मणोंसे पृथुने कहा,—"महात्माओं! अन्न-वस्त्रादिका उपभोग केवल ब्राह्मण ही स्वतन्त्रतापूर्वक करते हैं। क्षत्रियादि उनका प्रसाद समझकर सेवन करते हैं। मैं अपना सर्वस्व यज्ञोंमें ब्राह्मणोंको अर्पण कर चुका हूँ और उनका प्रसाद-स्वरूप राज्यसुखका उपभोग करता हूं। अब मेरा मेरे पास कुछ नहीं रह गया है, मैं इस समय आपको क्या दूँ? एक-मात्र हृदय मेरा है, सो आपके चरणोंमें अर्पित है। ब्राह्मणोंकी चरणवन्दना कर, भगवान् विष्णुने अचल लक्ष्मी प्राप्त की है। ब्राह्मणोंकी चरण-रज इस राजमुकुटसे कहीं श्रेष्ठ है। अतः हे ब्रह्मविदो! हे गौओं और हे परमात्मन्! आप सब मुझ क्षुद्र सेवकको अपनाकर, मुझपर प्रसन्न हों। उन निर्धन भक्तोंकी वे झोपड़ियाँ धन्य हैं, जहाँ महात्मा ब्राह्मणोंकी चरणरज गिरती है और जहाँ ब्राह्मणोंका चरणोदक कभी नहीं गिरता, वे राजप्रासाद भी साँपोंकी बाँबियाँ हैं। हे दयामय! आपने स्वयं दर्शन देकर इस देह और मनको पावन किया है, इस ऋणसे मैं कैसे उऋण होऊँ?"

पृथुके भक्तिपूर्ण वचनोंसे सब देव, ऋषि आदि गद्गद हो उठे। सबके साथ जाते समय भगवान् विष्णुने कहा,—"वत्स! कुछ वर मांगो।" पृथु बोले,—"नाथ! मैं आपके दर्शनोंसे निरिच्छ हो गया हूँ। तथापि आप कुछ देना ही चाहते हैं, तो यह दीजिये कि, ब्राह्मण तथा महात्मा लोग जब आपका यश गान करते हों, तब उसके सुननेके लिये मुझे दश सहस्र कानोंकी शक्ति प्राप्त हो और आपके चरणोंमें मेरी अविचल भक्ति बनी रहे।" भगवान् 'तथास्तु' कह कर वैकुण्ठ सिधारे। अन्यान्य सब देवता और ऋषि मुनि भी अपने अपने स्थानको गये। महाराज पृथुने 'विजिताश्व' को

राज्याभिषेक कर हिमालयमें रानी अर्चिके साथ तप करना प्रारम्भ किया। उनका तप इतना जागा कि, जगत् उन्हें भगवन्मय प्रतीत होने लगा और उनके रोम रोमसे भगवन्नामकी ध्वनि उठने लगी। क्रमशः उन्नत होते हुए उनके शरीरके पञ्चतत्व विराट् शरीरके पञ्च-तत्वोंमें मिल गये और वे मुक्त हो गये। रानी अर्चिने उनके शरीरके साथ चितारोहण किया। जब वे पतिकी आत्माके साथ सती-लोकको जाने लगीं, तब स्वर्गकी देवियोंने कहा,—"देखो, यह सती हमारे लोकसे भी ऊँचे लोकको जा रही है।"

राजा वेण और महाराज पृथु, एक ही कुलमें पिता पुत्र रूपमें उत्पन्न होकर कैसे विभिन्न चरित्रोंके थे, यह देख इस कारण आश्चर्य्य नहीं होता कि, संसारमें प्रायः महात्माओंके पुत्र मूर्ख और साधारण मनुष्योंके पुत्र महात्मा होते हैं। परन्तु धार्मिक अधार्मिकोंके दोनों लोक कैसे बनते बिगड़ते हैं, इसकी शिक्षा उक्त दोनोंके चरित्रोंसे भली भाँति मिलती है। ब्रह्मद्वेष और ब्राह्मणभक्तिके फल किस प्रकार मिलते हैं, इसके ये दो नमूने हैं।

महाराज सगर और भगीरथ।

महाराज सगरका जन्म भी सूर्य्यवंशमें ही हुआ था। इनके पिताका नाम बाहुक था, जो शत्रुओंके हाथों, सगर जब गर्भमें थे, मारे गये थे। सगरका जन्म होते ही उनकी माताका भी देहान्त हो गया। यों सगरके मातृपितृहीन होनेके कारण उनका पैतृक राज्य भी छिन गया था। उनका पालन पोषण और्व ऋषिने किया था। सगरके चौल, उपनयन आदि संस्कार कर और्वने उन्हें वेद, धनुर्वेद, राजनीति, कला-कुशलता आदिकी शिक्षा

दी और उनके कुल-गुरु महर्षि वशिष्ठसे काशीमें उनकी भेंट करा दी। वशिष्ठने अपने यजमानका वंश और राज्य पुनः प्रस्थापित करनेके विचारसे सब ऋषि मुनियोंकी सम्मतिसे एक यज्ञ कराया, जिसमें बड़े बड़े महात्माओंने आकर सगरको सूर्य्यवंशकी परम्परा बनाये रखने और राज्य चलानेके योग्य ठहराया। उसी समय परशुराम क्षत्रियोंको मार डालनेमें लगे थे। वे सगरको भी मारने आये। पर सब ऋषियोंके इस प्रकार समझानेपर कि,—"यह राजपुत्र परम ब्राह्मणभक्त है, इसे मारकर सूर्यवंशका उच्छेद न कीजिये," उन्हें परशुरामने छोड़ दिया। यही नहीं, किन्तु यज्ञ समाप्त कर, सगरने सब शत्रुओंको हराकर जब अपना पैतृक राज्य हस्तगत किया, तब राज्याभिषेकोत्सव मनानेके लिये सब ऋषि-महर्षियोंके साथ परशुराम भी आये थे और उन्होंने प्रेमपूर्वक सगरको आशीर्वाद दिया कि, तुम समस्त पृथ्वी जीत कर चक्रवर्ती राजा बनोगे।

सगरने अच्छे मन्त्री, सेना, परिजन आदिका प्रबन्ध कर पृथ्वीके तालजंघ, यवन, शक, हैहय, बर्बर आदि सब देशोंको जीत लिया। अब सगर सार्वभौम माने जाने लगे। उन्होंने जिन जिन देशवासियोंको हराया, उन्हें मारा नहीं; किन्तु कुलगुरु वशिष्ठकी आज्ञासे कुरूप कर छोड़ा। किसीका शिर मुँड़ा दिया और दाढ़ी रहने दी, किसीकी मूछें उड़ा दीं, किसीकी चोटी गुँथवा दी, किसीको नङ्गा कर दिया और किसीको लँगोटी पहिनादी। चीनी, यवन आदि जो जातियाँ आज उक्त रूपोंमें देखी जाती हैं, यह महाराज सगरके विजयका ही परिचायक है।

सगरने कई यज्ञ किये और बहुत दान धर्म किया। चारों ओर सगरकी कीर्तिकौमुदी छागई। उन्हें बहुत दिनों तक कोई पुत्र नहीं हुआ; इस कारण रानीके साथ, महर्षि भृगुके उपदेशानुसार;

उन्होंने एक वर्ष तक तप किया। तप सिद्ध हुआ और उन्हें साठ हजार पुत्र हुए। पुत्र पौत्र, धनधान्यादिसे समृद्ध होकर सगरने अश्वमेध यज्ञ किया। यज्ञके घोड़ेकी सम्हाल सगरके साठ हजार पुत्र करने लगे। सबकी दृष्टि बचाकर एक दिन एकाएक इन्द्रने आकर घोड़ा चुरा लिया और कपिलमुनिके आश्रममें ले जाकर बाँध दिया। सगरके पुत्र घोड़ा खोजते हुए कपिलके आश्रममें पहुँचे और कपिलको ही घोड़ा चुरानेवाला समझकर हल्ला मचाने लगे। कपिल सहस्रों वर्षोंसे तप कर रहे थे। हुल्लड़से चित्त चञ्चल हो, उनकी आँखें खुलीं। उन आँखोंसे तेज निकलने लगा, जिससे झुलस कर सगरके साठ सहस्र पुत्र मर गये। इस युक्तिसे इन्द्रका दुहरा काम बना। महाप्रतापी सगरके पुत्र मरे और मुनिकी भी समाधि भङ्ग हुई। सगरके पुत्र जीते, तो वे बातकी बातमें सौ अश्वमेध कर 'शतक्रतु' बनते और मुनिका तप सिद्ध होता, तो वे भी इन्द्रपद प्राप्त कर लेते। स्वार्थवश मनुष्य क्या, देवता भी अन-करने काम कर बैठते हैं!

सगरकी 'केशिनी' नामकी दूसरी एक रानीका 'असमञ्जस' नामका एक बड़ा दुष्ट पुत्र था। वह गाँवके बालकोंको ले जाकर शरयूमें डुबाकर मार डालता था। इससे असन्तुष्ट होकर सगरने उसे घरसे निकाल दिया था। पीछेसे असमञ्जसको अपने कर्मोंका पश्चात्ताप हुआ और उसने वनमें जाकर घोर तपस्या की। इष्टदेव उसपर सन्तुष्ट हुए। उनके वरदानसे असमञ्जसके डुबाये हुए बालक जी गये, जिससे सगरकी प्रजा बहुत प्रसन्न हुई। असमञ्जसको 'अंशुमान' नामक एक पुत्र था। वही सगरका सब काम काज देखता था। यज्ञ अधूरा रहा देख, सगरकी आज्ञासे वह घोड़ा छुड़ा लानेको कपिल मुनिके आश्रममें पहुंचा। उसने कपिलकी स्तुति की, जिससे प्रसन्न हो उन्होंने उसे घोड़ा दे दिया और परामर्श

दिया कि,—"तुम्हें अपने साठ हजार पितृव्योंका उद्धार करना हो, तो पृथ्वीपर श्रीगंगाजीको लानेका यत्न करो।"

अंशुमानके घोड़ा ले आनेपर सगरने यज्ञ समाप्त किया और राजगद्दीपर अंशुमानको बैठाकर वे रानियों सहित और्व ऋषिके आश्रममें चलेगये। वहीं ऋषियोंसे ज्ञान प्राप्त कर उन्होंने देह त्याग कर परम पद पाया। इधर अंशुमानने श्रीगंगाजीको स्वर्गसे भूलोकमें लानेके आजन्म प्रयत्न किये। जन्म बीत गया, परन्तु यत्न सफल नहीं हुए। उनके देहान्तके पश्चात् उनके पुत्र दिलीपने भी जन्मभर श्रीगंगाजीको लानेके उद्योग किये, पर सब निष्फल हुए। उनका देहावसान होनेपर उनके पुत्र भगीरथने पैतृक पुरुषार्थ प्रारम्भ किया। उनके घोर तपसे तीनों लोक काँप गये और वह तप असह्य जानकर स्वर्गमें हाहाकार हो गया। तब सब देवताओंने श्रीगंगाजीकी प्रार्थना की कि,—"हमारी प्राणरक्षाके लिये आप तपस्वी भगीरथपर प्रसन्न हों।" देवताओंके संकटको निवारण करने, कई पीढ़ियोंसे तप करने वाले भगीरथका तप सफल करने और भूलोकको पावन करनेके लिये श्रीगंगाजी भगीरथके आगे प्रकट हुईं और वर मागनेको कहने लगीं। भगीरथने गद्गद हो, श्रीगंगाजीको प्रणाम कर, उनकी स्तुति की और उनसे अपना प्रयोजन कहा।

श्रीगंगाजी बोलीं,—"मनुष्यलोकमें न आनेके मेरे दो कारण हैं। एक तो यह है कि, पृथ्वी मेरे वेगको सहन न कर सकेगी, भूलोकमें आते ही पृथ्वीको फोड़, मैं रसातलको चली जाऊँगी। दूसरा यह कि, मृत्युलोकके लोग मेरे जलमें अपने पापोंको लाकर धोवेंगे, उन पापोंको मैं कहां धोऊँगी?" भगीरथने कहा,—"देवि! इसकी चिंता आप न करें। मैं आशुतोष शङ्करको प्रसन्न करता हूं। वे आपके वेगको सहन कर सकेंगे। रही बात पापोंके धोनेकी, सो आपके जलमें बड़े बड़े ब्रह्मवेत्ता जीवन्मुक्त स्नान करेंगे। उनके

पुण्यसे वे पाप आप ही नष्ट हो जायँगे।" भगीरथकी बात श्रीगंगाजीके मनमें जँच गयी। वे भूलोकमें आनेका अभिवचन देकर लौट गईं।

भगीरथने पुनः उग्र तप किया, जिससे देवादिदेव महादेव प्रसन्न हुए। उनसे भगीरथने प्रार्थना की कि,—"नाथ! मैं अपने पूर्वजोंका उद्धार करनेके लिये श्रीगंगाजीको भूलोकमें लाना चाहता हूं। परन्तु उनके प्रबल वेगको सहन करनेकी शक्ति पृथ्वीमें नहीं है। यदि प्रभु उस वेगको धारण करें, तो मेरा मनोरथ सफल हो सकता है। प्रभुके विना त्रिलोकमें कोई उनके वेगको सहन नहीं कर सकता, इस कारण प्रभुकी शरण ली है। प्रभु दीनदयालु हैं, इस समय दासको अपनाइये और भूलोकके पापी जीवोंपर दया कीजिये।" भक्तवत्सल भगवान् भूतनाथने प्रार्थना स्वीकार कर ली। फिर भगीरथने श्रीगंगाजीकी स्तुति की। जगज्जननी पतितपावनी श्रीगंगाजी तुरन्त हरहराती हुई बड़े वेगसे उतरीं। उनके तेजसे त्रैलोक्य जगमगा उठा। उनका दर्शन पाते ही सिद्ध, ऋषि, मुनि,गन्धर्व आ स्तुति करने लगे। ज्यों ही उतरकर वे पृथ्वीको फोड़कर रसातलको जाने लगीं, त्यों ही शिवजीने उन्हें अपनी जटाओंमें भर लिया, जिससे चिंतित सज्जनोंकी चिंता दूर हुई और सब ओर आनन्द छा गया। हालाहल विष पान करनेसे महादेवको जो दाह हुई थी, श्रीगङ्गाजीको जटामें भर लेनेसे वह कुछ शान्त हुई जानकर महादेवजी भी प्रसन्न हुए। उन्हें प्रसन्न देख, भगीरथने उनसे पुनः प्रार्थना की कि—"हे नीलकण्ठ! श्रीगङ्गाजी आपकी जटामें ही समाई रहेंगी, तो मेरे पूर्वजोंका कैसे उद्धार होगा? अतः ऐसी कृपा कीजिये, जिसेसे भूलोकवासियोंको पतितपावनीका लाभ हो, मेरा तप सफल हो और मेरे पूर्वज भी तर जायँ।" तब श्रीकैलाशनाथने अपनी जटा-

ओंको थोड़ा सा निचोड़ दिया। जिससे श्रीगङ्गाजीकी एक धारा भूलोकमें बह निकली और भगीरथके रथके पीछे पीछे जाने लगी। भगीरथ हरद्वार, प्रयाग, काशी आदि तीर्थोंसे होते हुए पूर्व दिशामें कपिलमुनिके आश्रममें पहुँचे। वहीं उनके पूर्वजोंके शरीरोंका भस्मावशेष पड़ा था। उस परसे जब श्रीगङ्गाजीका प्रवाह बहा तब सगरके साठ सहस्र पुत्र तुरन्त जी गये और श्रीगङ्गाजीकी स्तुति करने लगे। यह देख, भगीरथके आनन्दकी सीमा न रही। उनका तप सफल हुआ। देवताओंने उनपर पुष्पवृष्टि की। सगर-पुत्रोंने उन्हें आशीर्वाद दिया और वे सब सदेह स्वर्गमें चले गये। श्रीगङ्गाजी भी अनेक तीर्थस्थानोंको पावन करती हुई महासागरमें जाकर मिलीं और भगीरथ अपनी राजधानीमें जाकर राज्यकार्य करते हुए भगवद्भक्तिमें लवलीन हो गये।

जबसे श्रीगंगाजी भूलोकमें आईं, तबसे आजतक अनन्त जीवोंका उद्धार कर रही हैं। उनकी दयालुतापर मुग्ध हो सहस्रों तपस्वियों और कवियोंने उनका रसमयी वाणीमें गुणवर्णन किया है और भविष्यत्में करते रहेंगे। श्रीगंगाजीका, सहस्रों कोस दूर रहकर जो केवल नाम स्मरण करता है, वह भी तर जाता है और कैलाशमें पहुँचता है।

गंगा गंगेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो शिवलोकं स गच्छति॥

यह दीर्घ उद्योगका ही फल है कि, स्वर्गनिवासिनी श्रीगंगा भी भूलोकमें आगईं। उद्योगी पुरुषोंके लिये असम्भव कुछ नहीं है, यह महात्मा भगीरथके चरित्रसे शिक्षा मिलती है। उन्हींकी कृपासे आज हमें श्रीगंगाजी सुलभ हुई हैं। अतः उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट कर हम भी श्रीगङ्गाजीसे प्रार्थना करें, कि वे अन्त समयमें हमें

भी अपनाकर हमारा जीवन सार्थक करें। हम भक्तिभावसे महर्षियोंकी इस उक्तिसे उन्हें प्रणाम करें,—

नमामि गङ्गे ! तव पादपङ्कजं
सुरासुरैर्वन्दितदिव्यरूपम् ।
भुक्तिं च मुक्तिं च ददासि नित्यं
भावानुसारेण सदा नराणाम् ॥

अर्थात् हे गंगे ! मनुष्योंके भावोंके अनुसार तुम उन्हें समस्त ऐश्वर्य्य और मोक्षको निरन्तर देती रहती हो । देव-दानवोंने समान-रूपसे तुम्हारे स्वर्गीय स्वरूपकी वन्दना की है । अतः तुम्हारे चरण-कमलोंको हम भी प्रणाम करते हैं ।

राजा कार्तवीर्य और परशुराम ।



संसारका कार्य दो शक्तियोंसे चलता है। एक शास्त्रशक्ति और दूसरी शस्त्रशक्ति। अथवा यों कहिये कि, एक ब्रह्मशक्ति या ज्ञानशक्ति और दूसरी क्षात्रशक्ति या शौर्यशक्ति । दोनों-की जब तक समानता रहती है, तब तक जीव सुखी रहते हैं और जब वे विषम हो जाती हैं, तब दुःखोंका सागर उमड़ आता है। इन दोनों शक्तियोंकी विषमता होनेपर उन्हें समभावमें लानेके लिये श्रीभगवान्‌को स्वयं अवतार धारण करना पड़ता है। ब्रह्मशक्तिका अतिरेक होनेपर जैसे श्रीरामचन्द्रके रूपमें भगवान् अवतीर्ण हुए थे, वैसे ही क्षात्रशक्तिका अतिरेक मिटानेके लिये उन्हें परशुरामके रूपमें अवतीर्ण होना पड़ा था। इस विचारसे राजा कार्तवीर्य और परशुरामके जीवनों पर दृष्टि डालना आवश्यक है।

चन्द्रवंशमें हैहय नामक एक बड़ा प्रतापी राजा हुआ। उसने मध्यप्रान्तमें नर्मदाके तटपर अपना राज्य बसाया था। बहुत वर्षोंके पश्चात् उसके वंशजोंको लोग 'हैहय' कहने लगे। परन्तु वास्तवमें वे यदुवंशी अर्थात् चन्द्रवंशी ही थे। हैहयके कुलमें कृतिवीर्य नामक राजा हुआ। उसके पुत्रका नाम अर्जुन रक्खा गया। परन्तु भारतप्रसिद्ध कुन्तीपुत्र अर्जुन प्रख्यात होनेके कारण उसका इतिहासकारोंने 'कार्तवीर्यार्जुन' या 'कार्तवीर्य' नामसे उल्लेख किया है। कृतिवीर्यकी राजधानी 'माहिष्मती' नामकी नगरी थी, जिसे अब महेश्वर कहते हैं। कृतिवीर्यके देहान्तके पश्चात् प्रजाने कार्तवीर्यको राज्याभिषेक करना चाहा, परन्तु उन्होंने यह कहकर अस्वीकार किया कि,—"जब तक मैं कोई ऐसी अद्भुत दैवीशक्ति प्राप्त न कर लूँ, जिससे मेरा नाम अटल रहे, तब तक मैं राजसिंहासनपर नहीं बैठूंगा। मैं नहीं चाहता कि, सामान्य राजाओंकी तरह व्यर्थ जिऊँ और मर जाऊँ। बिना दैवीशक्तिके सम्पादन किये जो राजा प्रजापर अधिकार जमाते और प्रजासे कर लेकर उसके पापोंके भागी बनते हैं, वे उसी तरह नरकमें जाते हैं, जिस तरह बिना तप किये दान लेनेवाले ब्राह्मण। अतः कुछ कालतक क्षमा करें और मुझे तप करने दें।" राजाके सुविचारोंको सुन, सब प्रजाको बहुत प्रसन्नता हुई। प्रजाने राजाकी बात मान ली और मन्त्रिमण्डलने राज्यका भार अपने ऊपर लेकर राजाको तप करनेकी अनुमति दे दी।

अपने अर्थात् चन्द्रवंशके कुलगुरु महर्षि गर्गके पास जाकर कार्तवीर्यने तपकी विधि पूछी। गर्गने दत्तात्रेयका मन्त्र देकर उन्हींकी उपासना करनेकी विधि राजाको बताई। राजाके घोर तपसे दत्तात्रेय * प्रसन्न हुए। उनसे कार्तवीर्यने यह वर माँग

* दत्तात्रेय भगवान्का जन्म महर्षि अत्रिकी आदर्श सती स्त्री

लिया कि,—"मुझसे प्रजा सदा प्रसन्न रहे, मुझे कोई पाप न लगे, जन्मान्तरकी बातोंका मुझे स्मरण रहे, शत्रु मेरा सामना न कर सकें, मेरे सहस्र बाहु हों, पर उनका भार मुझे न जान पड़े, मैं सब जगह जा सकूँ और जो मार्ग भूले हों, उन्हें मार्ग बतला सकूँ, मैं अतिथियोंका सत्कार करूँ और लोग मेरी बड़ाई करें, मेरे राज्यमें एक भी दरिद्री न हो और मेरा नाम लेते ही लोग सुखी हो जावें, मैं किसी महात्माके हाथों मरूँ और इस जन्म तथा जन्मान्तरमें आपके चरणोंमें मेरी दृढ़ भक्ति बनी रहे ।"

'तथास्तु' कहकर दत्तात्रेय अन्तर्धान हो गये । कार्तवीर्यकी सहस्र भुजाएँ हुई और जो वर उन्होंने मांगे थे, वे सब उनको प्राप्त हुए । राज्यासनपर प्रतिष्ठित होनेपर 'कार्तवीर्य' और 'अर्जुन' इन दो नामोंके अतिरिक्त उन्हें 'सहस्रबाहु' के नामसे भी लोग जानने लगे । इन्होंने बड़ा अच्छा राज्य किया । इनके राज्यमें चोर नहीं रहने पाते थे । अब भी भूले भटके लोग इनके स्मरणसे मार्ग पा जाते हैं और खोई हुई वस्तु मिल जाती है । इन्होंने दत्तात्रेयकी महिमा जगत्में प्रकाशित की, गौ ब्राह्मणोंकी रक्षा की, अनेक यज्ञ किये और राज्य विस्तार कर अच्छा नाम कमाया ।

इनके अन्तिम जीवनके साथ परशुरामका विशेष सम्बन्ध होनेके कारण उनके चरित्रको भी जान लेना उचित है । पूर्वकालमें इस देशमें अनुलोम विवाह होते थे । अर्थात् क्षत्रियकी कन्यासे ब्राह्मण कुमार विवाह कर लेते थे । च्यवन ऋषिने 'सुकन्या' नामकी क्षत्रिय कन्यासे जिस प्रकार विवाह किया, उसी प्रकार जमदग्नि ऋषिने प्रसेनजित नामक राजाकी 'रेणुका' नामकी कन्यासे विवाह किया था । उसीसे परशुरामकी उत्पत्ति हुई । इनका नाम 'राम'

अनुसूयाके घर हुआ था, जिसकी कथा 'भारतकी सती स्त्रियाँ' नामक पुस्तकमें लिखी गई है ।

ही रक्खा गया था, पर ये परशु (फरसा) अपने पास रखते थे और आगे चलकर दशरथकुमार रामचन्द्र बहुत प्रसिद्ध हुए, इस कारण इन्हें लोग 'परशुराम' कहने लगे। ये बड़े ही मातृ-पितृ-भक्त, बालब्रह्मचारी, वेदशास्त्र–पारंगत, शस्त्रकुशल और तपस्वी होनेके कारण इनमें ईश्वरांश आ गया था, जिससे दशावतारोंमें इनकी गणना हुई। तपस्या द्वारा साक्षात् शिवजीको प्रसन्न कर उनसे इन्होंने अनेक दिव्य शस्त्र अस्त्र पाये थे। परशुराम पाँच भाई थे।

एक दिन जमदग्नि हवन कर रहे थे। उन्हें तटके जलकी आवश्यकता हुई। रेणुका तुरन्त नदीसे जल लाने चली गई। उसे आनेमें कुछ विलम्ब हुआ, इससे जमदग्नि बहुत क्रुद्ध हुए और उन्होंने अपने पुत्रोंसे कहा,—"इसका सिर काट दो।" मातृवध करनेको कोई पुत्र उद्यत नहीं हुआ, परन्तु परशुरामने पिताकी आज्ञा सिर चढ़ा कर झटसे मातापर फरसा चला दिया और माताके साथ ही पिताकी आज्ञा न माननेवाले अपने चारों भाइयोंको भी मार डाला। उनकी पितृ-भक्ति देख जमदग्नि बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने परशुरामसे वर मांगनेको कहा। परशुरामने पितासे हाथ जोड़कर कहा,—"पूज्य पिताजी! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं, तो यह वर दीजिये कि, मेरी माता और चारों भाई पुनः जी जायँ और मैंने उन्हें मारा है, इसका उनको स्मरण न रहे।" जमदग्निके वरदानसे ऐसा ही हुआ।

जब किसीके बुरे दिन आते हैं, तब उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और वह अत्याचार करनेपर उतारू हो जाता है। कार्तवीर्यकी भी, तपक्षीण होने और देहावसानका समय निकट आ जानेके कारण, बुद्धि फिर गई और वे ब्राह्मणोंसे डाह करने लगे। एक दिन वे जमदग्निके आश्रममें पहुँचे। ऋषिने उनका स्वागत किया और अपनी गायका उन्हें दूध पिलाया। वह दूध उन्हें इतना मधुर

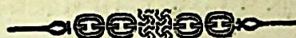
लगा और उससे उनकी इतनी अधिक तृप्ति हुई कि, उस गायको उन्होंने ले जाना चाहा। जमदग्निने बहुत समझाया, परन्तु उन्होंने एक नहीं माना और वे गाय ले ही गये। जब परशुराम घर आये, तो उन्हें पता लगा कि, कार्तवीर्य बलपूर्वक धेनु हरण कर ले गये हैं। तुरन्त परशुराम राजाके पास गये और अपनी गाय मांगने लगे। परन्तु कार्तवीर्यने उन्हें कुछ उत्तर नहीं दिया और वे उद्दण्डताके साथ सेना समेत परशुरामसे लड़नेको उद्यत हो गये। परशुरामके साथ उनका घोर युद्ध हुआ। ब्रह्मशक्तिके सम्मुख क्षात्रशक्ति कहाँ तक ठहर सकती है? कार्तवीर्य्यके सब हाथ, परशुरामके कठोर कुठारसे कट गये और गतप्राण होकर वे परशुरामके चरणोंपर गिर पड़े। गायको छुड़ाकर परशुराम आश्रममें ले आये। जब जमदग्निने यह वृत्तान्त सुना, तब उन्होंने राजवधके प्राय-श्चित्तार्थ परशुरामको तप करने कहा। परशुराम तप करने चले गये।

इधर कार्तवीर्य्यके पुत्रोंने अकस्मात् एक दिन जमदग्निके आश्रममें आकर उनका सिर काट डाला। पतिवधसें शोकाकुल हो, रेणुकाने 'हा राम! हा राम!' कहकर २१ वार छाती पीटी। उसका शब्द परशुरामके कानोंमें पड़ा। तप समाप्त कर उन्होंने प्रतिज्ञा की कि,—"यदि मुझमें ब्रह्मचर्य्यका बल है, तो मैं २१ वार निःक्षत्रिय पृथ्वी कर डालूँगा।" इस प्रतिज्ञाके अनुसार परशुरामने २१ वार निःक्षत्रिय पृथिवी कर, ब्राह्मणोंको दान कर दी; जिससे जगत्में हाहाकार हो गया। समन्तकपञ्चक देशमें क्षत्रियोंके रक्तसे नौ कुण्ड भरे गये और वहीं पिताका सिर धड़पर रखकर परशु-रामने यज्ञ किया। यज्ञनारायण सन्तुष्ट हुए और उन्होंने जम-दग्निको जिला दिया। परशुरामके डरसे त्रिभुवन काँपने लगा। स्त्री-वेश धरकर या और किसी कौशलसे जो क्षत्रिय दबे छिपे रहे,

उन्हींका आगे वंश चला। शेष क्षत्रिय निर्मूल हो गये। अग्निनारायण द्वारा प्राण प्राप्त होनेके कारण जमदग्निने ऋषियोंके मण्डलमें स्थान पाया और वे सातवें ऋषि कहलाये। क्षत्रिय दर्प दमन कर परशुरामने जगत्‌में ब्रह्मशक्ति और क्षात्रशक्तिका सामञ्जस्य किया और रामावतार होनेपर अपना तेज रामको देकर वे पुनः महेन्द्र पर्वत-पर तप करने चले गये। परशुराम अमर हैं। मातृ-पितृ-भक्तिके वे आदर्श हैं और ब्रह्मचर्य्य तथा तपका महत्व जगत्‌में स्थापन करने-वाले हैं।

—:०:—

महाराज तथा महात्मा भरत।



जिससे इहलोकमें अभ्युदय होकर परलोकमें मुक्ति प्राप्त हो, उसको धर्म कहते हैं। धर्मका विकाश जगत्‌की और किसी भूमिमें नहीं, किन्तु अपने इसी देशमें हुआ था। इस देशको पहिले 'अजनाभ' कहते थे, परन्तु प्रतापी महाराज भरतके समयसे इसे 'भारतवर्ष' कहने लगे। भरतके एक जन्ममें उनका ऐहलौकिक पूर्ण अभ्युदय होकर दूसरे जन्ममें उन्हें मुक्ति मिली थी। धर्मके दोनों लक्षण उनमें घटते थे, इस कारण उनका चरित्र जानने योग्य है।

ध्रुव चरित्रमें सूर्य्यवंशी स्वायम्भुवके पुत्र उत्तानपादके साथ उनके भाई प्रियव्रतके नामका हम उल्लेख कर चुके हैं। जमदग्निने जिस प्रकार क्षत्रिय-कन्यासे अनुलोम विवाह किया था, उसी प्रकार महाराज प्रियव्रतने कर्दम मुनि (ब्राह्मण) की कन्यासे विलोम विवाह किया था। उससे उन्हें दस पुत्र हुए। जिनमेंसे

बड़ेका नाम अग्नीध्र था। अग्नीध्रके ज्येष्ठ पुत्रका नाम नाभि, नाभिके जेठे पुत्रका नाम ऋषभदेव और ऋषभदेवके प्रथम पुत्रका नाम 'भरत था। जब पृथ्वीके सातों द्वीपोंके खण्ड किये जाकर वे सूर्यवंशके राजकुमारोंको शासनके लिये बाँट दिये गये, तब भरतके हिस्सेमें जम्बूद्वीप (आशिया) का दक्षिण भाग आया। इसीको 'भरतखण्ड' भी कहते हैं।

आध्यात्मिक लक्ष्यका होना ही भारतवासियोंका प्रधान लक्षण है। यद्यपि भरतने अपने राजत्व-कालमें आधिभौतिक उन्नति चरम सीमा तक पहुंचा दी थी; तथापि उनका आध्यात्मिक लक्ष्य बना रहा। अनेक यज्ञ, दान, तप आदि द्वारा उन्होंने बड़े ठाठसे राज्य किया। जब उनके पुत्र राज्यकार्य सम्हालनेके योग्य हुए, तब राजपाट उनको सौंपकर वे हरिहरक्षेत्रमें गण्डकीके तटपर भगवदाराधना करनेको चले गये।

एक दिन वे नदी तटपर सन्ध्यावन्दन कर रहे थे। वहीं एक गर्भवती हरनी भी पानी पी रही थी। इतनेमें उसने सिंहका दहाड़ना सुना, जिससे भयभीत होकर वह उछली और नदी डाँकने लगी। उसने जो चौकड़ी भरी, वह गर्भके भारसे खाली गई। उसका गर्भ जलमें गिर गया और वह पत्थरपर गिरकर मर गयी। भरतको जलमें बहते हुए गर्भके हरिणशावककी दया आई। उसे जलसे निकाल कर वे अपने आश्रममें ले आये और वहीं उसको पालपोस कर उन्होंने जिला लिया।

शास्त्रोंका सिद्धान्त है कि, अन्त समयमें मनुष्यकी जैसी मति होती है, जन्मान्तरमें उसको वैसी ही गति प्राप्त होती है। चौरासी लाख योनियोंसे होता हुआ जीव जब मनुष्य-योनिमें आता है, तब प्रथम शूद्र, फिर वैश्य, फिर क्षत्रिय और अन्तमें ब्राह्मण-योनिमें जन्म लेकर, अनेक जन्मोंमें ज्ञान प्राप्त कर, मुक्त होता है। यदि

मनुष्यके शुभ कर्म न हुए, तो उसे बीच बीचमें पशु पक्षियोंकी योनियोंमें जन्म लेना पड़ता है। पर कर्मभोग शेष होते ही पुनः मनुष्य बनता है; फिर उसे चौरासी लाख योनियोंमें भटकना नहीं पड़ता। यद्यपि भरत बड़े तपस्वी और पुण्यात्मा थे, उन्हें क्रमोन्नत होते हुए अब ब्राह्मण-योनिमें ही जन्म पाना रह गया था, परन्तु देहत्यागके समय अति मोहके कारण उनका चित्त उस पाले हुए हरिणके बच्चेमें रह गया, जिससे दूसरे जन्ममें उन्हें हरिण बनना पड़ा। जब हरिणकी योनिसे वे छूटे, तो एक पवित्र ब्राह्मणकुलमें जन्मे। उनके पूर्वजन्मोंके कर्म बहुत ही उन्नत होनेके कारण पिछले जन्मोंका उन्हें स्मरण था और वे निरन्तर अध्यात्म विचारोंमें ही लगे रहते थे। उन्हें देहकी ममता नहीं थी। व्यवहारमें भी वे ध्यान नहीं देते थे।

भरतके पिताने उनके उपनयन आदि संस्कार कर दिये थे, परन्तु वे बड़े ही मैले कुचैले रहते थे। उनके भाइयोंने उन्हें महा मूर्ख समझकर खेत रखानेका काम दिया था, किन्तु वे पशु पक्षियोंको भी नहीं हाँकते और सृष्टिके चमत्कार देखा करते थे। खानेको कोई कुछ दे देता, तो खा लेते, पर किसीसे माँगते नहीं थे। निश्चिन्त होनेके कारण अच्छे मोटे भी थे। उनको जड़की तरह देख, लोग उन्हें 'जड़ भरत' कहा करते थे। एक दिन तो उनकी मोटाई और जड़ता उनके प्राणोंपर आ बीती। चोर लुटेरोंका 'सामन्त' नामक राजा, भद्रकालीको नरबलि चढ़ाना चाहता था; पर उनका पकड़ा हुआ मनुष्य ठीक समयपर कहीं भाग गया। तब राजाके सेवक भरतको बाँध नहला धुला कर बलि देनेके लिये ले आये। उनपर राजाने ज्यों ही खड्ग उठाया, त्यों ही मूर्ति फटकर उसमेंसे साक्षात् कालीमाता प्रकट हुईं। उन्होंने राजा समेत सब चोर डाकुओंको खा लिया और भरतको बन्धनसे मुक्त कर दिव्य ज्ञान दिया। भरत

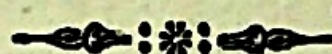
जैसे पहिले थे, वैसे अब भी बने रहे। उन्हें न जीनेका हर्ष और न मरनेका शोक था।

इसी तरह एक दिन सिन्धुसौवीर देशके राजा रहूगणके सेवकोंने इन्हें विगारमें पकड लिया। राजा प्रतिदिन पालकीमें चढ़कर कपिलमुनिके पास आत्मज्ञान सीखनेको जाया करते थे। उस दिन भरतको ही उनकी पालकीमें जोत दिया गया। भरत कभी जीव हिंसा नहीं करते थे। पालकी तो उन्होंने उठा ली, पर एक एक पैर फूँक फूँक कर रखते थे। कोई चिऊँटी या कीड़ो मकोड़ा उन्हें देख पड़ता, तो कूद कर वे हट जाते और उसपर पैर नहीं धरते थे; जिससे पालकी बहुत हिलती और राजा कष्ट पाते थे। राजाने वाहकोंको बहुत धमकाया। वाहकोंने कह दिया,—"महाराज! यह नया मनुष्य उछल कूद मचा रहा है।" राजाने भरतको बहुत डाँट डपट कर कहा,—"तू इतना हृष्ट पुष्ट होकर इतनेसे पालकीके बोझको नहीं उठा सकता और थोड़ा चलकर थक गया! मुझ जीते हुएको मृतकके समान जान बूझ कर क्यों टेढ़ा सीधा करते हुए ले जा रहा है? अब यदि तू ठीक तरहसे नहीं चला, तो मैं तुझे ठीक ही कर दूँगा।" इस पर भरत बोले,—"राजन्! क्रोध न करें, क्योंकि क्रोध ही अज्ञानका प्रधान कारण है। मैं यह देखता चलता हूँ कि, मेरे पैरों तले दबकर किसी जीवकी हिंसा न हो। यदि मेरे शरीरसे किसी जीवकी हिंसा हुई, तो परम्परासे वह आपकी आत्माके बन्धनमें कारण होगी। आप जो यह कहते हैं कि,—'मैं पुष्ट हूं, पालकी उठा ले जा रहा हूं, थक गया हूँ, जीतेको मरा हुआ समझ रहा हूँ;' नितान्त मिथ्या है। मैं पुष्ट नहीं, कृश नहीं, मेरी देह पुष्ट या कृश हो सकती है। मैंने पालकी नहीं उठाई, देहने उठाई है, मैं थकता नहीं और हृष्ट भी नहीं, जीता मरता कौन है? देह, न कि आत्मा। मैं एकसा रहता हूं। फिर भी आप कहते हैं,—'मैं जान

बूझ कर कर रहा हूँ ?' नृपवर ! प्रथम यह तो बतलाइये कि, आपने क्या जाना बूझा है ? 'मैं' 'तू' 'वह' तो एक ही वस्तु है, फिर क्यों पञ्चतत्वोंको 'मैं' कह कर अहङ्कारके अन्धकारमें डूबे जा रहे हैं ?'' भरतकी ज्ञानकी बातें सुनकर विवेकी राजा पालकीसे उतरा और भरतके स्वरूपको पहिचानकर उनके चरणोंपर गिर पड़ा। उसके बहुत प्रार्थना करनेपर भरतने उसे ज्ञानका उपदेश किया, जिससे वह कृतार्थ हो गया।

बहुत दिनों तक राजाके पास अवधूत वृत्तिसे भरत रहे और अन्तमें वासनाशून्य होकर परमज्योतिमें विलीन हो गये। अति मोह और वासनाओंके शेष रह जानेसे जीवको कैसे कैसे जन्मान्तरके भोग भोगने पड़ते हैं और प्रबल ज्ञानपिपासा होनेपर अनायास कैसे सद्गुरुके दर्शन हो जाते हैं, इसकी शिक्षा भरत और रहूगणके चरित्रसे मिलती है। भरतके धार्मिक जीवनसे भारत धन्य हुआ है।

राजा परीक्षित।





पौराणिक समयके अति प्रसिद्ध अन्तिम राजा परीक्षित और उनके पुत्र जन्मेजय हुए। परीक्षित कुन्तीसुत अर्जुनके पौत्र और अभिमन्युके पुत्र थे। परीक्षित गर्भमें थे, तभी अभिमन्यु कौरवोंके दलसे अधर्मयुद्धमें मार डाले गये थे। भगवान् श्रीकृष्ण वैकुण्ठ सिधारे और पाण्डव महाप्रस्थान कर गये, तब परीक्षित ही पाण्डवोंकी राजगद्दीपर बैठे। इन्होंने भी पूर्वजोंकी भांति बहुत अच्छा राज्य किया। इनकी योग्यताकी वशिष्ठ, विश्वा-

मित्र, भरद्वाज, कात्यायन, पराशर, वामदेव, नारद आदि ऋषि मुनि भी बड़ी प्रशंसा करते थे ।

एक दिन आखेट खेलते हुए परीक्षित शमीक ऋषिके आश्रममें पहुँचे। उस समय दुपहर हो गई थी और कड़ी धूपसे राजा तृषातुर हो रहे थे। आश्रममें ऋषिवर ध्यानावस्थामें बैठे थे। राजाने उनसे जल मांगा, पर ऋषि समाधिमें रहनेके कारण राजाको जल न दे सके। राजाने यह ऋषिका ढोंग समझा और मनमें निश्चय कर लिया कि, ऋषिने जान बूझकर मेरा अनादर किया है। पासमें पड़े हुए मरे साँपको धनुष्यकी नोकसे उठाकर राजाने ऋषिके गलेमें पहिना दिया और वहाँसे चल दिया। यह कौतुक वहां खेलते हुए कुछ मुनिबालक देख रहे थे; उन्होंने सब समाचार शमीकके पुत्र शृङ्गी ऋषिको कह सुनाया। शृङ्गीने चिढ़कर तुरन्त शाप दिया कि, जिसने मेरे पिताका ऐसा अनादर किया है, उसे आजके सातवें दिन सर्पदंश होगा।

इधर राजा अपने किये पर पछताते और सोच रहे थे कि, कोई कुछ प्रायश्चित्त कहे तो कर डालूँ; उसी समय मुनिबालकोंने राजाके पास आकर शृङ्गी ऋषिके शापकी वार्ता कह दी। राजा अत्यन्त उद्विग्न हुए और ऋषिका शाप व्यर्थ नहीं होगा, यह जानकर अनेक सिद्ध महर्षियोंको बुलाकर परामर्श करने लगे कि, अब सात ही दिनोंमें मैं किसप्रकार आत्मोद्धार कर सकूँगा। परामर्श चल रहा था कि, अकस्मात् व्यासपुत्र शुकदेवजी वहाँ आकर उपस्थित हुए। उन्हें आते देख, सब ऋषि महर्षि उठ खड़े हुए। राजाने उनका सत्कार किया और सब ऋषियोंसे पूछा—"महर्षियो ! व्यास, पराशर जैसे शुकदेवजीके पिता-पितामह भी आप लोगोंके साथ उनका इतना आदर करते हैं, इसका कारण क्या है ?" महर्षियोंने कहा,—"राजन् ! आपका बड़ा

भाग्य है, जो इस समय शुकदेवजी यहाँ आ गये। यद्यपि हम उनसे वयोवृद्ध हैं; तथापि हमसे वे ही अधिक ज्ञानवृद्ध हैं। आप उन्हींसे जिज्ञासा कीजिये। हमारी अपेक्षा वे आत्मोद्धारका उपाय आपको अधिक उत्तमतासे बता सकेंगे।" परीक्षितने शुकदेवजीसे हाथ जोड़ कर कहा,—"महाराज! अब मेरे जीवनके सात ही दिन शेष रह गये हैं। इतने दिनोंमें मुझे ज्ञान कैसे हो सकेगा?" शुकदेवजी बोले,—"राजन्! सात दिन बहुत हैं। नारद मुनिने तो राजा खट्वाङ्गको दोही घड़ीमें ज्ञान देकर मुक्त कर दिया था। मेरे पिता श्रीव्यासदेवजीने जो भागवत बनाया है, उसे मैं सात दिनोंमें तुम्हें सुना दूँगा, जिससे तुम आत्मज्ञान प्राप्त कर वैकुण्ठ पा जाओगे।"

राजाने जलके बीचमें एक घर बनवाकर, जहां सर्प न आ सके,—भागवत सुनना आरम्भ किया। देवोंके वैद्य धन्वन्तरी सर्पदंशपर उपाय करनेके लिये बुलाये गये थे, उन्हें 'तक्षक' नामक नागराजने मार्गमें ही विपुल धन देकर लौटा दिया और स्वयं कीड़ेके रूपमें बैरमें जा बैठा। सातवें दिन भागवत समाप्त होते ही राजाने कुछ फल खाये। उन फलोंमें वह बैर था, जिसमें 'तक्षक' बैठा था। सूर्यास्त होते होते 'तक्षकने' अपना मूलस्वरूप प्रकट कर राजाको दंश किया, जिससे ऋषि मुनियोंके सम्मुख राजाने देह छोड़ा। भागवत श्रवणसे उन्हें वैकुण्ठ प्राप्त हुआ। उनके वियोगसे उनकी प्यारी प्रजा दुःखसे विह्वल हो उठी।

परीक्षितके पश्चात् जनमेजय राज्यासनपर बैठे। उन्होंने 'तक्षक' से अपने पिताका बदला लेनेके लिये 'सर्प सत्र' नामक यज्ञ किया, जिसमें पृथ्वीके समस्त सर्पोंकी आहुति दे दी। जब तक्षककी बारी आई, तो वह इन्द्रके पीछे जा छिपा। यह देख, राजाने ऋषियोंसे कहा,—"इन्द्रके साथ तक्षककी आहुति दे दो"। परन्तु तक्षकके पूर्वज आस्तिक ऋषिने बिचवई कर राजाको समझाया।

और तक्षकके प्राण बचा लिये। तबसे आस्तिककी शपथ दिलानेसे कोई सर्प किसीको नहीं काटता।

श्रेष्ठ सत्पुरुषोंको ढोंगी समझ कर अविवेकसे उनका अपमान करनेसे असमयमें ही जीवनसे कैसे हाथ धो बैठना पड़ता है, इसकी शिक्षा परीक्षितके चरित्रसे मिलती है।

राजा अलर्क ।

आर्योंको छोड़ संसारकी समस्त मनुष्यजातियोंका अन्तिम लक्ष्य अर्थ-कामकी प्राप्ति होनेपर भी आर्य्यजाति धर्म और मोक्षको ही अपना अन्तिम लक्ष्य मानती है। इस बातको सिद्ध करनेके लिये राजा अलर्कका ज्वलन्त दृष्टान्त उपयुक्त होगा।

प्राचीनकालमें उत्तर भारतके सीमा प्रदेशमें शत्रुजित् नामक राजा राज्य करता था। उसीका पुत्र ऋतुध्वज हुआ। गालव मुनिको तपोबलसे स्वर्गीय कुवलय नामक अश्व प्राप्त हुआ था, जो आकाश, पृथ्वी और जलमें चल फिर सकता था। पातालवासी पातालकेतु नामक दैत्य, सुअर, हाथी, सिंह आदिका रूप बनाकर, जब जब मुनि यज्ञ करने बैठते, तब तब वहाँ आकर उनके यज्ञका विध्वंस कर देता था। उसीने विश्वावसु नामक गन्धर्वकी 'मदालसा' नामकी कन्याको हरण कर पातालमें ले जा रक्खा था। मुनि उसे अपने तपके प्रभावसे भस्म कर सकते थे, पर इस कठोरतासे तपोभङ्ग होगा, यह सोच और ऋतुध्वजको यज्ञरक्षाके लिये सब प्रकारसे सुयोग्य समझ, उन्होंने कुवलयाश्व ऋतुध्वजको देकर

यज्ञरक्षाकी आज्ञा दी। पिताकी आज्ञा पाकर ऋतुध्वज गालव मुनिके आश्रममें गये और उस दैत्यको मार कर मुनिको सङ्कटसे मुक्त किया।

दैत्यने सूवरका रूप धरा था। वह जब ऋतुध्वजके बाणोंसे आहत हुआ, तब भागकर पातालकी ओर चला। कुवलयकी सहायतासे ऋतुध्वज भी पातालमें पहुँच गये। वहीं मदालसासे उनकी भेंट हुई। उसे भी पातालकेतुके मारे जानेसे प्रसन्नता हुई। तुम्बरु आदि गन्धर्वोंके पुरोहितोंके कहनेसे ऋतुध्वजने मदालसासे विवाह किया और उसको साथ लेकर वे घर लौट आये। पुत्रके पुरुषार्थसे शत्रुजित् भी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने ऋतुध्वजको पुनः आज्ञा दी कि, इस अश्वकी सहायतासे तुम पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करो और जहाँ कहीं ऋषि, मुनि, गौ ब्राह्मणोंको कष्ट हो, उसका निवारण कर दो। ऋतुध्वजने अनेक देश देखे। बहुतसे राजा और ऋषियोंसे मित्रता और परिचय कर लिया। नागलोक (अमेरिका) के राजकुमारोंसे तो उनकी घनिष्ठता बहुत ही बढ़ गई थी।

पातालकेतुके भाई तालकेतुने ऋतुध्वजसे अपने भाईका बदला चुकाना चाहा। वह कपटमुनिका वेष धारण कर यमुना तटपर जा बैठा। वहाँ जब ऋतुध्वज पहुँचे, तो उसने कहा,—"महाराज! आप बड़े दानी हैं। मैंने बड़े बड़े यज्ञ किये हैं, परन्तु ब्राह्मणोंको दक्षिणा देनेके लिये मेरे पास धन नहीं है। इस कारण आप अपने गलेका हार मुझे दे दीजिये।" राजकुमारने तुरन्त हार दे दिया। कपटमुनिके यह कहनेपर कि,—"मैं स्नान कर आता हूँ, तब तक आप यहीं विराजें"—राजपुत्र बैठे रहे। उधर पातालकेतुने शत्रुजित्से जाकर कहा कि,—'आपका पुत्र रणमें मारा गया और उसका घोड़ा शत्रुओंने छीन लिया। एक हार वहाँ पड़ा था, सो इसको लेकर मैं साधु क्या करता? आपको दे देता हूं, अपनी वस्तु

सम्हालिये।' राजा रानीके दुःखकी सीमा न रही। पतिप्राणा मदालसाका तो इस कुवार्ताके सुनते ही देहान्त हो गया। तालकेतुने लौट आकर कहा,—'अब आप जा सकते हैं।' ऋतुध्वज अपनी राजधानीमें चले आये। उनको देखते ही राजा और प्रजाजन अत्यन्त आनन्दित हुए। राजकुमारके पुनर्जीवनके उत्सव मनाये गये। ऋतुध्वजको सब समाचार विदित हुए। सब कुछ हुआ, परन्तु मदालसाके वियोगका दुःख उनके हृदयमें बना ही रहा। मन बहलानेके लिये उन्होंने नागकुमारोंको अपने पास बुला लिया था और उनके साथ साहित्य सङ्गीतकी चर्चा कर किसी प्रकार मनोरञ्जन कर लेते थे, पर वास्तवमें उनका चित्त कहीं नहीं लगता था।

एक दिन नागराजने अपने पुत्रोंसे पूछा,—"तुम्हारी ऋतुध्वजके साथ इतनी घनिष्ठता है, तुमने उन्हें उपहारमें क्या दिया ?" नागकुमार बोले,—"उन्हें किसी बातकी कमी नहीं, जो हमारे यहाँ वस्तुएँ नहीं, वे उनके पास हैं और जिसकी उन्हें कमी है, वह हम पूरी भी नहीं कर सकते। मदालसाके वियोगसे वे दुःखित रहते हैं। मृत जीवको हम कैसे जिलाकर उन्हें दे सकेंगे ?" नागराजने कहा,—"कुमारो! उद्योगी पुरुषके लिये असम्भव कुछ नहीं है। अस्तु, मैं उन्हें मदालसा दिला दूंगा। नागराजने सरस्वतीकी आराधना कर गानविद्या प्राप्त की और उस गानविद्यासे श्रीशिवजीको प्रसन्न कर उनके द्वारा मदालसाको जिला लिया। मदालसा, पहिले ही रूप और अवस्थामें, ऋतुध्वजको नागराजने अपनी पुत्री कह कर प्रदान की। इस घटनासे सबभर ऋतुध्वज और नागराजकी कीर्ति फैली। दुःखोंके बादल हटकर सुखसूर्य्यका उदय हो गया।

मदालसासे ऋतुध्वजको विक्रान्त, सुबाहु और शत्रुमर्दन नामक तीन पुत्र हुए, जो माताका उपदेश पाकर राजपाट छोड़

तप करने चले गये। चौथे पुत्रका नाम 'अलर्क' रक्खा गया। ऋतुध्वजके बहुत समझाने बुझानेपर इसे तपका उपदेश न देकर मदालसाने राजनीति, व्यवहारचातुरी, शस्त्र-शास्त्रविद्या और कला-कुशलता सिखलाई; जिससे अलर्क बहुत योग्यतासे राज्यकार्य करने लगे।

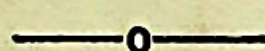
ज्ञानके आकर साक्षात् श्रीशंकर भगवान्ने मदालसाको जिलाया था, इस कारण उसे जैसा व्यावहारिक, वैसा ही पारमार्थिक-ज्ञान भी हो गया था। मदालसाने अपने पुत्र अलर्कको नीति-शास्त्रका जो उपदेश दिया है, वह पढ़कर संसारके अच्छे अच्छे नीतिशास्त्रियोंको दाँतोंतले अंगुली दबानी पड़ती है। उसकी अध्यात्मशास्त्र सम्बन्धी योग्यताका तो यही प्रत्यक्ष प्रमाण है कि, उसने अपने तीन पुत्रोंको बहुत थोड़ी अवस्थामें आत्मज्ञान करा दिया था, जो बड़े बड़े ऋषि मुनियोंको कठोर तप करनेपर भी दुर्लभ होता है।

अलर्कको राज्य सौंपकर ऋतुध्वज मदालसाके साथ हिमालयमें तप करने चले गये। अलर्क संसारके जंजालमें दिन प्रतिदिन अधिकाधिक फँसते गये। उनके ममता-मोह-तृष्णा आदि तामसिक भाव बढ़ रहे थे। प्रतिष्ठा पाने, नाम कमानेकी उलझनमें वे लगे रहते, कभी परलोकका विचार नहीं करते थे। उनकी यह दशा देख, उनके जीवन्मुक्त भाई सुबाहुको दया आई। उन्होंने सोचा, हम तीनों मुक्त हों और अपना छोटा भाई मायाके चक्रमें ही पड़ा रहे, यह ठीक नहीं। उसे ऐसे कष्ट पहुँचाये जायं, जिससे उसमें वैराग्य उपजे; क्योंकि कष्टमें ही भगवान सूझते हैं, सुखमें नहीं।

सुबाहुके कहनेसे काशिराजने अलर्कपर चढ़ाई की। निमित्त यह था कि, अलर्क अपने राज्यका भाइयोंमें बँटवारा कर दें। अलर्क कहते थे कि, भाई मेरे पास आकर राज्य मांगें, तो मैं उन्हें

समूचा राज्य दे दूं। परन्तु मांगना क्षत्रियोंका धर्म नहीं, कह कर काशिराज लड़ता गया। अलर्क हार गये। तब उन्होंने दत्तात्रेयकी उपासना कर उन्हें प्रसन्न किया और राज्यकी सुरक्षा हो, मैं विजयी होऊं, यह वर उनसे मांगा। दत्तात्रेयने सुबाहुकी सदिच्छाका वृत्तान्त सुनाकर अलर्कको आत्मज्ञानका उपदेश दिया। जिससे अलर्कने राजपाट अपने पुत्रोंको देकर तप करनेका निश्चय किया। राज्याभिषेकके समय अलर्कके तीनों भाई, काशिराज और दत्तात्रेय उपस्थित हुए थे। उत्सव समाप्त होनेपर काशिराज अपनी राजधानीमें गये, दत्तात्रेय अन्तर्धान हुए और मदालसाके चारों पुत्र तपमें लग गये।

सारांश यह कि, अर्थ-काम आवश्यक होनेपर भी, उनको गौण समझकर धर्म-मोक्षके पुरुषार्थमें ही मनुष्यको लग जाना चाहिये। चिरंतन सुख धर्म-मोक्षकी सिद्धिसे ही प्राप्त होता है।



महावीर हनूमान।





प

ञ्चतत्वोंके देवोंमें वायुदेवका स्थूलजगत्में बड़ा ही महत्व है। इनकी पत्नी अञ्जनी बड़ी ही तपस्विनी होनेके कारण उसने देवताओंको प्रसन्न कर, यह वर माँग लिया कि, मुझे पुत्र हो, पर उससे बढ़कर संसारमें कोई शक्तिशाली न रहे। वह जितेन्द्रिय, वासनाहीन, ज्ञानी और स्मरण करते ही जगत्का उपकार करनेमें तत्पर रहे। इस प्रकारके पुत्रका होना कठिन जान, देवताओंने शंकरसे प्रार्थना की। क्योंकि ये गुण शंकरमें ही हैं।

उनके अंशसे जो उत्पन्न होगा, उसीमें ये गुण रहेंगे। भक्तवत्सल भगवान् शंकरने देवताओंकी प्रार्थनाके अनुसार अपने अंश रुद्रको अंजनीके गर्भसे चैत्र सुदी पौर्णिमाके दिन सूर्योदयके समय उत्पन्न किया। इसीसे मारुति रुद्रावतार कहे जाते हैं।

जन्मते ही वे कोई लाल फल समझ, सूर्यपर झपटे। सूर्यने उन्हें बड़े प्यारसे अपने रथमें बैठा लिया और वेदोंको पढ़ाया। एकबार राहु सूर्यको ग्रसना चाहता था, पर पवनसुतको वहां बैठा देख, भयसे भागकर इन्द्रको अपने साथ ले आया। उसपर भी अंजनीकुमार, जामुन समझ कर, झपटे। राहुको बचानेके लिये इन्द्रने उनपर वज्र चला दिया, जिससे उनकी बाईं ओरकी हनु (ठुड्ढी) टूट गई और वे निर्जीव हो, एक पहाड़पर जा गिरे। वायुदेवने पुत्रकी यह दशा हुई देख, इन्द्रपर क्रुद्ध हो, हवा बहाना बन्द कर दिया, जिससे देव-दानव-मनुष्योंका दम घुटने लगा। सबके देह, काठकी तरह जकड़ गये। चारों ओर हाहाकार मचा। यज्ञ बन्द हो गये और देवता भूखों मरने लगे।

सब देवताओंने ब्रह्माके पास दुखड़ा रोया। तब ब्रह्माजीने मारुतिपर हाथ फेर, उन्हें जिला लिया और इन्द्रने वायुदेवसे क्षमा मांगी। वायुदेव प्रसन्न हुए। सब देवताओंने वायुपुत्रको अनेक वर और आयुध दिये। तबसे वे महावीर, वज्रदेही, स्मरणगामी और अमर हुए हैं। वज्राघातका चिन्ह उनकी हनुपर बना रहा, इससे वे 'हनूमान' कहे जाने लगे।

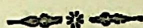
अनेक वरदान प्राप्त होनेके कारण निःशङ्क हो, हनूमान् जो मनमें आता, करते थे। कभी लोगोंको नोचते खसोटते, मारते पीटते, कभी पेड़ोंपर उछल कूद मचाते, कभी लोगोंके घर ढाहते और कभी कभी तो ऋषियोंके आश्रमोंमें जाकर यज्ञपात्रोंको तोड़ते फोड़ते और वल्कलोंको चीर फाड़ डालते थे। भविष्यत्‌में

इनसे बहुत काम निकलेगा, जानकर कोई ऋषि इन्हें दण्ड नहीं देते थे; किन्तु अङ्गिरा और भृगुवंशके ऋषियोंने इन्हें शाप दे रक्खा था कि,—"तुम अपना बल भूले रहोगे, जब कोई तुम्हारी स्तुति करेगा, तभी वह काम आवेगा।" तबसे हनूमान बड़े शान्त और गम्भीर हो गये।

एक बार शनिदेव साढ़ेसाती लिये उनके सिरपर जा बैठे। उन्होंने कई पर्वत उठाकर अपने सिरपर धर लिये। उनसे दब कर शनिदेव रोने चिल्लाने लगे। जब वे बहुत गिड़गिड़ाये, तब हनूमानने उन्हें यह कहकर छोड़ दिया कि,—"जो मेरा नाम ले, उसे तुम मत सताना।" तबसे हनूमानके भक्तोंके पास शनिदेव खड़े भी नहीं होते, सताना तो दूर ही रहा। इसी तरह अक्ष, जम्बू आदि कई दैत्योंको मारकर हनूमान्‌ने जगत्‌की पीड़ाको हटाया था और अब भी वे अपने भक्तोंके कष्टोंको निवारण किया करते हैं।

हनूमान राजा सुग्रीवके मन्त्री थे। फिर रामभक्त हुए। रामचन्द्रजीके साथ रहकर उन्होंने कैसे कैसे अद्भुत कार्य किये थे, सो संसारको ज्ञात हैं। वे परमज्ञानी, बालब्रह्मचारी और निःस्वार्थ देश और देवसेवी थे। बड़े प्रेमसे सीताने रामके गलेका बहु-मूल्य हार उन्हें लङ्काविजयके उपलक्ष्यमें दिया था, पर वह राम-नामसे अङ्कित न होनेके कारण उन्होंने नोचकर दाँतोंसे कुतर डाला। लोगोंने उपहाससे कहा,—"क्या आपकी छातीमें भी राम हैं?" उन्होंने तुरन्त छाती फाड़कर दिखा दी। वहाँ रामनाम अङ्कित था। यह देख लोगोंको अत्यन्त आश्चर्य हुआ। स्वामिभक्ति और साहसके आदर्श स्वरूप हनूमानजीने रामनामके बलपर समुद्र-में पत्थर तैरा दिये थे। जहाँ रामचर्चा होती है, वहाँ हनूमानजी हाथ जोड़, बैठकर सुना करते हैं और कभी कभी भक्तोंको दर्शन भी देते हैं। वे चिरञ्जीवी और बलनिधान हैं। उनकी उपासनासे बल और देशानुराग प्राप्त होता है।

अजामिल ।



ध्यान प्रथम युग मख युग दूजे—द्वापर परितोषत प्रभु पूजे ।
कलि केवल मलमूल-मलीना—पाप-पयोनिधि जनमन मीना ॥
नहिं कलि कर्म न भक्ति विवेकू—राम नाम अवलम्बन एकू ।
भाव कुभाव अनख आलसहू—नाम जपत मङ्गल दस दिसहू ॥

सत्ययुगमें ध्यानसे, त्रेतामें यज्ञसे और द्वापरमें पूजनसे भगवान् प्रसन्न होते थे; किन्तु अनेक पापोंके समुद्रमें लोगोंके मन मीनके समान लवलीन होते हुए भी कर्म उपासना ज्ञानसे भी प्रसन्न न होनेवाले भगवान् कलिकालमें एक मात्र नामका अवलम्बन करनेसे प्रसन्न हो जाते हैं। अच्छे भावसे, कुभावसे, क्रोधसे या आलससे ही वह नाम क्यों न जपा जाय, उससे दशो दिशाओंमें मङ्गल ही होता है। ध्रुव प्रह्लादको नामके प्रभावसे भगवद्दर्शन हुए। गीध हाथी जैसे पशु पत्ति भी नाम-स्मरणसे तर गये। हिरण्यकशिपु, कंस, रावणादि असुरोंने भी नामके बलपर मुक्ति पाई। हनूमानने तो नामकी मोहिनीसे रामको ही अपने वशमें कर लिया। अजामिल भी नामकी महिमासे परम गतिको प्राप्त हुए थे। उनकी कथा इस प्रकार है:—

प्राचीनकालमें अजामिल नामक एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण अपने धर्म कर्मको छोड़कर शूद्र जैसा व्रात्य हो गया था। वह न कभी भगवान्का नाम लेता और न पूजा पाठ करता था। परोपकार, ज्ञानपिपासा आदि मनुष्यको मोक्षमार्गमें ले जानेवाले गुणोंमेंसे उसमें एक भी गुण नहीं था। उसने शूद्रा स्त्रीसे विवाह कर लिया था, उससे उसे दश पुत्र हुए। वह निरन्तर उन्हीं स्त्री पुत्रोंमें ही दिल

रात रमा रहता था। सबसे छोटे पुत्रपर उसका सबसे अधिक प्यार होनेके कारण उसे वह कभी आँखोंकी ओट नहीं होने देता था। उसका नाम उसने 'नारायण' रक्खा था। अजामिलके देहान्तके समय नारायण कहीं बाहर खेल रहा था। अजामिल प्राणान्तकी असह्य वेदनाओंसे व्याकुल हो, अपने पुत्र 'नारायण' को पुकारने लगा। 'नारायण, नारायण' कहते कहते उसका देहावसान हो गया।

मरनेके उपरान्त उसे लेने यमदूत और विष्णुदूत दोनों आकर उसकी खींचा तानी करने लगे। यमदूत कहने लगे, यह महापापी होनेके कारण इसे हम नरकमें ले जायँगे और विष्णुदूत कहने लगे; इसने अन्त समयमें भगवान्का नाम लिया है, इस कारण हम इसे भगवान्के निकट ले जायँगे। अन्तमें विष्णुदूतोंकी विजय हुई। वे अजामिलको भगवान् विष्णुके पास ले गये। जगदीशका दर्शन करते ही अजामिल तर गया और विष्णुपार्शदोंमें उसे स्थान मिला। यमदूतने जब यह वृत्तान्त यमराजसे कहा, तो वे स्वयं विष्णुभगवान्के पास आकर कहने लगे कि,—"महाराज! ऐसे पापियोंको यदि आप तारने लगेंगे, तो नरकका प्रयोजन ही नहीं रहेगा और जगत् पापी हो जायगा।"

विष्णुभगवान्ने कलिकालमें जीवन मरणसे उद्धार पानेके एक मात्र आधारस्वरूप नामस्मरणका माहात्म्य यमराजको बताया, जिससे यमराज भगवान्को प्रणाम कर अपने लोकको लौट गये।

श्रीभगवान् जगन्मङ्गल करनेवाले और केवल नामस्मरणसे ही प्रसन्न होनेवाले हैं। अजामिल जैसे पापीको भी अकस्मात् नाम लेनेसे उन्होंने तार लिया, तो सदाचारी, सुशील, शान्त, परोपकारी, देशसेवी और भगवद्भक्त होंगे, उनके तारनेमें वे क्योंकर आनाकानी करेंगे? जगत्के जंजाल सभीके पीछे लगे हुए हैं, परन्तु भगवान्के

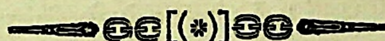
नामको न भूलना चाहिये। प्रत्येक काम करते समय भगवान्‌का बड़े प्रेमसे नामस्मरण करना चाहिये। हरिनामरूपी नावसे ही भक्त भवसागरको पार कर सकता है, यही शिक्षा अजामिलके चरित्रसे मिलती है। भगवान्‌से भी उनके नामकी महिमा गोस्वामी-जीने इस प्रकार श्रेष्ठ बताई है:—

अगुण सगुण दोउ ब्रह्म स्वरूपा,
अकथ अनादि अगाध अनूपा।
उभय अगम युग सुगम नामतें,
कहहुं नाम बड़ ब्रह्म रामतें।

अर्थात् ब्रह्मके सगुण निर्गुण ये दो स्वरूप हैं, जो कहे नहीं जा सकते, अनादि अथाह और अनुपम हैं। परन्तु नामसे दोनों जानने योग्य न होनेपर भी जान लिये जाते हैं। अतः ब्रह्मस्वरूप रामसे भी नाम श्रेष्ठ है।

———o———

कौरव पाण्डव और भीष्मपितामह।





जब किसी जातिमें ऐसी शक्ति आ जाती है, जिसका दमन दूसरी जातियाँ नहीं कर सकतीं; तब उसी जातिमें परस्पर वैर विरोध उत्पन्न होकर उसका नाश हो जाता है। चन्द्रवंशीय भारतीयोंकी यही दशा हुई और उसीका अनुकरण इस समय उन्नत कहानेवाली पश्चिमी जातियाँ कर रहीं हैं। भारतीय युद्धका इतिहास कौन भारतवासी नहीं जानता? उसी युद्धके परिणामसे हम आज अधः पतित हुए हैं।

यह बात नहीं कि, कौरव-पाण्डवोंमें सङ्घर्ष ही चलता था; उनमें एकता भी असाधारण थी। प्रायः वे कहा करते थे कि, जब हम आपसमें लड़ते हैं, तब हम सौ कौरव और पाँच पाण्डव पृथक् पृथक् हैं, पर यदि कोई दूसरा हमारी ओर आँख उठाकर देखे, तो हम एक सौ पाँच हैं। यह वृत्ति अभी तक पश्चिमी देशोंके लोगोंमें विद्यमान होनेके कारण वे सम्हलते जा रहे हैं और हम इस वृत्तिको भुला बैठे हैं, इस कारण गिर रहे हैं।

भारतीय युद्धमें दोनों दल शक्तिहीन हो गये, इसमें सन्देह नहीं, परन्तु उस समय जैसी रणनीति प्रचलित थी, उससे भारतका उन्नतिके शिखरपर—सभ्यताके शिखरपर—होना सिद्ध होता है। दिनभर लड़कर दोनों दल एक ही शिविरमें सोते थे। रात्रिमें लड़ाई नहीं होती थी। पीछेसे या धोखेसे शस्त्र नहीं चलाया जाता था और जिस अङ्गपर जो शस्त्र चलाना सर्वसम्मत था, उसीपर वह चलाया जाता था। इतने बड़े घनघोर सङ्ग्राममें कहीं कहीं रणनीतिका उल्लङ्घन हुआ, पर वह अपवाद है। उन नियमोंके अनुसार यदि युद्ध हो, तो आज भी भारतवासी संसारकी किसी जातिसे हीनबल नहीं देख पड़ेंगे।

महाभारतमें नीति, धर्म और पुत्रस्नेहके त्रिविध सङ्कटमें पड़े हुए वृद्ध एवं अन्ध धृतराष्ट्र, महाधीर और आबाल ब्रह्मचारी भीष्म-पितामह, उदार महात्मा राजा युधिष्ठिर और उनके आज्ञापालक अगाधशक्तिसम्पन्न अर्जुन आदि वीर भ्राता, महाज्ञानी भगवान् श्रीकृष्ण, सत्पुरुष विदुर, पतिप्राणा गान्धारी, वात्सल्यकी मूर्ति कुन्ती, सङ्कट तथा दुःखोंको तृणसमान लेखकर एक चित्तसे पति-सेवा करनेवाली सती द्रौपदी, दृढ़ निश्चयी दुर्योधन, प्रतापी कर्ण, शर और शापमें समर्थ कृपाचार्य, द्रोणाचार्य आदिके जो चरित्र अङ्कित हुए हैं, उनमेंसे प्रत्येक मनन करने योग्य है। ग्रन्थ

विस्तारके भयसे कौरव पांडवोंका संक्षिप्त वृत्तान्त ही लिखा जाता है, जिससे उन चरित्रोंकी सामान्य रूपरेखा ज्ञान ली जा सकेगी।

पुरूरवाके वंशमें ययाति, नहुष, दुष्यन्त आदि प्रतापी राजा हुए। दुष्यन्तके पुत्र भरत और उन्हींके कुलमें शन्तनुका जन्म हुआ था। शन्तनुने भगवती गङ्गासे विवाह किया था। उनसे आठ पुत्र हुए। उनमेंसे गङ्गाने सात तो अपने स्रोतमें बहा दिये। आठवें पुत्र देवव्रतको पतिके बहुत कहने सुननेसे नहीं बहाया। शन्तनुने अपनी दूसरी स्त्री मत्स्यगन्धासे यह प्रतिज्ञा करके विवाह किया कि, देवव्रतको राज्याधिकारी न बनाकर तुम्हारे पुत्रोंको ही बनाऊंगा। मत्स्यगन्धाको देवव्रतका भय था। वह दूर करनेके लिये उन्होंने प्रतिज्ञा करली कि, मैं राज्यासनपर न बैठकर आजन्म ब्रह्मचारी रहूंगा। उनकी यह प्रतिज्ञा अटल रही, इस कारण उन्हें लोग भीष्म (अटल प्रतिज्ञावाले) कहने लगे। कौरव पाण्डवों-के पितामह होनेके कारण उनका नाम 'भीष्मपितामह' पड़ गया।

शन्तनुको मत्स्यगन्धासे चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य नामक दो पुत्र हुए। चित्राङ्गद एक युद्धमें मारे गये और शन्तनुकी प्रतिज्ञाके अनुसार विचित्रवीर्यको राज्यासन मिला। विचित्रवीर्यको कुरु और पाण्डु नामक दो पुत्र हुए। उनका तीसरा भी एक पुत्र था, जिसका नाम विदुर था। विचित्रवीर्यके पश्चात् पाण्डु राजा हुए। कुरु बड़े होनेपर भी अन्धे होनेके कारण राज्यके अधिकारी नहीं समझे गये। कुरुके गान्धारीसे दुर्योधन दुःशासन आदि सौ और पाण्डुके कुन्तीसे धर्म, भीम, अर्जुन, और माद्रीसे नकुल, सह-देव इस प्रकार पाँच पुत्र हुए। कुन्तीका एक और कर्ण नामक पुत्र था, परन्तु वह कौरवोंका ही पक्षपाती था। माद्री और पाण्डु-का शीघ्र ही देहान्त हो जानेके कारण कुरुने राज्यसूत्र अपने हाथमें लिये, इसीसे वे धृतराष्ट्र कहलाये। भीष्म, कृपाचार्य और द्रोणा-

चार्यने कुरु-पाण्डु-पुत्रोंको अच्छी शिक्षा देकर थोड़े ही दिनोंमें सकल-विद्या कलाओंमें समानरूपसे निपुण कर दिया। शिक्षा पाते समय कौरवोंकी अपेक्षा पाण्डव अधिक बुद्धिमान् होनेके कारण उनसे गुरुगण प्रसन्न रहा करते थे, इससे दुर्योधन आदि कौरव पाण्डवोंसे डाह करते ही थे; किन्तु कुछ सयाने होनेपर जब उन्हों-ने जाना कि, हमारे पिता कुलमें श्रेष्ठ होनेपर भी राज्यके अधिकारी नहीं हुए और अब भी पाण्डव ही राज्य पावेंगे, तब तो वे बहुत ही कुढ़ने लगे।

बल पुरुषार्थमें पाण्डव कौरवोंसे किसी प्रकार कम नहीं थे। दुर्योधन, उनके महादुष्ट मामा शकुनि और कर्ण आदिने सोचा कि, प्रत्यक्ष लड़ झगड़कर हम पाण्डवोंसे पार नहीं पावेंगे। उन्हें छल-बल कौशलसे मार डालना चाहिये। सब भाइयोंमें बलवान भीमसेन थे। उन्हींको पहिले दुर्योधनने लड्डुओंमें विष खिला दिया और नदीमें बहा दिया। वहां सर्पके काटनेसे भाग्यवश उनका विष उतर गया। घर लौट आकर उन्होंने सब वृत्तान्त भाइयोंसे कहा। महात्मा विदुर और युधिष्ठिर (अतिशान्त, नीतिमान, धार्मिक और बुद्धिमान् होनेके कारण इन्हें 'धर्मराज' कहते थे) के कहनेसे उस समय भीमने दुर्योधनको क्षमा कर दी। फिर एक वार वारणावतमें कुन्ती समेत पाँचो भाई एक उत्सवमें गये थे, वहां लाहके घरमें उनको ठहराकर रात्रिमें उस भवनमें आग लगा दी। परन्तु विदुर इस भेदको जान गये थे। उन्होंने सुरंग बनवा-कर पाण्डवोंकी रक्षा की। सब बाल बाल बच गये। इस प्रकार कौरवोंने पाण्डवोंके मारनेका कई बार उद्योग किया, परन्तु जिसे परमात्मा बचाता है, उसे कौन मार सकता है? प्रत्येक बार दुर्योधनके यत्न असफल होते गये। इस बीचमें हिडिम्ब राक्षसका वध कर भीमने उसकी बहिन हिडिम्बासे विवाह कर लिया, जिससे

आगे चलकर घटोत्कच नामक बड़ा वीर पुत्र उत्पन्न हुआ। भीमने ब्राह्मणोंको कष्ट देनेवाले बकासुरका भी नाश किया था और मत्स्यवेध कर पाण्डवोंने द्रौपदीसे विवाह कर लिया था। द्रौपदी-स्वयम्वरमें शिशुपाल, शकुनि, दुर्योधन, जरासन्ध आदिने भी अपनी अपनी चातुरी प्रकट की थी, परन्तु अर्जुनकी जीत हुई और भीष्म. द्रोण, विदुर आदिने धर्मराजको सबसे बड़े होनेके कारण युवराज बनाया। इससे दुर्योधन बहुत ही चिढ़ा और वह पाण्डवोंका प्रत्यक्ष वैरी बन गया। इस झगड़ेको मिटानेके लिये सबने विचार कर कौरव-पाण्डवोंको आधा आधा राज्य बाँट दिया। पाण्डवोंने खाण्डव-प्रस्थमें अपनी राजधानी बनाई। द्रौपदी पाँच पुरुषोंमें बँट गई थी सही, पर एकके पास रहते हुए यदि उसे दूसरा देख ले, तो एक वर्ष तक देखनेवालेको तीर्थयात्रा करनी पड़ती थी। अर्जुनने द्रौपदीको एक दिन धर्मराजके साथ एकान्तमें देख लिया था, इससे उन्होंने तीर्थयात्रा की। उसी समय उन्होंने नागराजकन्या उलूपी, मणिपुरनरेशकी कन्या चित्राङ्गदा, श्रीकृष्णभगिनी सुभद्रा और हिमनगेशकी कन्या प्रमिलासे विवाह किये। शेष पाण्डव और कौरवोंके भी विभिन्न राजकन्याओंके साथ विवाह हो गये थे। द्रौपदीके स्वयम्बरमें ही अर्जुन और श्रीकृष्णकी भेंट हुई। खाण्डव-प्रस्थमें अर्जुन श्रीकृष्ण बैठे थे, इतनेमें ब्राह्मणवेशमें अग्निने आकर खाण्डववन मांगा। दोनोंने वह दे दिया। अग्निने वह जलाकर नगर बनाने योग्य भूमि कर दी और तृप्त होकर श्रीकृष्णको सुदर्शन चक्र तथा अर्जुनको गाण्डीव धनुष्य एवं कपिध्वज नामका रथ दिया। मय नामक एक शिल्पकार दानवका खाण्डव-वनदाहके समय दोनोंने प्राण बचाये थे, इसके प्रत्युपकारमें उसने पाण्डवोंको ऐसा भवन बना दिया, जिसमें जलके स्थानमें स्थल और स्थलके स्थानमें जल देख पड़ता था। युधिष्ठिर राज्य करने लगे। उनके

चारों भाई दिग्विजय कर, जरासन्ध आदि असुरोंको मारकर बहुत-सी सम्पत्ति ले आये। फिर युधिष्ठिरने राजसूय यज्ञ किया, जिसमें समस्त राजन्यगण, ऋषि, महर्षि सम्मिलित हुए थे। मयसभामें दुर्योधनका बड़ा उपहास हुआ। कभी वे स्थल समझकर जलमें जा गिरते और कभी जल समझकर बिछौनेपर पहुंडने लगते थे। यह देख उजड्ड भीमने तो यह भी कह दिया कि, अन्धेके बच्चे अंधे ही होते हैं।

पाण्डवोंका उत्कर्ष दुर्योधनको असह्य हो गया। उसने द्यूतके लिये ललकारकर शकुनिकी सहायतासे पाण्डवोंको कपटद्यूतमें ऐसा हराया कि, राजपाट, द्रौपदी तकको दाँवमें लगाकर पाण्डव हार गये। अन्तिम यह दाँव लगा कि, अबकी यदि पाण्डव हारेंगे, तो बारह वर्षोंतक वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास करेंगे और अज्ञातवासमें पकड़े जायँगे, तो पुनः बारह वर्ष वनवास करेंगे। यही क्रम बराबर रहा करेगा। दुर्भाग्यवश पाण्डव फिर हारे। वीरप्रसू कुन्तीको महात्मा विदुरकी सम्हालमें रखकर अभिमन्यु सहित सुभद्राको श्रीकृष्णके पास और अन्यान्य स्त्रियोंको नैहर भेज कर द्रौपदी सह पाण्डव वनवासी हुए, परन्तु सत्य और क्षात्रधर्मसे नहीं डिगे। भरी सभामें दुर्योधन, दुःशासन आदिने शरीरपर रोंगटे खड़े करनेवाला अत्याचार द्रौपदीपर किया। यह बात और है कि, श्रीभगवान्ने उस समय दौड़ आ कर उसकी रक्षा की, परन्तु यह सब होते हुए भी धर्मराजने उदार अन्तःकरणसे, भाई जानकर, कौरवोंको क्षमा ही की। अर्जुन, भीम, नकुल और सहदेवसे नहीं सहा गया। उन्होंने कौरवोंके नाशकी प्रतिज्ञा कर ली। ऐसी अवस्थामें भी एक बार गन्धर्वोंसे पराजित होकर कारागारमें पड़े हुए कौरवों-को, जो पाण्डवोंके नाशके लिये वनमें आये थे, धर्मराजने छुड़ाया था। इससे लज्जित होकर दुर्योधनने पाण्डवोंको मार डालनेकी प्रतिज्ञा की। वनमें पाण्डवोंको बड़े क्लेश हुए। वहाँ भी समय समयपर

कौरव दुःख देते ही थे, पर अन्त तक पाण्डवोंका कुछ नहीं बिगड़ा। बारह वर्ष वनवास और विराट्के घर एक वर्ष अज्ञातवासमें रहकर पाण्डव सकुशल लौट आये, उलटे कौरवोंका दिन प्रतिदिन मानभङ्ग होता गया और जगत्में उनकी बड़ी दुष्कीर्ति हुई।

किसी प्रकार पाण्डव नहीं मरे और अब अपना राज्य माँग रहे हैं, यह देख कौरवोंके तलवेकी आग मस्तक तक पहुंची। वनवासके समयमें अर्जुनने शिवजीकी उपासना कर उनसे पाशुपत नामक अस्त्र और इन्द्रसे कितने ही शस्त्रास्त्र प्राप्त किये थे। धर्म, भीम, नकुल, सहदेव आदिने भी तपके द्वारा शस्त्रास्त्र पाये थे। युद्धके लिये अपनेको सक्षम जानकर पाण्डवोंने श्रीकृष्णको विचवई कर कौरवोंके पास भेजा और अपना राज्य माँगा। पूरा राज्य न देते हों तो पाँच गाँव ही दे दें यह भी कहा; पर दुर्योधनने स्पष्ट कह दिया कि, विना युद्धके सूईके अग्र बराबर भी भूमि पाण्डवोंको नहीं दूँगा। विवश हो, पाण्डवोंको युद्ध करना पड़ा। जिसमें एक एक करके सब कौरव मारे गये और पाण्डवोंकी विजय हुई। भगवान् श्रीकृष्ण निःशस्त्रव्रती होकर पाण्डवोंको सहायता करते थे। भीष्मपितामहने अपने ब्रह्मचर्य्यके बलपर भगवान्के इस व्रतका भङ्ग कर उनसे चक्र धरा दिया था। भीष्म इच्छामृत्यु थे। दक्षिणायनमें आहत होकर भी वे शरशय्यापर पड़े थे। जब उत्तरायण हुआ, तो उन्होंने देह छोड़ा। इस अवसरमें कौरव पाण्डव दोनों उनके पास प्रतिदिन धर्मोपदेश सुनने आते थे और वे दोनोंको नीतिधर्मकी बातें सुनाते थे। यद्यपि दुर्योधनका अन्न खानेके कारण वे कौरवोंकी ओरसे लड़ते थे, तथापि स्वयं न्यायपरायण और धर्मात्मा होनेसे धर्मकी मूर्ति धर्मराजपर विशेष प्रसन्न रहा करते थे। धर्मराजको उन्होंने जो उपदेश दिया है, वह वास्तवमें प्रत्येक मनुष्यको हृदयङ्गम कर लेना चाहिये। प्रसङ्गवश महाभारतमें कणिक, विदुर

आदिकी भी नीतियाँ लिखी गई हैं, जो नीतिशास्त्रकी भित्तिस्वरूप हैं। समर-विजयी होकर पाण्डवोंके राज्यासनासीन होनेपर नारदने धर्मराजको जो प्रश्नोत्तररूपमें राजधर्मका उपदेश किया है, वह वास्तवमें समाजको उन्नत करने वाला है।

पाण्डवोंकी विजय हुई सही, पर इस भाई-भाइयोंकी भयानक लड़ाईमें भारतकी ऐसी हानि हुई कि, उसे आज तक हम पूरी नहीं कर सके हैं। उद्यानके समान सुन्दर भारतवर्ष उजाड़ बन बन गया। सारा देश शोकसागरमें डूब गया। जहाँ तहाँ मृतपुरुषोंके बन्धु बान्धवोंकी करुणाध्वनि सुनाई देने लगी। गान्धारी आदि राजमाता, राजवधू और राजकन्याओंके विलापसे हृदय फटने लगता था। धृतराष्ट्रकी आज्ञानुसार ही पाण्डव सब राज्यकार्य्य करते थे। वे उनका इतना आदर करते थे कि, उन्हें पुत्रोंका स्मरण नहीं होने पाता था। गान्धारी ऐसी पतिप्राणा थी कि, पति अन्ध थे, इससे आजन्म उसने अपनी आँखोंमें पट्टी बाँध रक्खी थी। जब कभी उन्हें पाण्डव देखते और अपने भाइयों और मृत कुटुम्बियोंका स्मरण करते, तो व्याकुल और उदास हो जाते थे। यद्यपि उनके राज्यमें प्रजा बड़ी ही सन्तुष्ट थी, अब भी अच्छे राज्यको लोग 'धर्मराज्य' कह देते हैं, तथापि बन्धु बान्धवोंके नाशसे उनका चित्त राज्यकार्य्यमें नहीं लगता था।

धर्मराजने ३६ वर्षों तक राज्य किया। कुन्ती और धृतराष्ट्र-गान्धारीके बनमें प्रयाण करनेपर भगवान् श्रीकृष्णके वैकुण्ठके सिधारनेका समाचार पाण्डवोंने सुना। तब तो वे बहुत ही उद्विग्न हो गये और उन्होंने अर्जुनके पौत्र, परीक्षितको राज्य सौंपकर द्रौपदीसहित हिमालयकी ओर महाप्रस्थान किया। यह एक प्रकारका संन्यास है, जो वासनाशून्य होनेपर ग्रहण किया जाता है।

जब पाण्डव हिमालयपर चढ़ने लगे, तब उनके साथ एक

कुत्ता भी हो लिया। चलते चलते सब जब मेरु पर्वतके पास पहुँचे, तो वहाँ द्रौपदीका देहपात हो गया। यह देख भीमने युधिष्ठिरसे चिल्लाकर कहा,—"महाराज! द्रौपदीका देहपात हो गया।" विना पीछे देखे धर्मराज बोले,—"यह शोक करनेका समय नहीं है। हम सब भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन करने जा रहे हैं, जहाँ तक हो, उनका शीघ्र दर्शन होना चाहिये।" इसी प्रकार एक एक करके धर्मराजके सब भाइयोंका देहपात हो गया, परन्तु वे हताश नहीं हुए और बराबर आगे बढ़ते गये। ज्यों ज्यों धर्मराज स्वर्गके निकट पहुंचने लगे, त्यों त्यों वहाँका घण्टा-नाद उन्हें अधिक स्पष्ट रीतिसे सुनाई देने लगा। इस आनन्दमें उन्होंने एक वार सहज ही पीछे देखा, तो कुत्ता साथ आ रहा था। स्वर्गसे देवोंने युधिष्ठिरपर फूल बरसाये और स्वयं इन्द्र विमान लेकर उनके सम्मुख उपस्थित हुए। इन्द्रने कहा,—"महाराज! इस विमानपर चढ़िये। सदेह स्वर्ग जानेका आपके पुण्यबलसे आपको अधिकार प्राप्त हुआ है।" धर्मराज अपने भाई और स्त्रीके विना अकेले स्वर्गमें जानेके लिये प्रस्तुत नहीं हुए। तब इन्द्रने कहा,—"वे लोग पहिले ही वहाँ पहुंच गये हैं, अब आपको चलनेमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये।" धर्मराजने कुत्तेको विमानमें बैठाना चाहा। इन्द्र बोले,—"महाराज! आप यह क्या करते हैं? कुत्ते भी कहीं स्वर्गके अधिकारी हुए हैं? इसे आप यहीं छोड़ दीजिये।" धर्मराजने कहा,—"हिम, काँटे और भूख प्यासका विचार न कर यह मेरे साथ यहाँ तक आया है, इसका त्याग मैं कैसे करूँ? मेरे भाई और स्त्रीने साथ छोड़ दिया, पर यह सङ्ग बना रहा, इसे छोड़कर मैं कैसे कृतघ्न बनूँ? यदि इसे मेरे साथ नहीं आने देते, तो कृपया लौट जाइये। मुझे आपका स्वर्ग नहीं चाहिये। स्वर्गकी अपेक्षा कृतज्ञताका मुझे विशेष महत्व है।" इन्द्र बोले,—"इतने आप धर्मात्मा हैं,

तो अपना सब पुण्य इसे दे डालिये, मैं इसे स्वर्ग ले जाता हूं। आप इसके पापोंको लेकर उनका फल भोगिये।" तुरन्त धर्मराजने कहा,—"अहा! इससे बढ़कर मेरे लिये अधिक सौभाग्यकी क्या बात हो सकती है? आप इसे स्वर्ग ले जाइये। मैं नरकमें ही आनन्दमें रहूंगा।" यह सुनते ही कुत्तेके रूपमें साथ आये हुए धर्मने अपना रूप प्रकट कर कहा,—"धन्य, महाराज! आप धन्य हैं। आपके समान अहङ्कारको भूला हुआ आज तक मैंने कोई मनुष्य नहीं देखा। एक तुच्छ कुत्तेके हेतु आप स्वर्गसुखको त्याग कर नरकवास भोगनेको प्रस्तुत हुए, इससे बढ़कर स्वार्थत्यागका उदाहरण कहाँ मिल सकता है।" धर्मराजको इन्द्र, धर्म और अन्य देवता विमानमें बैठाकर बड़े आदरके साथ स्वर्गलोकमें ले गये। वहाँ स्वर्गङ्गामें उन्होंने स्नान किया। उनको दिव्यशरीर प्राप्त हुआ। वहीं उनकी प्रिय बन्धु और प्यारी पत्नीसे भेंट हुई। सब अमर होकर वहीं रहने लगे।

धर्मराजने अपने धार्मिक जीवनके सिद्धान्तोंका सार यक्षके प्रश्नोंको उत्तर देते हुए इस प्रकार बतलाया है।

"संसारमें सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है?"

"आस पास प्रतिदिन सहस्रों लोग मर रहे हैं, यह देखकर लोग अपने आपको चिरञ्जीव समझकर अभिमान करते हैं, यही संसारमें सबसे बड़ा आश्चर्य है।

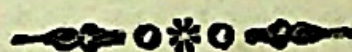
"धर्म-रहस्य जाननेका सबसे सहज उपाय कौनसा है?"

"वादवितण्डासे धर्मका रहस्य जान लेना असम्भव है। क्योंकि अनेक ऋषियोंके अनेक मत हैं, श्रुति-स्मृतियाँ अनेक हैं और परस्पर विरुद्ध वाक्योंकी भी उनमें कमी नहीं है। ऐसी अवस्थामें श्रेष्ठ पुरुष जिस मार्गसे गये हैं, उसीका अनुसरण करना चाहिये। यही धर्मज्ञानका सहज उपाय है।"

इन प्रश्नोत्तरोंसे ऐहलौकिक व्यवहार और पारमार्थिक तत्व-विचारोंका बहुत ही मार्मिक विवेचन हो गया है। सत्यरक्षा और स्वधर्मपालन ही आर्योंके प्राणस्वरूप गुण हैं। ये दोनों गुण धर्म-राजमें पूर्णरूपसे विद्यमान थे। इसीसे भगवान् श्रीकृष्ण उनके सहायक हुए और अनेक कष्ट सहकर भी अन्तमें उन्हींकी विजय हुई।

स्वार्थलम्पटता, अविवेक, कपट, धूर्तता, विश्वासघात, नास्तिकता आदि दुर्गुणोंसे कौरवोंकी कैसी दिन प्रतिदिन अधोगति हुई और परोपकार, स्वार्थत्याग, क्षमा, सरलता, उदारता, कृतज्ञता, ईश्वरभक्ति आदि सद्गुणोंसे पाण्डव कैसे उन्नत होते गये, इसकी शिक्षा कौरव पाण्डवोंके चरित्रसे मिलती है। क्षत्रियकुलमें उत्पन्न होकर भी पिताके सुखके लिये आजन्म कठोर ब्रह्मचर्य्यव्रतकी प्रतिज्ञा कर, उसको अन्त तक निबाहना, शत्रुमित्रको समान समझना, अपने तेजसे भगवान्‌को भी नवाना, पूर्ण शक्तिशाली होकर भी अभिमान न करना और निरन्तर भगवद्भक्ति तथा ज्ञानचर्चामें लगे रहना, इन गुणोंसे ही भीष्मपितामहका नाम इतिहासमें अमर हुआ है।

आदिकवि वाल्मीकि।





महर्षि वाल्मीकिके जीवन क्रममें एकाएक परिवर्तन कैसे हुआ और उन्हें कवित्वशक्ति कैसे प्राप्त हुई, इसकी कथा बड़ी ही विचित्र और मनोरञ्जक है। ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न होकर भी वे युवावस्था तक अक्षरशून्य (अपढ़) थे। विवाह हो गया था, गृहस्थी बढ़ चली थी, कुटुम्बपोषणका उनके पास कोई

१४ क

साधन नहीं था, ऐसी दशामें उन्होंने अपनी शारीरिक शक्तिका ही उपयोग करना निश्चित किया। वे शरीरसे अच्छे हट्टे कट्टे थे, इससे चोरी डकैती करनेका व्यवसाय उन्होंने अपने लिये चुना और बहुत दिनों तक लूट खसोट किया भी करते थे।

एक दिन अकस्मात् उनकी नारद मुनिसे भेंट हुई। चौर्यनियमों-के अनुसार उन्होंने मुनिसे भी तूंबो, वीणा आदि छीन लेना चाहा। यह देख मुनि बोले,—"भाई, ऐसा घृणित काम तुम क्यों करते हो? जिनके लिये दिन रात परिश्रम कर तुम यह पाप बटोरते हो, क्या वे तुम्हारे इस पापका बटवारा कर लेंगे?" वाल्मीकिने कहा,—"जब वे मेरे उपार्जित धनका उपभोग करते हैं, तो पापका बटवारा क्यों नहीं करेंगे? इस प्रकारकी शङ्का करना ही वृथा है!" मुनिने कहा,—"यदि तुम्हें विश्वास ही है, तो मैं कुछ नहीं कहता, परन्तु फिर भी तुम अपने घरवालोंसे एक वार पूछ आओ। यदि वे 'हां' कह दें, तो मुझे ये वस्तुएँ देनेमें कोई आपत्ति न होगी, यदि तुम यह सोचते हो कि, मैं तुम्हें चकमा देकर भाग जाऊँगा, तो इस वनके किसी वृक्षमें मुझे बाँध दो।" वाल्मीकिने ऐसा ही किया। नारदजीको पेड़से बाँध, घर जाकर उन्होंने पहिले पितासे पूछा,—"पिताजी! जिस धनका आप उपभोग करते हैं, क्या आप जानते हैं कि, वह मैं किस रीतिसे कमा लाता हूँ?" पिता बोले,—"उसके जाननेसे मुझे क्या प्रयोजन है? तू किसी तरह उपार्जन कर, मुझे अपने कामसे काम। तेरी अज्ञान अवस्थामें तुझे पालना मेरा कर्तव्य था, अब मैं वृद्ध हूँ, इस अवस्थामें मेरी सेवा करना तेरा कर्तव्य है।" वाल्मीकिने कहा,—पिताजी! यह धन मैं चोरी डकैती करके लाता हूँ। मेरे इस पापके क्या आप भागी न होंगे?" पिताने कहा,—"हरे हरे, ऐसे पापका मैं क्यों भागी होने लगा?"

"जो जस करै सो तस फल चाखा।"

इसी प्रकार वाल्मीकिने बारी बारीसे माता, स्त्री, पुत्र आदि सभीसे पूछा, पर किसीने पापका भाग लेना स्वीकार नहीं किया।

वाल्मीकि विरक्त हो, नारद मुनिके पास लौट आये और उन्हें बन्धनसे मुक्त कर उनके चरणोंमें गिर पड़े तथा इस लोभी और स्वार्थी संसारसे तरनेका उपाय पूछने लगे। नारदजीने उनमें वैराग्य उपजा है, यह देखकर उन्हें राममन्त्रका उपदेश दिया। वाल्मीकि वनमें जाकर तप करने लगे। वर्षों बीत गये, पर उनकी समाधि नहीं खुली। यहां तक कि, उनका शरीर चिउँटियोंने खा डाला, केवल हड्डियोंका खाखा रह गया, उस पर खासी बाँबी बन गयी। वाल्मीकिका तप पूरा हुआ, वे ब्रह्मानन्दमें मग्न हो गये। उन्हें आकाशवाणी सुनायी दी,—"हे सिद्ध! अब उठो, तुम्हारी तपश्चर्या पूरी हो गयी है।" वाल्मीकि सचेत हो, कहने लगे,—"नहीं—मैं सिद्ध नहीं, लुटेरा डकैत हूँ।" पुनः देववाणी हुई,—"महात्मन्! अब तुम डकैत नहीं रहे, किन्तु कठोर तपसे सिद्धपुरुष हो गये हो। ईश्वरके चिन्तनमें तुम एकाग्रभावसे तल्लीन हुए, इससे तुम्हारे सब पाप भस्म हो गये और तुम्हारा पुनर्जन्म हुआ है।" महर्षि बाँबीसे तेजःपुञ्ज हो निकले और दिव्यज्ञान प्राप्त होनेसे संसारको राममय देखने लगे। उनका पहिला नाम 'वाली' था, पर वल्मीक (बाँबी) से निकलनेके कारण वाल्मीकि कहे जाने लगे।

एक दिन शिष्योंसहित वाल्मीकि स्नान करने गङ्गातटपर जा रहे थे। मार्गमें क्रौंच पक्षियोंका जोड़ा क्रीड़ा कर रहा था। इतनेमें उस पर किसी बहेलियेने बाण चलाया, जिससे आहत हो उस जोड़ेमेंसे नर मर गया और मादी करुणस्वरसे विलाप करने लगी। महर्षिको करुणा आई। उनके मुखसे एकाएक उद्गार निकल पड़े।

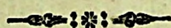
मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥

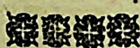
हे निषाद ! जब कि, तूने काममोहित क्रौञ्चके जोड़ेमेंसे एकको व्यर्थ मार डाला है, तब तू भी बहुत वर्षोंतक नहीं जियेगा। अर्थात् सबको मरना है, यह समझ कर भी लोग वृथा हिंसा करते हैं। इस श्लोकको कहकर वे सोचने लगे कि, इस प्रकारकी कविता तो मैंने कभी नहीं की, फिर आज ही कैसी स्फूर्ति हुई ? पुनः आकाश-वाणी हुई,—"हे सिद्ध ! तुम क्या सोच रहे हो, तुम्हें योगबलसे कवित्वशक्ति प्राप्त हुई है। इस अनुष्टुप छन्दमें ही तुम रामायणकी रचना कर जगत्का कल्याण करो।" महर्षि वाल्मीकिने ऐसा ही किया। उनकी रामकथा-मन्दाकिनी संसारको पावन कर रही है। उनकी ग्रन्थरचनासे वे अमर हुए और आदिकवि कहलाये।

संसारमें कोई किसीके पापोंका बँटवारा नहीं कर लेता, जिसका उसीको भोगना पड़ता है। इस बातको सोच, पापोंसे बचकर पुण्य सम्पादन करना चाहिये। क्षणमात्रकी सत्सङ्गतिसे एक चोर लुटेरा, आदिकवि और सिद्ध महर्षि बन गया, तो जो निरन्तर सत्सङ्गतिमें रहेंगे, उन्हें कितना लाभ होगा, इसका विचार उन्नति चाहनेवाले पुरुषोंको करना चाहिये।

——o——

दधीचि, नहुष और अगस्ति।





एक बार वृत्र नामक ब्राह्मण, तपके द्वारा अनेक सिद्धियों-को पाकर ऐसा उन्मत्त हो गया कि, सब देवताओंको स्थानभ्रष्ट कर स्वयं इन्द्र बन बैठा। देवोंका वैरी होनेसे लोग

उसे असुर कहने लगे। उसके अत्याचारसे स्वर्ग, मृत्यु, पातालके लोग बहुत ही पीड़ित हुए। सबने उसके साथ कई बार युद्ध किया, पर वह मारा न जा सका। तब सब लोग विष्णु-भगवान्‌के पास जाकर उसके मारनेका उपाय पूछने लगे। भगवान्‌ने कहा,—"दधीचि नामक एक बड़े पुण्यात्मा राजा हुए। उन्होंने बहुत दिनोंतक प्रजापालन कर अन्तमें पुत्रोंको राज्य सौंप, सहस्रों वर्षोंसे तप करना आरम्भ किया है। तप, विद्या और व्रतादिसे उनका शरीर अविनाशी हो गया है। उन्हें प्रसन्न कर, उनका शरीर आप लोग वरदानके समय माँग लें और उनकी अस्थियोंसे वज्र बना लें। उसी वज्रसे वृत्र मारा जायगा।" देवताओंने ऐसा ही किया। जब सबने दधीचिसे अपना सङ्कट कहकर उनके शरीरकी याचना की, तब वे हँसते हुए बोले,—"अपना शरीर किसे प्यारा नहीं होता? इसको छोड़ते समय जीवको कितने कष्ट होते हैं, सो आप लोग जानते ही हैं। फिर भी अनित्य होनेके कारण एक दिन इसको छोड़ना ही पड़ेगा, तो ऐसे समय क्यों न छोड़ूँ, जब कि आप लोगोंका उपकार होता हो। जिस शरीरसे कुछ परोपकार नहीं हुआ, वह दुर्गन्धिमय मांसके लोंदेके समान है। दूसरोंके दुःखोंको दूर करना ही सच्चा धर्म है। मैं सहर्ष देहविसर्जन करता हूं, आप अपना काम बनाइये।" यह कहकर दधीचिने समाधि लगाई और अपनी आत्माको परमात्मामें मिला दिया।

दधीचिकी अस्थियोंसे विश्वकर्मा द्वारा वज्र बना, जिससे वृत्रका नाश हुआ। परन्तु वृत्रके मारनेसे इन्द्रको ब्रह्महत्या लगी, जो विकरालरूपसे उनके पीछे पड़ गई। नरकपालोंके उसने कुण्डल बनाये थे, मरे मनुष्योंकी लोथोंसे अपना शरीर लपेटा था, मनुष्योंकी कौन कहे, हाथी ऊँटोंको शाक मूलीकी तरह

खाकर उनकी हड्डियाँ दाँतोंसे चबा चबाकर थूक रही थी। उसे देख इन्द्र डरकर भागे और एक सहस्र वर्षोंतक एक सरोवरमें कमलनालमें छिपे रहे।

इधर इन्द्रका आसन सूना देखकर चन्द्रवंशीय महा प्रतापी राजा नहुषको देवगुरु बृहस्पतिने इन्द्र बना दिया। इन्द्रासन पाकर वह इतना उन्मत्त हुआ कि, उसने इन्द्राणीको अपनी स्त्री बना लेना चाहा। वह पहिले बड़ा धार्मिक होनेपर भी अब किसी-से धर्मोपदेश नहीं सुनता, न धर्माचरण ही करता था। इन्द्राणीने बृहस्पतिसे इस विपत्तिसे छुड़ानेकी प्रार्थना की। बृहस्पतिने जान लिया कि, नहुषका पुण्य-बल घट गया है, इसीसे वह कुमतिके अधीन होगया है। उन्होंने इन्द्राणीसे कहा,—"तुम उससे कहना कि, ब्राह्मणोंको पालकीमें जोतकर तुम मेरे पास आओ, तो मैं तुम्हारी स्त्री बन जाऊँगी।" इन्द्राणीकी यह इच्छा सुन, नहुषने तुरन्त कई ऋषि मुनियोंको बुलाकर अपनी पालकीमें जोत लिया। कामुकको छोटा समय भी बड़ा जान पड़ता है। ऋषि मुनि धीरे धीरे पालकी लिये जा रहे थे। उनसे नहुषने कहा,—'सर्प सर्प' अर्थात् शीघ्रतासे चलो। इसपर अगस्त्य मुनिको बड़ा क्रोध आया। उन्होंने पालकी पटक कर शाप दिया कि,—"तू इतना उन्मत्त हो गया है, तो सर्प हो जा। जब तक तू ज्ञानोपदेश नहीं सुनेगा, तबतक तेरा इस योनिसे छुटकारा नहीं होगा।"

नहुष सर्प होगया और वनमें विचरने लगा! बहुत दिनोंके पश्चात् उसने भीमसेनको पकड़ा था। उसे छुड़ानेके लिये धर्मराज आये, तब उन्होंने उसे ज्ञानोपदेश सुनाया; जिससे उसकी सर्पयोनि छूटी और वह मुक्त होगया। अगस्त्य आदि मुनियोंने फिर अनेक यज्ञ कर, इन्द्रकी ब्रह्महत्या छुड़ाई और उन्हें फिरसे इन्द्रासनपर प्रतिष्ठित किया।

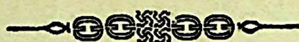
वृत्रासुर मरा सही, पर उसके असंख्य दैत्यगण बच गये थे, जो इन्द्रके अपने आसनपर प्रतिष्ठित होते ही बड़ा उपद्रव मचाने लगे। वे दिनभर समुद्रमें छिपे रहते और रात्रिमें आकर देवता और ब्राह्मणोंको कष्ट पहुंचाते थे। उनसे छुटकारा पानेके लिये देवताओंने पुनः विष्णु भगवान्‌की प्रार्थना की। तब भगवान्‌ने कहा,—"घटसे जन्मे हुए महा तेजस्वी अगस्त्य मुनि तुम्हारा दुःख दूर करेंगे।" सब देवताओंने अगस्त्यकी शरण ली। वे समुद्रतट-पर सन्ध्यावन्दन कर रहे थे। देवताओंकी प्रार्थना सुन, तुरन्त तीन आचमनोंमें उन्होंने समुद्रका पानी पी लिया। देवताओंको सूखे समुद्रमें दैत्य देख पड़े। उन्हें सबने मिलकर मार डाला, जिससे देवता और ऋषि मुनि निरापद होकर बड़े आनन्दित हुए।

तपोबलसे अगस्त्यको यह सिद्धि प्राप्त हुई थी, कि जो कुछ वे खायँगे, पेटपर हाथ फेरते ही पचा डालेंगे। पञ्चाप्सर तीर्थपर श्रीरामचन्द्रजीको धर्मभृत् ऋषिने वहांका वृत्तान्त निवेदन करते हुए कहा था कि, पहिले यहां इल्वल और वातापी नामके दो राक्षस-बन्धु असंख्य ब्राह्मणोंका संहार करते थे। वातापीको यह वरदान था कि, उसे टुकड़े टुकड़े कर खा जानेपर भी वह पुनः जीवित हो जाता था। ब्राह्मणोंको मारनेकी उन्होंने यह युक्ति निकाली थी कि, इल्वल ब्राह्मणोंको श्राद्धमें निमन्त्रण करता और वातापीके पकाकर उन्हें खिला देता था। पीछेसे भाईको पुकारते ही वह ब्राह्मणोंके पेट फाड़कर बाहर निकल आता था और ब्राह्मण मर जाते थे। एकबार अगस्त्यकी बारी आई। उनके पेटमें वातापीको जाते ही, पेटपर हाथ फेर, उन्होंने उसे पचा डाला और टेढ़ी भृकुटी कर, इल्वलको भस्म कर दिया। तबसे यह आश्रम निरा-पद हो गया है। रामचन्द्रने अगस्त्यके दर्शन किये थे और उनसे 'आदित्य हृदय' नामक सिद्ध मन्त्र ग्रहण किया था।

दधीचिसे बढ़कर परोपकार-परायणताका उदाहरण जगत्में दूसरा नहीं है। अपने एक तुच्छ शरीरका नाश होकर यदि बहुतोंका बहुत उपकार होता हो, तो उसके करनेमें आनाकानी नहीं करनी चाहिये। दधीचिके चरित्रसे इसकी शिक्षा मिलती है। उच्चतर पद प्राप्तकर अपने स्वरूपको, पदको, मर्यादाको और धर्मको भूल जानेसे कैसी मनुष्यकी अधोगति होती है, इसकी शिक्षा नहुषके चरित्रसे मिलती है। और भगवत्कृपासे यदि अपनेमें कुछ अलौकिक शक्ति आगयी हो, तो उसका उपयोग जन साधारणकी भलाईके लिये कैसा करना चाहिये, इसकी शिक्षा अगस्त्य मुनिके चरित्रसे मिलती है।

---o---

रन्तिदेव और मयूरध्वज।



कोई जाति कितनी ही उन्नत क्यों न हो जाय, यदि उसमें अतिथि-सत्कारकी प्रथा नहीं है, तो वह असभ्य ही समझी जायगी। कौन जाति कितनी उन्नत हुई है, उसके अतिथि-सत्कारके न्यूनाधिक परिमाणको ध्यानमें लाकर जान लिया जा सकता है। आर्योंने अतिथि-सत्कारको एक महत्वका धर्माङ्ग माना है और उसकी गणना पञ्च महायज्ञोंमें की है। हमारे देशमें अतिथि-सत्कारकी पराकाष्ठा हो गई थी, इसीसे भारत किसी समय सभ्यताके शिखरपर आरूढ़ था। इतिहासोंमें यहाँके अतिथिसत्कारके सैकड़ों ज्वलन्त दृष्टान्त हैं। उनमेंसे दो ही दृष्टान्तोंका उल्लेख किया जाता है।

प्राचीन समयमें रन्तिदेव नामक बड़ा पुण्यात्मा राजा हुआ, जो प्रजाको भोजन दिलाये विना स्वयं भोजन नहीं करता था। एकवार उसके राज्यमें अवर्षण होनेसे अन्न-जलका बड़ा अभाव हुआ और प्रजा मरने लगी। यहाँ तक कि राजा और उसके कुटुम्बियोंको अड़तालीस दिनों तक अन्न जलके विना उपोषण कर रहना पड़ा। उनचासवें दिन देशान्तरोंसे अन्न जल आया। वह प्रजामें बाँट दिया गया और राजाके भागका थोड़ा अन्न जल राजाके आगे रक्खा गया। कुटुम्बियों सहित राजा भोजन करने बैठा। उसने ग्रास उठाया ही था कि, एक ब्राह्मणने आकर राजासे अन्न मांगा। राजाने उसे अपने अन्नमेंसे थोड़ा दे दिया। ब्राह्मणके चले जानेपर एक शूद्रने वहाँ आकर भोजन माँगा। राजाने उसे भी दिया। आधेसे अधिक अन्न दे डालनेपर एक और अतिथि साथमें कुत्तेको लेकर आया। उसने कहा,—"महाराज! राजा पिता और प्रजा पुत्रके समान होती है। जिसकी प्रजा भूखों मरती हो, वह राजा यदि अपने कुटुम्बियों सहित पकवान उड़ावे, तो शास्त्रोंकी मर्य्यादासे वह पापभोजी और नरकका अधिकारी होता है। अतः पहिले मुझे और मेरे कुत्तेको खिलाकर तब आप भोजन कीजिये।" राजाने सब अन्न उसको दे दिया। उसके चले जानेपर एक चाण्डाल आया। वह बड़ा प्यासा था। उसने राजासे जल माँगा। राजाके पास थोड़ा पानी ही बच गया था। राजाने वह बड़े सन्तोषके साथ उस चाण्डालको दे दिया। सब अन्नजल दे डालनेपर राजाको बड़ा सन्तोष हुआ और वह श्रीभगवान्‌के गुणानुवाद गाने लगा।

रन्तिदेवकी यह सन्तोषवृत्ति देख, ब्राह्मण, चाण्डाल, आगन्तुक, कुत्ता आदि रूपोंमें जो देवता परीक्षा लेने आये थे, वे प्रकट हुए और राजासे वर माँगने कहने लगे। राजाने केवल 'भगवान्‌के

चरणोंमें प्रीति' माँगी। भगवत्कृपासे वह प्राप्त कर रन्तिदेव मुक्तिके अधिकारी हुए और उनकी प्रजा फिर कभी दुःखी नहीं हुई।

इसी प्रकार अतिथि-सत्कार धर्मको प्राणपणसे पालन करनेवाले राजा मयूरध्वज बड़े विख्यात हुए। उनकी परीक्षा लेने स्वयं भगवान् साधुवेष लेकर आये थे। अर्जुन कहते थे, पुत्रसे बढ़कर प्यारी वस्तु संसारमें कोई नहीं है। भगवान्ने कहा,—सच्चे भक्त, देवता और ब्राह्मणोंके लिये उसका भी बलिदान कर देते हैं। अर्जुनको विश्वास नहीं हुआ, तब मयूरध्वजके यहाँ भगवान् अपने साथ वेष परिवर्तन कराके अर्जुनको भी लेते गये।

दो महात्माओंको घर आये देख, मयूरध्वजने उनकी अर्घ्य-पाद्यसे पूजा की और भोजनकी सामग्री उनके सामने ला रक्खी। साधु बोले,—"राजन्! आप अतिथि-सत्कार-परायण हैं, तो हम चाहते हैं, सो भोजन हमें दीजिये।" राजाने तुरन्त कहा,—"महाराज! निःसङ्कोच होकर माँगिये। मैं अपने भरसक आपको तृप्त करनेमें कोई बात उठा न रक्खूँगा।" बहुत तिखारकर साधुने कहा,—"हम तुम्हारे इकलौते पुत्रका माँस खाना चाहते हैं। उसके तैयार करने की विधि यह है कि, तुम और रानी दोनों मिलकर पुत्रका सिर आरीसे काटो और अपने हाथसे टुकड़े टुकड़े कर पकाकर हमें परोसो। सावधानी यह रहे कि, दोनोंकी आंखोंसे आंसू न निकलें। यदि तुम्हारे हृदयमें कुछ भी विचार आवेगा, तो हम भोजन नहीं करेंगे।" राजाने इस याचनाको सहर्ष स्वीकार कर अपने स्त्री-पुत्रसे पूछा। पतिप्राणा स्त्री और पितृवचनपरिपालक पुत्र, दोनों राजाकी इच्छासे सहमत हो गये। रानीने कहा,—"महाराज! यद्यपि पुत्रसे बढ़कर माताके लिये कोई महत्वकी वस्तु नहीं है, तथापि पतिके वचनको सत्य करने और अतिथि सत्कारके लिये उसका उत्सर्ग करना वीर माताओंके लिये कठिन नहीं है।"

पुत्र बोला,—"महाराज! पशुके चमड़ेका उपयोग है, पर मनुष्यका कुछ नहीं होता। अतिथिको भगवद्रूपमें देखनेकी शास्त्राज्ञा है। यह काया यदि भगवान्‌के काम आवे, तो इससे उत्तम इसकी गति क्या हो सकती है?"

राजा रानीने पुत्रको अतिथियोंके आगे खड़ाकर विना आंसू बहाये आरीसे दो टूक कर डाला और उसे पकाकर सन्तोषसे भगवान्‌को परोस दिया। भगवान् वह मांस खाकर तृप्त हुए। उन्होंने अर्जुनकी ओर संकेत कर हँस दिया। अर्जुनके आश्चर्यकी सीमा न रही। वे गद्गद हो गये। भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा,—"ऐसे ही भक्त मेरे हृदयमें वास करते हैं। उनके सुख दुःखोंको मैं सहता हूं।" इसपर भी अर्जुनको विश्वास नहीं हुआ।

अर्जुनने अश्वमेधके समय जान बूझ कर झगड़ा कर मयूरध्वजसे लड़ाई की। अर्जुन हार गये। भगवान्‌ने अपना शरीर खोल कर उन्हें दिखाया। जितने बाण अर्जुनने चलाये थे, उतने व्रण भगवान्‌के शरीरमें देख पड़े। तब तो अर्जुन बहुत ही लज्जित हुए।

भोजन कर भगवान्‌ने पान मांगा। ज्यों ही राजारानी पान लेकर भगवान्‌के सम्मुख आये, त्योंही भगवानने कहा,—"अब तुम अपुत्र हुए हो। तुम्हारा छुआ कोई पदार्थ हम ग्रहण नहीं कर सकते। पुत्रशोकसे नहीं, किन्तु अतिथि विमुख हो रहे हैं यह जान, दोनों दीनवदन हो कहने लगे,—"महाराज! पुत्र तो भगवानको अर्पण हो चुका है, अब पुत्र कहांसे आवेगा?" भगवान्‌ने कहा,—"तुम उसे पुकारो तो सही।" दोनों पुत्रका नाम लेकर पुकारने लगे। तुरन्त पुत्र दौड़ आकर मातासे लिपट गया, मानो कहींसे खेलता हुआ आया हो। सब बड़े प्रसन्न हुए। भगवान्‌ने भी अपना स्वरूप प्रकट कर, मयूरध्वजको दर्शन दिया, जिससे राजा रानी कृतार्थ हुए और उनकी कीर्ति दिगन्तमें फैल गई।

अतिथि सत्कारसे भगवान् प्रसन्न होते हैं। अतिथिसत्कार परायण मनुष्योंके सुख दुःख स्वयं भगवान् सहन करते हैं और उनको अखण्ड सम्पत्ति, सौभाग्य, भक्ति और सन्तानादि प्रदान कर सुखी बनाते हैं, यही महाराज रन्तिदेव और मयूरध्वजके चरित्रोंसे शिक्षा मिलती है।

———o———

बलि और वामन।

——:o:——

बलिसे बढ़कर बलवान् इस संसारमें कोई नहीं हुआ। ये भक्तवर प्रह्लादके पौत्र थे। ब्राह्मण और देवोंके प्रति श्रद्धा होते हुए भी इनमें पुरुषार्थप्रवृत्ति असाधारण थी। पृथिवीके सब राजाओंको जीतकर ये सार्वभौम सम्राट् तो बने ही थे, किन्तु ब्राह्मणोंके तपोबल द्वारा प्रचण्ड तेज पाकर क्रमशः स्वर्गके भी अधिपति बन गये। इन्होंने जब स्वर्गपर चढ़ाई की, तो इन्द्र इनके तेजको नहीं सह सका और अपना आसन छोड़ भाग गया। बलि इन्द्रासनपर प्रतिष्ठित हो स्वर्गशासन करने लगे। समस्त देवता पदच्युत हुए और उनके स्थानोंमें दानव कार्य करने लगे। सब देवता सचिन्त हो, देवगुरु बृहस्पतिके पास गये और अपने अधिकार पुनः हस्तगत हों, इसका उपाय पूछने लगे। बृहस्पतिने कहा,—"आप चिन्ता न करें, बलिका पुण्य क्षीण होनेपर वह ब्राह्मणके बचनमें बद्ध हो, उसे पूरा न करनेसे आप ही च्युत हो जायगा। तब तक आप जहां कहीं छिपे रहें।" देवताओंने बृहस्पतिकी आज्ञा मान ली।

चार युगोंमें भगवान् दस अवतार लेते हैं। देवासुर-संग्राम निरन्तर चलता ही रहता है, इसीसे सृष्टिका अस्तित्व है। जब

आसुरी शक्ति बढ़ जाती है, तब उसे दबानेके लिये भगवान्‌को विभिन्न रूपोंमें अवतीर्ण होना पड़ता है। वेदोंको प्रलयकालीन जलमें जब दैत्योंने डुबा दिया था, तब मत्स्य (मछली) रूपमें अवतीर्ण होकर भगवान्‌ने वेदोंका उद्धार किया। देवासुर-संग्राममें पृथ्वी चकनाचूर हो रही थी, तब कच्छप (कछुए) के रूपको धर कर अपनी पीठपर भगवान्‌ने पृथ्वीको धारण कर उसे बचाया था। हिरण्यकशिपुके भाई हिरण्याक्षने एक बार पृथ्वीको पातालके जलमें फेंक दिया, तब वराहरूपमें भगवान्‌ने अपनी दाढ़पर उसे उठाकर सम्हाला। नृसिंह, परशुराम, राम, कृष्णके चरित्र पहिले लिखे जा चुके हैं। बौद्धके सम्बन्धमें आगे लिखा जायगा और कल्कि अवतार कलिके अन्तमें होनेवाला है। देवताओंका निरादर कर आसुरी भावको बढ़ानेवाले बलिके लिये वामन अवतार हुआ। उसकी कथा इस प्रकार है:—

स्वर्ग जय करनेके पश्चात् बलिने 'सर्वजित्' नामक यज्ञ किया। जिसमें जो कुछ जो मांगता, उसे वही वे देते थे। इस अवसरको अच्छा जान, कश्यपके यहाँ विन्ध्यावलिके उदरसे भगवान्‌ने वामन-रूपमें जन्म ग्रहण कर, बटु रूप धारण किया और वे बलिके पास जाकर तीन पाद भूमि मांगने लगे। बलिने स्वर्ण, रथ, अश्व, गज, ग्राम, देश आदि मांगनेको कहा, पर वामन भगवान्‌ने और कुछ नहीं मांगा। भगवान्‌ने अपना रूप भी आठ वर्षोंके ब्रह्मचारी ब्राह्मण-बालक जैसा बनाया था। हाथमें कुश-कमण्डलु-दण्ड आदि ब्रह्मचर्योचित वस्तुएँ उन्हें बहुत ही फबती थीं। उनके तेजःपुञ्ज रूप और छोटी सी मांगको देख सुन बलिको बड़ा आश्चर्य हुआ। ब्राह्मण बटुकी इच्छाके अनुसार बलि उसके हाथपर झारीके जलसे तीन पाद भूमिका सङ्कल्प करने लगे। दैत्यगुरु शुक्राचार्यने भगवान्‌को पहिचान लिया था, परन्तु प्रत्यक्ष बलिको कुछ सङ्केत न

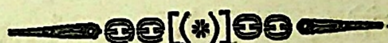
कर सके । वे मक्खीका रूप धर झारीकी टोंटीमें जा बैठे, जिससे पानी ही रुक गया । भगवान्‌ने यह बात ताड़ ली । झारीसे पानी नहीं आता देख, उन्होंने कुशसे टोंटीका बन्द मुँह खोल दिया । सङ्कल्प हो गया, पर कुशके आघातसे शुक्राचार्यकी एक आँख फूट गई ।

संकल्प होते ही भगवान्‌ने विराट्‌रूप धारण कर एक पैर पातालमें और दूसरा स्वर्गमें रक्खा । भगवान् बलिसे पूछने लगे,—"तीसरा पैर कहाँ रक्खूँ ?" बलि हक्का बक्का हो गये । उनके निरुत्तर होते ही भगवान्‌ने उन्हें वरुणपाशसे बाँध कर कहा,—"कहिये, दानी नृपवर ! अब तो आप बचनबद्ध होकर अपना वचन पूरा नहीं कर सके ?" बलिने विनयपूर्वक कहा,—"नाथ ! आप सर्वव्यापक, उदार और विशुद्ध होकर ऐसा छल करेंगे, यह मैं नहीं जानता था । अस्तु, आप अपना तीसरा पद मेरे इस विनत मस्तक-पर रखिये ।" भगवान्‌ने तीसरा पद बलिके सिरपर धरा और वे उन्हें रसातलमें ले गये, जो देवोंको भी दुर्लभ है । बलिने प्रार्थना की,—"प्रभो ! मेरे पुण्यका वास्तवमें उदय हुआ है, जो आपका चरण कमल मुझ जैसे दैत्यके सिरपर पड़ा । मैं निरपराध हूं और आप छली हैं, यह बात अब त्रिभुवनमें विख्यात हो गई है । अतः मुझे इस रसातलका राजा बनाकर ही आपका छुटकारा नहीं हो सकता, यहाँ आपको मेरी निरन्तर रक्षा करनी होगी ।" भगवान् तबसे बलिके द्वारपाल होकर रहे ।

ब्रह्माने सृष्टिको रचकर देवोंको स्वर्गका, मनुष्योंको भूलोकका और दानवोंको पातालका अधिकार दे दिया था । बलि मनुष्यों और देवोंके जन्मसिद्ध अधिकारोंको पैरोंतले कुचल कर, स्वयं त्रिभुवनके अधिपति हो बैठे, इसीसे भगवान्‌ने उन्हें रसातलमें पहुंचा दिया । किसीका यह गर्व करना कि,—"हम जो कुछ जो

मांगे, उसे वही दे सकते हैं," नितान्त भूल है। मनुष्य चाहे सर्वस्व ही क्यों न दे डाले, उसे मनमें यही समझना चाहिये कि; मैं अपनी क्षुद्र शक्तिके अनुसार ही दे रहा हूँ। लोगोंके जन्मसिद्ध अधिकारोंको दबा लेनेका उद्योग और दानशूर होनेका वृथा अभिमान करनेसे जीवका पतन होता है, यह शिक्षा बलिके उदाहरणसे मिलती है। बलिका पुण्यबल उत्तम होनेसे भगवान् स्वयं अवतीर्ण होकर उनके द्वारपाल बने, यह बात और है; परन्तु उक्त दो दुर्गुणोंसे वे इन्द्र पदपर स्थिर नहीं हो सके।

शिबि अथवा राजा उशीनर।



सनातनधर्मके ग्रन्थोंमें शरणागतकी रक्षा करनेकी बड़ी महिमा वर्णित हुई है। शरण आये हुए जीवको जो सहारा देता है, वह भगवान्का कृपाभाजन होता है। उदाहरण स्वरूप राजा शिबि हैं। इन्होंने शरणागतकी रक्षा करनेके धर्मकी पराकाष्ठा कर दिखाई थी।

शिबिने प्रजापालन तो उत्तम रीतिसे किया ही, किन्तु परोपकार, दान, तप, यज्ञ आदि द्वारा विपुल धर्मार्जन करनेमें भी वे किसी प्रतापी राजासे पिछड़े नहीं थे। इनकी परीक्षा लेनेका एक बार देवराज इन्द्रने निश्चय किया। उनके विचारसे सहमत हो धर्मने एक कबूतरका रूप लिया और इन्द्रने बाजका। शिबि राजा यज्ञ कर रहे थे। ऋषिगण वेदमन्त्र पढ़ते और राजा आहुति देते थे। इतनेमें—"राजन्! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो" कहता हुआ कबूतर

शिबिकी गोदमें आ बैठा, जिसके पीछे बाज झपटा आ रहा था। राजाको कबूतरकी दया आई। उन्होंने बाजको झिड़क दिया। बाजने तुरन्त राजासे कहा,—"महाराज! आप बड़े विचित्र धर्मात्मा हैं। लोगोंके भक्ष्यको छीन लेना यह कहाँका धर्म है!" राजाने उत्तर दिया,—"यह शरणागतरक्षाका धर्म है। प्राण-भयसे व्याकुल हो, यह कबूतर मेरी शरणमें आया है। इसकी रक्षा करना मेरा कर्तव्य ही है।" बाज बोला,—"महाराज! जीव-मात्र भोजनसे ही जीते हैं। जिसका जो आहार है, भगवान् उसे पहुँचाता है। कबूतर मेरा आहार है। एकबार प्राण ले लेना धर्म हो सकता है, परन्तु किसीका आहार हरण करना महा अधर्म है। मुझे यदि आहार नहीं मिला, तो भूखसे व्याकुल होनेके कारण मैं मर जाऊँगा। मेरे मरनेसे मेरे स्त्री-पुत्र भी मर जायँगे; क्योंकि उन्हें भी मेरे अतिरिक्त कोई आहार पहुँचाने वाला नहीं है। एक जीवकी रक्षा करते हुए अनेक जीवोंकी हत्याका पाप क्या आपके सिर नहीं चढ़ेगा? अनेक जीवोंकी प्राणरक्षाके निमित्त एक का मारा जाना अधर्म नहीं कहा जाता। आप मेरे आहारको छोड़ दें, मैं उसे खा कर तृप्त हो जाऊँगा।" राजाने कहा,—"यदि तुम भूखे हो, तो जो मागोगे वह मैं तुम्हें खिला दूँगा, परन्तु शरणा-गतका त्याग कर नरकका अधिकारी नहीं बनूँगा।" बाज बोला,—"यही तुम्हारी इच्छा है, तो इस कबूतरके बराबर अपने शरीरका मांस मुझे खिला दो।"

राजाने अपने शरीरका माँस देना स्वीकार कर लिया। तराजूके एक पलड़ेपर कबूतर रक्खा गया और दूसरे पलड़ेपर शिबि अपने शरीरसे माँस काट काट कर रखने लगे। पहिले जाँघका मांस काटा, फिर भुजाओंका, फिर पीठका, फिर पेटका, यहाँ तक कि, उन्होंने अपने सब अङ्ग काट कर तराजूपर धर दिये, तो भी

कबूतरके वज़नसे वे कम ही रहे। रक्त मांस शून्य हो, वे अचेतसे हो रहे थे, तो भी अपने वचनसे नहीं डिगे। बराबर शरीरमें जहाँ हाथ बढ़ता, छुरी चलाते और मांस तुलापर धरते जाते थे। अन्तमें गलेपर ज्योंही छुरी चलानेको उद्यत हुए, त्योंही इन्द्रने बाजका रूप त्याग, अपने मूलरूपमें प्रकट हो, शिबिका हाथ पकड़ लिया। धर्म भी कबूतरके रूपको छोड़, दिव्यरूपमें प्रकट हुए। दोनोंने शिबिका जयजयकार किया। स्वर्गसे देवताओंने पुष्पवृष्टि की और नभमें शिबिकी यशोदुन्दुभी बजने लगी। धर्मने प्रेम-पूर्वक राजाके शरीरपर हाथ फेरा, जिससे वे पहिलेसे भी अधिक सुन्दर और बलवान् हुए। इन्द्रने कहा,—"महाराज! हम इन्द्र होकर वृथा अभिमान करते हैं और सभीसे सदा भयभीत रहते हैं, परन्तु आप ही वास्तवमें देवताओंके सच्चे अधिपति होनेके अधिकारी हैं। आपमें जो शरणागतरक्षार्थ आत्मत्यागका असाधारण गुण है, उससे स्वयं आप पुण्य-स्वरूप हो रहे हैं। अब आपको यज्ञ दानादिसे कोई प्रयोजन नहीं है। आप दीर्घायु, सर्वशक्तिमान् और वैभववान् होकर देहान्तके पश्चात् भगवत्पदको प्राप्त करेंगे। हम आपको यही आशीर्वाद देते हैं।" देवताओंके बचनोंको सिर चढ़ाकर शिबि पुनः धर्माचरणमें रत हो गये।

शरणागतकी रक्षासे मिलनेवाला पुण्य अनेक यज्ञादि पुण्य-कर्मोंसे भी श्रेष्ठ है। जो शरणागतकी रक्षा करता है, उससे इन्द्रादि देवता भी अपनेको तुच्छ समझने लगते हैं। भगवत्प्राप्तिके लिये यह सहज उपाय है। शिबिके चरित्रसे यही शिक्षा मिलती है।

महर्षि मार्कण्डेय।

——०:*:०——

लोमश महर्षिके मृकण्डु ऋषि हुए। उन्हींके पुत्र मार्कण्डेय हैं। मृकण्डु वृद्धावस्थातक अपुत्र होनेके कारण उन्होंने शिवकी कठोर तपस्या की। शिवजीके प्रसन्न होनेपर मृकण्डुने पुत्रकी याचना की। शिवने कहा,—"यदि मूर्ख तथा अभक्त पुत्र चाहते हो, तो वह सौ वर्ष जियेगा और धर्मज्ञ तथा भक्त पुत्रकी इच्छा हो, तो वह अल्पायु अर्थात् सोलह वर्ष जियेगा। जैसी तुम्हारी इच्छा हो, प्रकट करो।" मृकण्डुने भक्त और धर्मात्मा पुत्र मांग लिया। गोस्वामी तुलसीदासजीने ठीक ही कहा है,—

पुत्रवती युवती जग सोई, रघुपतिभक्त जासु सुत होई।
न तरु बाँझ भलि बादि बियानी, रामविमुख सुततें जग हानी॥

जन्मसे ही मार्कण्डेय भगवद्भक्त हुए। यज्ञोपवीत संस्कार होनेपर तो वे वेदाध्ययन और शिवकी उपासनामें ऐसे लवलीन हुए कि, उन्हें जगत् शिवमय देख पड़ने लगा। सोलह वर्ष समाप्त हुए और उनकी मृत्युका दिन उदित हुआ। नर्मदातटपर प्रातः कालके समय प्रस्तरनिर्मित एक वृहत् शिवलिंगकी भक्तिभावसे वे पूजा कर रहे थे। उन्हें ज्ञात नहीं था कि, आज ही मेरा मृत्यु-दिन है। अकस्मात् उनके पास महिषपर आरूढ़ हो, अपने दूतोंके साथ यमराज आ उपस्थित हुए और उन्होंने मार्कण्डेयके गलेमें कालफाँस डाल दिया। जिससे मार्कण्डेयका गला घुटने लगा। इस आकस्मिक सङ्कट और यमराज तथा उनके दूतोंके भयानक रूपोंको देख, भयभीत हो, वे शिवलिङ्गसे लिपट गये और मुक्त-कण्ठसे करुणार्द्र हो, शिवजीकी स्तुति करने लगे—

त्रिपुरदग्धपुरत्रयं त्रिदशालयैरभिवन्दितं।
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किङ्करिष्यति वै यमः॥
चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर पाहि मां।
चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर रक्ष मां॥

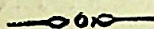
इस प्रकारकी सकरुण स्तुतिसे शिवजीने प्रसन्न हो, तुरन्त लिङ्गसे प्रकट होकर मार्कण्डेयकी रक्षा की और यमराजको लौट जानेको कहा। स्वयं मृत्युञ्जयकी आज्ञाको कौन टाल सकता था? यमराज चले गये और शिवजी मार्कण्डेयको अमर होनेका वरदान दे, अन्तर्हित हो गये।

मार्कण्डेय पुनः तपश्चर्यामें लीन हुए। छः मन्वन्तरोंतक तप करनेके उपरान्त उन्हें नर नारायणके दर्शन हुए। उन्होंने अपनी मायाका स्वरूप दिखाकर मार्कण्डेयका दिव्य ज्ञान दिया और शंकरने अनेकवार दर्शन देकर उन्हें पुराणाचार्य्य बनाया। मार्कण्डेयने अनेक पुराणोंकी रचना की। कल्पान्त होने पर भी मार्कण्डेय बने रहते हैं और पुनः सृष्टि रचना होनेपर धर्मका प्रचार करते हैं। कल्पान्तमें वटके पत्रपर अगाध जलमें स्थित बालमुकुन्दके उन्हें दर्शन होते हैं और वेदोंका ज्ञान उन्हें नहीं भूलता।

प्रौढ़ अवस्थाकी अपेक्षा बाल्यावस्थामें भगवान् कितने शीघ्र प्रसन्न होते हैं, इसके उदाहरण स्वरूप ध्रुव प्रह्लादके चरित्र हम लिख चुके हैं। ऐसे बालभक्तोंमें मार्कण्डेय ऋषि अग्रगण्य हैं। भक्तिबलसे भगवान्को वश कर वे अल्पायुसे दीर्घायु ही नहीं, किन्तु अमर हुए हैं। भगवद्भक्तिसे मनुष्य अमर हो सकता है, यह शिक्षा मार्कण्डेयके चरित्रसे मिलती है। जो बालक मार्कण्डेयकी कथा पढ़ते सुनते हैं, वे दीर्घायु होते हैं।

—o—

शुक योगीन्द्र ।



केवल भारतवर्षमें ही नहीं, किन्तु समस्त जगत्में ज्ञानका प्रकाश करनेवाले शुक जैसे महात्मा आज तक न कोई उत्पन्न हुए, न होनेकी सम्भावना है । शुकदेवका चरित्र अनेक दृष्टिसे मनन करने योग्य है ।

महर्षि पराशरके पुत्र व्यास और व्यासके पुत्र शुकदेव थे । सौ वर्षोंकी तपस्यासे शिवजीको प्रसन्न कर पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाशकी सम्पूर्ण शक्तियोंसे युक्त पुत्र व्यासदेवने मांग लिया था । उन्हें वह पुत्र अरणि-मन्थनसे प्राप्त हुआ । अरणि-मन्थन करते समय घृताची नामकी अप्सरापर वे मुग्ध हुए थे और वह शुकी होकर उड़ गई थी, इससे नवजात पुत्रका नाम उन्होंने 'शुक' रक्खा । शुकदेव जन्मसे ही दैवीशक्तियोंसे सम्पन्न होनेके कारण उनके नामकरण, अन्नप्राशन, चौल, उपनयन आदि संस्कारोंके समय देव, ऋषि, पितृ, गन्धर्व, यक्ष, अप्सराओंके साथ स्वयं भगवान् शिव, विष्णु और ब्रह्माजी आये थे ।

थोड़े ही दिनोंमें यथासाङ्ग वेदाध्ययन कर लेनेपर शुकदेवकी अध्यात्म विषयको जान लेनेकी इच्छा हुई । व्यासदेवने उन्हें राजा जनकके पास अध्ययनके लिये भेजा । जनकने अनेक उपदेश और व्यवहारों द्वारा उन्हें अध्यात्म विषयका ज्ञान कराया । जनककी शिक्षा-प्रणाली बड़ी ही अद्भुत थी । कई उसके उदाहरण पुराणोंमें हैं । उनमेंसे एक इस प्रकार है,—

एक बार शुकने पूछा,—"राजन् ! आप राजकार्य्य करते हुए अध्यात्म-चिन्तन किस प्रकार करते हैं ?" जनकने उत्तर नहीं दिया ।

कुछ दिन बीत जानेपर तेलसे भरपूर भरी एक कटोरी शुकके हाथमें देकर जनकने कहा,—"आप इसे लेकर मेरी मिथिला नगरीकी शोभा देख आवें, पर तेलकी एक बूँद भी न गिरे।" शुकने समस्त नगरी देखी। लौट आनेपर जनक 'अमुक देखा? अमुक देखा?' आदि पूछते गये और शुक 'हाँ हाँ' कहते गये। जनकने पूछा,—"तेल तो नहीं गिरा?" शुकने कहा,—"एक बूँद भी नहीं गिरा।" जनकने हंसकर कहा,—"गुरुपुत्र! राज्यकार्य्य करते हुए मैं इसी तरह अध्यात्मलक्ष्यसे च्युत नहीं होता।" शुकदेवकी दृष्टि खुल गई।

जनकसे उपदेश ग्रहणकर शुकने हिमालयपर जाकर तप किया। वहीं नारदमुनिसे ज्ञान प्राप्तकर वे पिताके पास आये और सुमन्त, वैशम्पायन, जैमिनी, पैल आदि व्यास-शिष्योंके साथ व्यास-रचित पुराण, ब्रह्मसूत्र तथा सांख्य, योग आदिका अध्ययन करने लगे। उनकी प्रतिभाको देख, बड़े बड़े ज्ञानी महर्षि चकित हुए और अवस्थामें छोटे होनेपर भी वे सबके आदरभाजन बन गये। उन्होंने सदा बालरूपमें बने रहनेका वरदान प्राप्त कर लिया था। वे सदा दिगम्बर वेषमें रहते, योग द्वारा आकाशमार्गसे चलते फिरते और जगत्को ज्ञानदान करनेमें समय बिताते थे। इसी अवस्थामें परीक्षितको उन्होंने भागवत सुनाया था। उन्हें क्षुधा-तृषा, शीत, उष्णकी बाधा नहीं होती थी। उन्हें देख देख कर स्वर्गीय देवता भी आश्चर्यचकित हो जाते थे। जहाँसे होकर वे निकलते, वहीं सृष्टिसुन्दरी पूर्णरूपसे विकसित होती और वेदके सार-स्वरूप ॐकारका मङ्गलनाद चारों ओरसे निनादित होता था।

सुमन्त, जैमिनी, वैशम्पायन और पैल ये चारों जगत्में वैदिक-ज्ञानको प्रकाशित करनेके लिये व्यासदेवकी आज्ञा लेकर चल दिये और शुकदेव पुनः हिमालयके एक दिव्य शिखरपर बैठकर तप करने लगे। उनके तपमें बाधा करनेके लिये इन्द्रने

रम्भा नामकी अप्सराको भेजा। उसने हाव-भाव-कटाक्ष-सङ्गीत आदि द्वारा उनको विषयोंकी ओर बहुत खींचना चाहा, पर शुकाचार्य्य लवमात्र विचलित नहीं हुए। उलटे उसीको ज्ञानोपदेश सिखाने लगे। इससे खिन्न हो, वह लौट गई। कामदेवने अपने साथी वसन्त, पिक आदिके साथ उनके निकट जाकर पुष्प-धनुसे उनपर अनेक बाण चलाये, पर वे भी निष्फल हो गये। शुकदेव तप समाप्त कर पिताके पास लौट आये। पिताको उनका तपस्तेज देखकर बहुत प्रसन्नता हुई।

शुकदेव योगीन्द्र कहाने लगे, तौ भी उन्हें अभिमान नहीं हुआ। युधिष्ठिरके यज्ञमें सबसे पीछे वे पहुँचे। ब्राह्मण-भोजन हो चुका था, इससे यज्ञका प्रसाद वे नहीं पा सके। उन्होंने ब्राह्मणोंकी जो जूठन पड़ी थी, उसीसे अन्न ग्रहण किया। आकाशमें घण्टा बजने लगा। सब ऋषि मुनि चकित होकर इसका कारण जाननेके लिये इधर उधर दौड़े। देखते क्या हैं कि, शुकदेव जूठन आनन्दसे खा रहे हैं। सबने उनकी अर्घ्यपाद्यसे पूजा की और उनसे ज्ञानोपदेश सुने।

कुछ दिन और जगत्में कार्य कर भगवद्ध्यानपरायण योगिराज तप द्वारा पञ्चतत्त्वोंमें मिलनेके विचारसे हिमालयपर चल दिये। शिष्योंके चले जानेसे अकेले व्यासदेव घबड़ा रहे थे। अब शुकदेवके सदाके लिये बिदा होनेके कारण व्यासदेव पुत्रमोहसे अधिक व्याकुल हो उठे। ज्ञानदृष्टिसे उन्होंने जान लिया कि, शुक अमुक मार्गसे गये हैं, उसी मार्गसे व्यास 'हा शुक! हा शुक!' कहते दौड़ने लगे। मार्गमें एक सरोवरमें नग्न होकर देवाङ्गनायें स्नान कर रही थीं। शुक वहाँसे गये, पर उन्होंने वस्त्र नहीं सम्हाले; किन्तु व्यासको देखते ही झटसे वस्त्र पहिन लिये। व्यासने इसका कारण उनसे पूछा। देवाङ्गनाओंने कहा,—"शुक और

आपकी दृष्टिमें ही हमें आकाशपातालकासा अन्तर देख पड़ा।”
यह उत्तर सुन व्यासदेव बड़े लज्जित हुए और शुककी खोजमें
आगे बढ़ने लगे।

शुकदेव ब्रह्मस्वरूप हो गये। स्थावर-जंगममें व्याप्त होनेके कारण व्यासदेव जब ‘शुकदेव !’ कहकर पुकारते, तब दिशाएँ और पञ्चतत्त्व शुककी ओरसे व्यासको प्रत्युत्तर देते थे। इससे तो व्यासके आश्चर्यकी सीमा न रही। चलते चलते वे थक गये और हिमालयके अत्युच्च शिखरकी एक शिलापर विषण्ण होकर बैठ गये। उनकी यह दशा देख, वहां नारद मुनि आये। उनको देखते ही व्यासने उन्हें अभिवादन किया। नारद उन्हें समझाने लगे।

“भगवन्! ब्रह्मसूत्र जैसे वेदान्तशास्त्रको रचकर स्वयं आप पुत्रमोहसे व्याकुल हो रहे हैं, यह बड़े ही आश्चर्य्यकी बात है। कौन किसका पुत्र और कौन किसका पिता है, यह क्या आपको समझाना होगा? आप त्रिकालदर्शी हैं, शुकदेवने ब्रह्मसाक्षात्कार किया है। आप प्रत्यक्ष सुन रहे हैं कि, आकाश आदि पञ्चतत्त्वोंकी देवताएँ और दिशाएँ शुककी ओरसे आपको प्रत्युत्तर दे रही हैं; फिर भी आप अज्ञानके समान शोक करते हैं?”

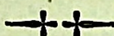
व्यासने कहा,—“फिर भी मुझे शुकको देखनेकी इच्छा होती है।” नारदने कहा,—“अब उसी शरीरमें शुकका देखना सम्भव नहीं है। हाँ, जगत्में व्याप्त होनेके कारण उनकी छायाओंको आप देख सकते हैं।” व्यासने छायाओंको देखना स्वीकार कर लिया। नारदने शुकदेवका ध्यान किया। चारों ओर व्यासदेवको शुकदेव ही देख पड़ने लगे। उन्हें देखकर व्यासदेवका मोह दूर हुआ और नारदके उपदेशानुसार शान्तिदायिनी भागीरथीके तटपर वे काशीमें आकर रहने लगे। उनके शिष्योंने जगत्में वैदिक ज्ञानका विकाश किया। यहाँतक कि, आजतक संसारमें जो कुछ ज्ञान है,

वह व्यासका जूठन माना जाता है । 'व्यासोच्छिष्टं जगत् सर्व' इस लोकोक्तिके अनुसार व्यासने नहीं जाना, ऐसा कोई ज्ञान अभीतक आविर्भूत नहीं हुआ है ।

शुकदेव बालब्रह्मचारी, तपस्वी, वैराग्यवान्, परम ज्ञानी और लोकोत्तर योगिराज थे । शुकदेवका चरित्र अपनी आँखोंके आगे रखकर जो बालक अपना जीवन पुण्यमय बनाना चाहेंगे, वे शुकदेवके समान जगत्का कल्याण करते हुए, अन्तमें ब्रह्मसाक्षात्कार-लाभ कर सकेंगे । आर्यजातिका यही अन्तिम लक्ष्य है । इसे निरन्तर हृदयङ्गम करते रहना चाहिये ।

—:o*o:—

बुद्धदेव ।



निन्दसि यज्ञविधेरहह ! श्रुतिजातम्,
सदयहृदयदर्शितपशुघातम् ।
केशवधृतबुद्धशरीर,
जय जगदीश हरे ॥



भारतका ऐतिहासिक युग प्रायः बुद्धदेवके जन्मसे ही आरम्भ होता है । श्रीभगवान्के दशावतारोंमें बुद्धदेवका नवम अवतार है ।

सूर्य्यवंशके महाराज इक्ष्वाकु आदि पुरुष प्रसिद्ध हैं । उन्हींके कुलमें सुजात नामक राजा हुए । किसी विशेष कारणसे वे अयोध्यासे (जो सूर्य्यवंशकी प्रधान राजधानी थी) निकाल दिये

गये थे। विहार प्रान्तमें कपिलमुनिकी कृपासे उन्होंने नवीन राज्य बसाया और राजधानीका नाम 'कपिलवस्तु' रक्खा। सुजातके वंशधर 'शाक्य' कहलाने लगे। इनके आदिपुरुष सुजातके पुत्र 'ओपुर' माने जाते हैं। ओपुरके वंशजोंमें सिंहहनुके पुत्र शुद्धोदन बड़े ही धार्मिक हुए। इनका विवाह सूर्य्यवंशीय काशि-राज 'कोल' की कन्या मायादेवीके साथ हुआ था। शुद्धोदनकी दूसरी स्त्रीका नाम गौतमी था।

विवाह किये बारह वर्ष हो गये। शुद्धोदनका राज्यविस्तार भी बहुत हुआ। सुख सम्पत्तिकी कमी नहीं थी। परन्तु पुत्र न होनेसे वे बड़े ही दुःखित रहा करते थे। अच्छे पुरोहित और आचार्योंके परामर्शसे शुद्धोदन और मायादेवीने निराहार रह कर तप किया, जिससे उन्हें शीघ्र ही सर्वाङ्गसुन्दर, तेजस्वी पुत्र हुआ। पुत्रलाभसे दोनोंके मनोरथ सिद्ध हुए, इस कारण पुत्रका नाम 'सिद्धार्थ' रक्खा गया। दैवदुर्विपाकसे सिद्धार्थके उत्पन्न होनेपर सातवें दिन मायादेवी इस संसारसे चल बसीं। सिद्धार्थका लालन पालन गौतमीने किया, इससे लोग उन्हें गौतम कहने लगे। सिद्धार्थने आगे चलकर प्रबल तपस्या की। शाक्य-वंशमें उनके समान कोई अलौकिक पुरुष नहीं हुआ। असाधारण तेजस्वी, गुणी, मेधावी और तपस्वी होनेके कारण शाक्यसिंह, शाक्य-मुनि, बुद्धदेव आदि नामोंसे भी वे अभिहित होते थे। मायादेवी जब गर्भवती थीं, तब प्रायः उद्यान और एकान्त वनमें विचरण करती थीं। यह देख शुद्धोदनको सन्देह होने लगा कि, गर्भस्थ पुत्र वैराग्यशाली होगा। सिद्धार्थका जन्म भी उद्यानमें ही एक वृक्षके तले अक-स्मात् हुआ था। उनकी जन्मपत्री देखकर ज्योतिषियोंने भी यही कहा कि, नवजात पुत्र बड़ा तपस्वी, योगी, त्यागी और धर्मप्रचारक होगा। तब तो शुद्धोदन अधिक ही चिन्तित हुए। उन्होंने

सिद्धार्थको ऐसी सावधानीसे रक्खा कि, वे संसारके उन दुःखोंको न देख सकें, जिनसे मनुष्यको वैराग्य उत्पन्न होता है।

सिद्धार्थ निरन्तर हासविलासप्रिय मण्डली और दिव्य वाराङ्गनाओंसे घिरे रहते; परन्तु उनका कहीं चित्त नहीं लगता था। वे प्रायः एकान्तमें बैठते और आकाश, मेघ तथा वनस्पतियोंको देख देखकर मन ही मन मुग्ध होते थे। सिद्धार्थका चित्त गृहस्थीमें लग जाय, इस विचारसे शाक्यवंशीय राजा दण्डपाणिकी कन्या गोपाके साथ शुद्धोदनने उनका विवाह कर दिया।

सिद्धार्थका जन्म ईसासे ६२३ वर्ष पहिले हुआ। १६ वर्षोंकी अवस्थामें उनका विवाह हुआ। इससे दो वर्षोंके पश्चात् उन्हें एक सुन्दर पुत्र हुआ, जिसका नाम 'राहुल' रक्खा गया। स्त्री-पुत्रमें रममाण होकर सिद्धार्थ राज्यकार्य भी सम्हालने लगे। यह देख, शुद्धोदन बड़े प्रसन्न हुए। पुत्रको राज्य सौंप, निश्चिन्त होकर वे हरिभजन करते और यथासमय सिद्धार्थको राज्यप्रबन्धमें परामर्श देते थे। सिद्धार्थने ऐसा उत्तम राज्य किया कि, राज्य-भरमें न कभी अकाल पड़ा, न रोग हुए और न कहीं कलह ही सुनाई दिया। अब सिद्धार्थ एक प्रकारसे स्वतन्त्र हो गये। यह सब होते हुए भी वे बड़े व्यग्र और चिन्तित रहा करते थे, जिसका कारण कोई जान नहीं पाता था।

एक दिन प्रातःकालमें दिव्य वाराङ्गनाओंके वीणाविनिन्दित कण्ठसे विनिर्गत प्रभाती-गानको सुनकर सिद्धार्थ जागे। उस मधुर गानको सुन और उसके अर्थको समझ, सिद्धार्थने सिद्धान्त बाँधा कि,—"इस अनित्य संसारमें अवश्य ही कोई नित्य वस्तु है और उसीको प्राप्त करनेसे मनुष्य शान्तिलाभ कर सकता है।" ज्ञान-वैराग्यकी भावना सिद्धार्थके हृदयमें संगीतसे ही जागृत हुई, इससे संगीतका महत्व जाना जा सकता है। संगीतने जिस सिद्धान्ततरु-

का सिद्धार्थके हृदयमें बीजारोपण किया, वही कालान्तरमें पल्लवित, कुसुमित और सुफलित होकर संसारके त्रितापतप्त मनुष्योंको शान्तिछाया प्रदान करनेमें समर्थ हो सका।

सिद्धार्थ अब सृष्टिकी प्रत्येक वस्तुको सूक्ष्म दृष्टिसे देखने लगे। एक दिन वे रथपर चढ़, राजप्रासादके उत्तर द्वारसे नगरका सौन्दर्य देखने निकले। थोड़ी दूर जाकर क्या देखते हैं कि, एक बुड्ढा हाँपता-काँपता, लाठी टेकता हुआ जा रहा है। उसके सब बाल पक गये हैं, दाँत गिर गये हैं, कमर झुक गई है, शरीरपर झुर्रियाँ पड़ गई हैं और बड़ी कठिनाईसे एक एक पग धर रहा है। सिद्धार्थने अपने सारथी छन्दकसे पूछा,—"यह कौन जीव है? ऐसा प्राणी तो मैंने कभी नहीं देखा था।" छन्दकने कहा,— "युवराज! यह एक वृद्ध पुरुष है। प्रत्येक जीव जो जन्मता है, वह यदि बहुत दिनों तक जिये, तो ऐसा ही बुड्ढा हो जाता है और उसकी ऐसी ही दशा होती है।" सिद्धार्थ मन ही मन सोचने लगे,—"यदि सभीकी यह दशा होती है, तो लोग यौवनका गर्व क्यों करते हैं?" वे फिर आगे नहीं बढ़े और सचिन्तभावसे प्रासादमें लौट आये।

कुछ दिनोंके पश्चात् सिद्धार्थ अपने प्रासादके पश्चिम दिशाके द्वारसे होकर घूमने निकले। कुछ दूर चलकर उन्होंने देखा कि, एक मनुष्य मार्गकी एक नालीके पास पड़ा पड़ा कै कर रहा है, असह्य वेदनाओंसे छटपटाता है और 'हाय हाय' कहकर चिल्ला रहा है। सिद्धार्थ बोले,—"छन्दक! इसे क्या हो रहा है? यह ऐसा क्यों कर रहा है?" सारथीने उत्तर दिया,—"कुमार! यह मनुष्य व्याधि-ग्रस्त है। प्रत्येक देहधारी जीवको जीवनमें कभी न कभी ऐसी ही अनेक व्याधियोंको भोगना ही पड़ता है। मनुष्यका स्वास्थ्य सदा एकसा नहीं रहता।" सिद्धार्थ हृदयमें बहुत ही दुःखित होकर घर लौट आये।

फिर एक दिन दक्षिण द्वारसे वे चले। उन्होंने देखा कि, कुछ लोग एक मृत-देहको कपड़ेमें लपेटकर कन्धेपर उठाये ले जा रहे हैं। उनके पीछे पीछे बहुतसे स्त्री-पुरुष रोते, छाती पीटते और हाहाकार मचाते हुए जा रहे हैं। सिद्धार्थ आश्चर्य्यचकित हो, करुणासे आंखोंमें आँसू भरके बोले,—"छन्दक! इस मनुष्यको कपड़ेमें क्यों लपेटा है? इसे कहाँ लेजा रहे हैं और इसके साथी रोते क्यों हैं?" छन्दकने विनीत भावसे कहा,–"प्रभो! यह मृत-मनुष्यकी देह है। इस देहसे आत्मा चल बसी है। अब इसे ये लोग जलाने ले जा रहे हैं। प्रत्येक जीव एक दिन मरता अवश्य है। वृक्षमें फल लग जानेपर जिस प्रकार उसका एक दिन पतन होता है, नदियां दौड़ दौड़ कर जिस प्रकार महासागरमें विलीन हो जाती हैं, उसी प्रकार सभी जीव कालरूपी महासागरकी ओर अनायास जा रहे हैं। कालसे कोई नहीं बचा है। जो जीता है, उसका मरण अवश्यम्भावी है।" सिद्धार्थ इस उत्तरको सुन विरक्त हो गये। घर आकर रात्रिके समय उन्होंने अपनी प्रियतमा गोपाका सुन्दर तथा कुमार राहुलका सुकुमार मुख एकान्तमें देखा। दोनों सो रहे थे। उनके पास बैठे बैठे वे सोचने लगे,—"इन मुखोंका सौन्दर्य ही मेरे दुःखका कारण होगा? जिनपर मैं मुग्ध हो रहा हूँ, कौन कह सकता है कि, क्षणभरमें ही उनका मुझसे वियोग नहीं होगा? कालसे कौन पार पा सकता है? क्या इससे छुटकारा पानेका भी कोई उपाय हो सकता है?" सोचते सोचते उनकी आँख लग गई।

अबकी बार सिद्धार्थ प्रासादके पूर्व द्वारसे होकर चले। व्याकुल होकर हृदयमें सोच रहे थे कि, तीन दिनोंकी तरह क्या आज भी कोई भीषण दृश्य देख पड़ेगा? बहुत दूर नहीं गये थे कि, सामनेसे आते हुए प्रसन्नवदन एक संन्यासीको उन्होंने देखा। वैषयिक

चिन्तासे शून्य और परमार्थ-चिन्तामें निरत होनेके कारण संन्यासी-का शरीर हृष्ट पुष्ट था। सारे अङ्गोंमें भस्म रमाई थी, जटाओंका जूट शिरपर सुशोभित था। एक हाथमें दण्ड और दूसरेमें कमण्डलु था। गेरुए वैराग्यसूचक वस्त्रोंसे उनकी शोभा बहुत ही बढ़ गई थी। उन्हें देख, सिद्धार्थने सारथीसे आश्चर्यचकित हो, पूछा,—"यह तो कोई विचित्र पुरुष देख पड़ता है! कहो, यह कौन है?" छन्दकने उत्तर दिया,—"राजकुमार! यह एक संन्यासी है। स्त्री-पुत्र-परिवारका मोह छोड़, यह आनन्दपथी अवस्थाको प्राप्त हो चुका है। जगत् ही इसका कुटुम्ब है, धर्मप्रचार ही इसका कर्तव्य है, भिक्षा ही भोजन है और विषयवासनाका त्याग ही इसका परम पुरुषार्थ है। जो इस अवस्थाको पहुंचते हैं, उन्हें क्षणभङ्गुर संसारके तीव्र दुःख भोगने नहीं पड़ते।" सिद्धार्थ इस उत्तरसे बड़े प्रसन्न हुए। बार बार उस संन्यासीको देखते हुए वे आनन्दित हो, घर लौट आये। बहुत दिनोंसे व्याकुल हुए उनके चित्तको आज कुछ शान्ति मिली। उन्होंने एकान्तमें बैठ कर मन ही मन स्थिर किया कि,—"यही संन्यस्ताश्रम मनुष्यके लिये शान्तिकर है। इसीमें प्रवेश कर मनुष्य नाशमान गहनारण्यसे निकल कर अविनाशी मार्गपर आरूढ़ हो सकता है। इसीका अवलम्बन मेरे लिये हितकर होगा। संसारकी सभी वस्तुएँ जब कि अस्थायी हैं, चिरसङ्गी कोई नहीं, तब अपनी देहकी स्फूर्ति, परिच्छद, वैभव, विद्या, अधिकार, सौन्दर्य आदिका मैं अहङ्कार क्यों करूँ? धर्मपथके पथिक बननेमें ही मनुष्यका सच्चा गौरव है। जरा, व्याधि और मृत्युसे बचनेका यही एकमात्र उपाय है। कालको जीतनेके लिये मनुष्यके हाथमें इससे बढ़कर कोई शस्त्र नहीं है।"

सिद्धार्थने अपना अभिप्राय पितासे निवेदन किया। राजा शुद्धोदनके शिरपर मानो वज्राघात हुआ। इतने दिनोंसे जिस

वातके लिये वे डरते थे, वही सम्मुख उपस्थित हुई देख, वे जड़-वत् हो गये। उन्होंने सिद्धार्थको बहुत समझाया, पर जब सिद्धार्थ निवेदन करते कि,—"जरा, व्याधि और मृत्युसे बचनेके लिये तपके अतिरिक्त यदि कोई अन्य उपाय हो, तो कृपया बतलाइये; मैं अपना विचार बदल दूँगा;" तब शुद्धोदन अवाक् हो जाते थे। बहुत दुःखित होकर शुद्धोदनने सिद्धार्थको तप करनेकी अनुमति दी। गोपा और गौतमीसे भी सिद्धार्थने बिदा मांगी। दोनोंके दुःखकी सीमा न रही। एक दिन रात्रिके समय सिद्धार्थ, गोपा और राहुलको घोर निद्रामें सोये हुए जान, दबे छिपे राजभवनसे चल दिये। जीवोंकी मुक्तिकामनाके दृढ़व्रतकी तलवारसे उन्होंने एक क्षणमें माया मोहके सब बन्धनोंको काट डाला। नित्य पदार्थ-को पानेकी लालसासे जब उन्होंने अनित्य संसारको त्याग दिया, तब उनकी अवस्था २९ वर्षोंकी थी।

घरसे चलकर प्रातःकालके समय वे कुशीनगर (जो गोरख-पुरके पास है) पहुंचे। वहीं उन्होंने अपने अलंकार उतार कर छन्दकको दे, विदा किया। फिर तलवारसे अपने घुँघराले बाल काट डाले। एक व्याधको अपने सब राजवस्त्र देकर उसके मलिन वस्त्र स्वयं पहिन लिये। कल जो राजाधिराज थे, लोककल्याणके लिये आज भिखारी बन गये! पिताके अतुल वैभव-राज्य-ऐश्वर्य्यसे, रूप-गुणोंमें असाधारण युवती भार्यासे, वासन्तिक पुष्पके समान सुन्दर-सुकोमल पुत्रसे पीठ फेरकर सिद्धार्थ पूरे वनवासी हो गये।

वैशाली, राजगृह आदि स्थानोंमें जाकर अडार, रुद्रक आदि उस समयके प्रचण्ड पण्डितोंके पास उन्होंने दर्शनशास्त्र और योगविद्याको सीखा। फिर गया जिलेके उरुविल्व नामक ग्राममें नैरञ्जन नदीके तटपर छः वर्षोंतक कन्द मूल फल खाकर उन्होंने

कठोर तपश्चर्य्या की। तपसे उनका शरीर अति क्षीण हो गया था। उसको सतेज करनेके विचारसे वे दूध और कुछ अन्न खाने लगे। यह भोजनसामग्री उन्हें बलगुप्ता, सुप्रिया, सुजाता आदि नगरकी वृद्धा स्त्रियाँ ला देती थीं। गुरुजी स्त्रियों द्वारा प्राप्त हुआ अन्न ग्रहण करते हैं देख, उनके जो कौण्डिण्य, भद्र, महानामा, बापा और अश्वजित् नामक पाँच शिष्य हुए थे, वे उन्हें अश्रद्धासे वहीं छोड़ चल दिये। इससे सिद्धार्थको बहुत दुःख हुआ। उनकी आँखोंके आगे राज्य, गौरव, स्वजन आदिके चित्र खड़े होकर पिताके आन्तरिक कष्टों, माताके आँसुओं, प्रेममयी गोपाकी विरहव्याकुल मलिनावस्था और पुत्रके निर्विकार प्रसन्न मुखकी, हृदयको दहला देनेवाली, छटाको झलकाने लगे। क्षणमात्रके लिये इन बातोंका प्रभाव सिद्धार्थके हृदयपर अवश्य ही पड़ा, पर वे विचलित नहीं हुए और उरुविल्वके निकटस्थित एक विशाल वटवृक्षके तले बैठकर पुनः तपस्या करने लगे। भगवान् करुणामय हैं। भक्तकी सब प्रकारसे परीक्षा कर, उसे मोहहीन जान, भगवान्ने सिद्धार्थके अन्धकाराच्छन्न हृदयमें ज्ञानज्योतिका प्रकाश किया। उनके सुखों, दुःखों, इन्द्रियों और इच्छाओंका निर्वाण हुआ। वे बुद्ध (पूर्ण ज्ञानी) हो गये। तभीसे सिद्धार्थका नाम 'बुद्ध' या 'बुद्धदेव' हुआ और जिस वटवृक्षके तले बैठकर उन्होंने तपस्या की थी, उसको लोग 'बोधिद्रुम' कहने लगे। उन्हें बुद्ध हुआ जान, जो शिष्य चले गये थे, वे लौट आये और उन्होंने सिद्धार्थसे पहिले पहिल बुद्धधर्मकी दीक्षा ली। इसके उपरान्त विभिन्न ६० सज्जन बुद्धदेवके शिष्य हुए। क्रमशः उनकी शिष्य-परम्परा बढ़ने लगी।

स्वयं ज्ञान प्राप्त कर, मनुष्य जातिको ज्ञानसम्पन्न बनाना ही बुद्धदेवने अपने जीवनका लक्ष्य बनाया था। उन्होंने शिष्योंसे

कहा,—"आत्मोत्कर्षसाधन ही बौद्धधर्मका उद्देश्य है। इस उद्देश्यका साधन करनेके लिये दयावृत्तिको बढ़ाना चाहिये। सत्-दृष्टि, सत्सङ्कल्प, सद्वाक्य, सद्व्यवहार और सदुपायसे जीविका निर्वाह कर, धर्मपथमें अग्रसर होना चाहिये। बौद्धधर्ममें जातिभेद नहीं है। आत्मोत्कर्षके लिये सभी वर्णोंको एक हो जाना चाहिये।"

काशीके निकट सारनाथ नामक स्थान है, जिसे उस समय 'मृगदाव' कहते थे। वहींसे बुद्धदेवने अपने धर्मका प्रचार करना प्रारम्भ किया था। 'विश्वसार' नामक राजाने जब बुद्धधर्मको ग्रहण किया, तब असंख्य जनता बौद्धधर्मावलम्बिनी हुई। बुद्धदेवकी कीर्ति देश देशान्तरोंमें फैली। राजा शुद्धोदनने जब पुत्रका यश सुना, तब कपिलवस्तुमें उन्हें बुलानेके लिये आठ दूत उनके निकट भेजे। मनोमोहनी वाणीसे मुग्ध कर, उन आठोंको बुद्धदेवने शिष्य बना लिया और वे आठों उन्हींके पास रहने लगे। कुछ दिनोंके पश्चात् 'चर्क' नामक राजमन्त्रीने,—जो उन आठोंमेंसे एक था,—शुद्धोदनके पास जा कर कहा —"अब बुद्धदेव राजप्रासादमें नहीं रहेंगे। उन्हें बुलाना हो, तो उनके लिये एक मठ बनवा रखिये।" शुद्धोदनने तुरन्त एक मठ बनवा दिया, जिसका नाम 'न्यग्रोध मठ' रक्खा गया। तर्क और अकाट्य युक्तियों द्वारा अपने धर्मका रहस्य सर्वसाधारणको समझाते और राजासे लेकर रङ्क तक,—जो भक्तिमान् देख पड़ता, उसे शिष्य बनाते हुए बुद्धदेव अपनी पैतृक राजधानीमें आकर पिता द्वारा नवनिर्मित मठमें रहने लगे। बिछुड़े पुत्रके पुनर्मिलनसे शुद्धोदन और गौतमीको जो आनन्द हुआ, वह लिखा नहीं जा सकता। प्रतिदिन शुद्धोदनके साथ सहस्रों लोग बुद्धदेवके पास आकर धर्मोपदेश श्रवण किया करते थे। जबसे सिद्धार्थ घरसे निकले, तबसे गोपा फलाहार

करती और राहुलको देख देख जीती थी। पतिके आगमनसे आनन्दित हो, वह बुद्धदेवसे एकान्तमें मिली। उसने अपनी सब करुण-कहानी उन्हें कह सुनायी। सब कुछ शान्त चित्तसे सुनकर बुद्धदेवने अमृतोपदेश द्वारा उसे भी अपने धर्ममें दीक्षित कर लिया। माताकी आज्ञासे कुमार राहुल बुद्धदेवके पास जाकर अपनी पैतृक सम्पत्ति मांगने लगा। उसे भी दीक्षित कर बुद्धदेवने कहा,—"वत्स! यही अतिकष्टसे उपार्जन की हुई मेरी बहुमूल्य सम्पत्ति है"। फिर अपने सौतेले भाई आनन्द और देवदत्त तथा पितृव्यके पुत्र अनिरुद्धको भी उन्होंने दीक्षा दी और कुछ दिन 'न्यग्रोध मठ' में रहकर, धर्मप्रचारार्थ वे पुनः मठसे बाहर हुए। मठमें रहते हुए और सञ्चारमें भी बुद्धदेव भिक्षावृत्तिसे जीवन यापन करते थे।

प्रायः वे आठ मास देशान्तरोंमें धर्मप्रचार करते और वर्षा-कालमें 'न्यग्रोध मठ' में रहकर शिष्योंको उपदेश देते थे। विदेशमें उन्हें सिद्ध जान कर कोई धन, कोई विजय, कोई पुत्रकी कामनासे उनके पास आते, पर वे किसीका मन न दुखाते हुए सबको प्रकृतिके अनुकूल रहनेका उपदेश करते थे। उनके उपदेशका एक उदाहरण इस प्रकार है:—"श्रावस्ती नगरकी कृष्णा नामकी एक सेठानीका पुत्र मर गया था। वह उस मृत बालकको बुद्धदेवके पास लाकर कहने लगी,—"महाराज! आप बड़े योगी हैं, तो मेरे पुत्रको जिला दीजिये।" बुद्धने कहा,—"माता! यदि आप ऐसे घरसे एक मुट्ठी सरसों ले आवें, जिस घरमें कोई मरा न हो, तो मैं आपके पुत्रको जिला दूंगा।" कृष्णा द्वार द्वार दिन भर घूमी, पर उसे ऐसा घर ही नहीं मिला। किसीको पिताका, किसीको माताका, किसीको प्रिय कुटुम्बीका वियोग हुआ ही था। तब बुद्धदेवने उसे समझाया,—"मृत्युसे कोई नहीं

बचा है। आप जैसी कितनी ही माताएँ पुत्रहीना हुई हैं। जन्म मरणके लिये हर्ष शोक करना वृथा है। मनुष्यका ज्ञानलाभसे ही जरा-मरणका भय दूर हो सकता है।" कृष्णा तुरन्त बुद्धदेवकी शिष्या बनी। इसी तरह पुरुषोंकी तरह कितनी ही महिलाएँ भी बुद्ध-धर्म्मावलम्बिनी हुईं, जिनकी नेत्री सती गोपा थी।

यज्ञ-याग आदि वैदिक कार्योंके नामपर उस समय इस देशमें हिंसा बहुत बढ़ गयी थी। बुद्धदेवने देशकालका विचार कर, यज्ञ और वेदोंकी निन्दा की और धर्माङ्गोंमेंसे दयाधर्मका ही प्रचार किया, जिससे हिंसावृत्ति बहुत दब गई और लोग दयाकी महिमाको समझ गये। फोड़ा होनेपर उसे काट देना ही जैसा चिकित्साशास्त्रका नियम है, वैसा ही उस समय बुद्धने यज्ञ और वेदोंकी निन्दाका प्रयोग जनताके अन्तःकरणों पिर कया था। पीछेसे भगवान् शङ्कराचार्य्यने पुनः वैदिकधर्मकी प्रतिष्ठा कर, बुद्धके धर्म-प्रचारसे हुई क्षति पूर्ण की और बुद्धको भगवान्के दश अवतारोंमेंसे नवम अवतार मान लिया।

बुद्धदेवको धर्मप्रचार करते समय कितने ही विद्वानोंसे विवाद करना पड़ा और कितने ही लोगोंकी दुरुक्तियां सहन करनी पड़ीं, परन्तु कभी उन्होंने अपनी शान्ति नहीं डिगने दी। एक बार एक सज्जनने तो उनको भीख मांगते देख, यहां तक कह दिया,—"तुम हट्टे कट्टे देख पड़ते हो, फिर भीख क्यों मांगते हो? हम दिन-भर खेती कर, कष्टसे कमाये अन्नसे पलते हैं और तुम विना परि-श्रमके भोजन करते हो, यह कैसी साधुताई है?" बुद्धदेवने शान्ति-से उत्तर दिया,—"आप कहते हैं सो ठीक है, परन्तु हमारी खेती आप नहीं देख पाते। मानवी हृदय हमारी भूमि है, ज्ञान हमारा हल है, विनय उसका फाल है, उत्साह और उद्यमरूपी बैल उसे

छोड़ते हैं, विश्वासका बीज उसमें बोया जाता है, जिससे निर्वाण-रूपी फसल उत्पन्न होती है, उसी फसलसे हम मनुष्यसमाजको चिरजीवित रखनेका यत्न करते हैं, फिर आप हमें क्यों निरुद्यमी कहते हैं?" बेचारा आक्षेपक निरुत्तर हो, उसी समय उनका शिष्य बना। बुद्धदेव और उनके अनुयायियोंके उद्योगसे बुद्ध-धर्मका क्रमशः इतना विस्तार हुआ कि, संसारके $\frac{1}{3}$ लोग बुद्ध-धर्मावलम्बी बन गये।

४५ वर्षों तक लगातार धर्मप्रचार कर, ८० वर्षोंकी अवस्थामें ईसासे ५३४ वर्ष पहिले काशी और पटनाके बीच कुशीनगर ग्राममें एक साल वृक्षके तले बुद्धदेवने देह विसर्जन किया। समाधिस्थ होनेके पूर्व जब उन्होंने सुना कि, राजा शुद्धोदनका अन्तिम समय आगया, तब वे राजप्रासादमें गये थे। उनसे धर्मोपदेश सुनते हुए शुद्धोदनने देह त्याग किया। पिता-माता (गौतमी) की और्ध्वदेहिक क्रिया कर, अपने वैमातृक भाइयोंको भी उन्होंने अपने धर्ममें दीक्षित किया। अन्तिम समयमें सब श्रमणकोंको (बौद्धधर्मावलम्बी सन्न्यासियोंको भिक्षु या श्रमणक कहते हैं) एकत्र कर, बुद्धदेवने चार बातोंका उपदेश दिया था। वे इस प्रकार हैं:—(१) इन्द्रियोंका निरोध करनेसे निर्वाण (मोक्ष) प्राप्त होता है, (२) आत्मसंशोधन करते हुए पापसे बचो और पुण्य करो, (३) जलसे कीचड़ होता है और वह जलसे ही धोया जाता है। इसी तरह मनसे पाप होनेपर मनके द्वारा पाप धोया भी जाता है, (४) छाया जिस प्रकार मनुष्यका त्याग नहीं करती, उसी प्रकार जिसके विचार, वाणी और कर्म पवित्र हैं, उसकी सुख शान्ति अटल रहती है।

बुद्धदेव राजकुलमें उत्पन्न अवश्य हुए थे, किन्तु उनका जन्म वृक्षतले हुआ, उनके हृदयमें ज्ञानोदय वृक्षतले हुआ और उन्होंने देह-

विसर्जन भी वृक्षतले ही किया। बुद्धदेवका देह भस्मीभूत हो जानेपर शिष्योंने उनकी राख सोनेके पात्रमें ले जा कर, राजगृह, वैशाली, कपिलवस्तु, अलकाप्पुर, रामग्राम, उत्थद्वीप, पावा और कुशीनगर इन आठ स्थानोंमें गाड़ी और उसपर स्मारक बाँधे। उन स्मारकोंको चैत्य कहते हैं। इसके अतिरिक्त गया जिलेमें,—जहाँ उन्होंने तप किया था;–काशीमें जहाँसे उन्होंने धर्मप्रचार आरम्भ किया था; और भी कतिपय अन्य स्थानोंमें उनके स्मारक बने हैं। यहाँ तक कि, सीलोनमें उनका एक दाँत गाड़कर उसपर सुन्दर मन्दिर बाँधा गया है। चीन, जापान आदि देशोंमें बुद्धधर्मावलम्बी अधिक होनेसे वहाँ भी कई बुद्ध-मन्दिरोंकी स्थापना हुई है। बुद्धदेवका शरीर इस समय इस संसारमें नहीं है, पर हज़ारों वर्ष बीत जानेपर भी उनके धर्म और कीर्तिकी पताका संसारमें फहराती हुई शान्तिपथकी चिह्नस्वरूप हो रही है।

बौद्ध धर्ममें जो कतिपय नृपति दीक्षित हुए, उनमें मगधराज अशोक और कनिष्कने बौद्धधर्मका विदेशमें बहुत प्रचार किया। प्रचारक भेजकर, ६०।६० हज़ार बौद्धोंको भोजनाच्छादन देकर और आज्ञापत्र निकाल कर दोनों राजाओंने भारतमें ही नहीं, किन्तु बर्मा, जावा, सुमात्रा, तिब्बत, मध्यएशिया, कोरिया आदि देशोंमें भी बौद्धधर्म फैला दिया। बुद्धदेवके उपदेश मौखिक हुआ करते थे। कश्यप, आनन्द और उपाली नामक तीन शिष्योंने उन उपदेशोंको ग्रन्थरूपमें (सूत्र, नियम और अभिधर्म नामक ग्रन्थोंके रूपमें) परिणत किया। इन तीन ग्रन्थोंको 'त्रिपिटक' कहते हैं। बौद्धोंमें इन ग्रन्थोंमें वर्णित मतोंमें बहुत मतभेद था, सो कई बार सहस्रों बौद्धोंने एकत्र होकर मिटानेका यत्न किया, पर वह मिटा नहीं और बौद्धोंके विभिन्न मतके कई दल बन गये।

बौद्धलोग एक प्रकारसे जन्मान्तर और मुक्तिको मानते हैं और

अहिंसा, अस्तेय, सूनृत, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह इन पाँच धर्म-साधनोंको ही मुक्तिका उपाय बताते हैं। सनातन धर्मावलम्बियोंका बौद्ध मतसे सिद्धान्ततः और व्यवहारतः बहुत कुछ मतभेद होनेपर भी वे बौद्धधर्मको अपने ही धर्मका एक पन्थ मानते हैं; क्योंकि सनातनधर्मके कुछ सिद्धान्तोंको लेकर ही बौद्धधर्मकी रचना हुई है। जो हो, बुद्धदेवमें बाल्यावस्थासे लेकर देहावसान तक पितृ-मातृ भक्ति, अतुल वैभव होते हुए भी वैराग्य, ईश्वरप्रेम, स्वार्थविहीन परोपकारबुद्धि, तपस्विता, अमानुषिक क्षमता, सत्य-ज्योति, कामक्रोध-जय आदि असाधारण गुण देख पड़ते थे। सबसे विशेष गुण यह था कि, वे मनुष्यजातिके सुखके लिये निरन्तर प्रयत्नवान् रहा करते थे और इसी उद्देश्यसे उन्होंने नवीन पन्थकी रचना की थी। सनातनियोंका उनके मतसे कितना ही विरोध क्यों न हो, उनको अवतार माननेमें किसीका मतभेद नहीं है और इसी विचारसे विष्णुपदकी तरह बुद्ध गयामें भी हिन्दु लोग श्राद्ध किया करते हैं। बुद्धभगवान्के चरित्रसे हमारे देशके बालक उनकी शान्तिप्रियता, धर्मानुराग और तप द्वारा जीवमात्रको सुखी करनेकी प्रवृत्ति, इन तीन शिक्षाओंको ग्रहण कर सकते हैं।

———o———

श्रीभगवान् शङ्कराचार्य ।

कौरव पाण्डवोंके युद्धके पश्चात् यद्यपि भारतका साम्राज्य प्रायः नष्टसा हो गया था, तथापि भारतमें राज्य-क्रान्ति नहीं हुई थी। हजारों वर्षोंतक संयुक्तराज्य (United States) प्रणाली प्रचलित थी और कुरु, केरल, वङ्ग, कलिङ्ग, मगध, पाञ्चाल आदि देशोंके राजन्यगण परस्पर सहकारिता कर

अपनी अपनी आन्तरिक तथा बाह्य उन्नति करते थे। सर्वत्र राजनैतिक शान्तता थी। लोग अनेक प्रकारके स्वदेशोन्नतिकारी सुधारोंमें लग गये थे। इन सुधारकोंके दलोंमें बौद्धोंका दल सबसे प्रबल था। उसका सृष्टिपर इतना प्रभाव जमा कि, अभीतक पृथ्वीके पृष्ठपर एक तिहाई अर्थात् ५० करोड़ लोग बौद्ध हैं। ईसवी सन्से ५३४ वर्ष पहिले बुद्धदेवका निर्वाण हुआ, उस समय उनका धर्म प्रबलताके साथ प्रचलित हो रहा था। उस युगको हम धर्म-धिचारोंका युग कह सकते हैं। उसी समय ईसा, मूसा आदिने बौद्धधर्मकी छायापर अपने अपने धर्म चलाये। किसी जातिके सुधारोंकी जब चरम सीमा हो जाती है, तब उसके पतनका आरंभ होता है। एक ओर दयाप्रधान बौद्धधर्मके प्रचारके लिये बौद्ध यज्ञ और यागादिके विरुद्ध होकर वेदनिंदक बन गये एवम् वैदिक-धर्माभिमानियोंपर अत्याचार करने लगे और दूसरी ओर शैव, वैष्णव, गाणपत्य, सौर, शाक्त आदि अपनी अपनी ढपलीपर अपना अपना राग अलापते हुए परस्पर खूब लड़ने झगड़ने लगे। इस प्रवाहको रोकने तथा सनातनकालसे प्रचलित वैदिकधर्मका—जिसपर आर्य्योंका आर्य्यत्व निर्भर है—उद्धार करनेके लिये कुमारिल भट्ट, मण्डन आदिने उद्योग आरम्भ किया। इसी उद्योगकी पूर्तिके लिये परमात्माकी प्रेरणासे भगवान् शङ्करने अवतार धारण किया। उन्होंने उचित सुधारोंको कायम रखकर प्राचीनताकी रक्षा की। उन्हींकी कृपासे संसारमें आज हिन्दुजाति जीवित है और वह अपनी पूर्व परम्पराको भूली नहीं है।

भगवान् शङ्कराचार्य्यका जन्म ईस्वी सन्से बहुत पहिले विभव नामक संवत्सर, वैशाख शुक्ला १० को मध्यान्हके समय केरल देशके कालटी नामक अग्रहार (ब्राह्मणप्रधान ग्राम) में उस समयके प्रसिद्ध विद्वान् विद्याधिराजके विद्वान् पुत्र शिवगुरुके घर हुआ।

शङ्करकी माताका नाम सुभद्रा था। शङ्कर गौरवर्ण, तेजस्वी, प्रतिभा-सम्पन्न और बुद्धिमान् थे। उनकी बाल्यकालकी असाधारण योग्यता देख, लोग उन्हें अवतार समझने लग गये थे। शङ्करने प्रथम वर्षमें ही लिपि सीख ली। दूसरे वर्षमें पुराण सुन लिये। तीसरे वर्षमें व्याकरणका ज्ञान कर लिया। चौथे वर्षमें काव्य-कोष आदि घोख लिये और पांचवें वर्षमें दर्शनशास्त्रोंका आकलन कर, उन्होंने अपनी व्यावहारिक शिक्षा समाप्त कर ली। दैववशात् इसी कुमार अवस्थामें शिवगुरुका देहान्त हुआ। सुभद्राने सम्बन्धियों द्वारा शङ्करका यज्ञोपवीत कराके उन्हें गुरुगृहमें भेज दिया। दो वर्षोंके भीतर शङ्करने वेद-वेदांग तथा १४ विद्या ६४ कलाओंका अभ्यास कर लिया। अब शङ्कर घर लौटकर अखण्ड पठन-पाठन, ब्रह्मचर्योचित अग्निकार्य्य, मातृ-सेवा आदिमें निमग्न हो गये। प्रति-दिन बड़े बड़े विद्वान् और उनके गुरु भी उनके पास पढ़ने आते थे, इससे उनकी कीर्ति सर्वत्र फैल गई। पिताकी सम्पत्तिका उन्होंने उत्तम प्रबन्ध किया और अपनी सब सम्पत्ति वे प्राचीन मन्दिरोंके जीर्णोद्धारमें लगाने लगे और पीछेसे भी भारतके प्रायः समस्त देवस्थानोंका उद्धार भगवान् शङ्कराचार्य्यने किया है।

कहते हैं कि वे सुवर्ण बनाना, नदियोंके प्रवाहोंको बदलना आदि जड़-विज्ञानकी अनेक बातें यौगिक बलसे जानते थे और उन्होंने अपने जीवनमें उनका उपयोग भी किया था। एक दरिद्रा परन्तु पतिपरायणा स्त्रीके घर वे भिक्षाके लिये गये। उसके पास एक आंवलेके सिवा कुछ नहीं था। उसने वही इन्हें भक्तिभावसे आंखोंमें आँसू भर कर दिया। शङ्करने उसकी दुर्दशा देख, लक्ष्मीकी स्तुति की; जिससे थोड़े ही दिनोंमें उस स्त्रीने अपना घर सोनेके आंवलोंसे भर लिया। इसी तरह उनकी वृद्धा माता सुदूरवर्ती

नदीतटपर प्रतिदिन स्नान करने जाती और गर्मीसे मूर्छित हो जाती थी। इस असुविधाको दूर करनेके लिये उन्होंने नदीका प्रवाह घरके निकट बहा दिया। इन बातोंसे केरल देशका राजा राजशेखर बड़ा आश्चर्य्यचकित हुआ। उसने शङ्करका दर्शन कर, उन्हें अगणित सम्पत्ति प्रदान की। शङ्करने सब सम्पत्ति धर्मकार्यमें लगा दी। राजाको पुत्र नहीं था। शङ्करकी आज्ञासे पुत्रेष्टि यज्ञ करनेपर उसे पुत्र हुआ। इससे शङ्कर सिद्धाईमें भी खूब विख्यात हुए। वास्तवमें शङ्कर उत्तम तपस्वी, योगी और उपासक थे। राजशेखरने अपने बनाये हुए तीनों नाटक शङ्करको अर्पण किये थे। शङ्कर ब्रह्मचारी होनेके कारण बड़े शक्तिशाली थे। उन्हें एक बार मगरने पकड़ लिया था; परन्तु उन्होंने उसे लातोंसे कुचल कर मार डाला। शंकरने अपनी मातासे बड़ी चतुरतासे आज्ञा लेकर ८ वें वर्षमें गोविन्द गौड़पाद नामक योगिराजसे संन्यास ग्रहण किया और हाथमें निष्काम देशसेवाका कङ्कण बांध लिया। एक हाथमें निवृत्तिका दण्ड और दूसरे हाथमें ज्ञानका भण्डार लेकर वे भारतवर्षमें भ्रमण करने निकले। स्वार्थत्यागके बिना देशसेवा हो नहीं सकती, इसी विचारसे उन्होंने सन्न्यास लिया था। उनका सिद्धान्त था,—"दृश्य जगत् परिवर्तनशील अर्थात् नाशमान है। आत्मा स्वतन्त्र, अविनाशी और सत्य है। व्यक्तिगत स्वार्थ छोड़नेसे ही चिरन्तन स्वार्थ सधता है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना करना मनुष्यका परम पुरुषार्थ है। आत्मा स्वतन्त्र होनेसे जीवमात्र स्वतन्त्र हैं और उन्हें परमात्मपदप्राप्तिके लिये अखण्ड लोककल्याणकारी कार्योंमें प्रवृत्त रहना चाहिये।" माताका भार उन्होंने कुटुम्बियोंपर सौंपकर देशदशा-दर्शनके लिये प्रस्थान किया। माताके पालन-पोषणके लिये उन्होंने अपनी सब सम्पत्ति भी कुटुम्बियोंके हवाले कर दी थी।

यात्रा करते हुए शङ्कर काशी पहुँचे। विश्वनाथ, अन्नपूर्णा आदि देवताओंके मन्दिर बौद्धोंके अत्याचारसे नष्ट हो गये थे। उनका शङ्करने जीर्णोद्धार किया और तीन वर्षोंतक काशीमें रह कर ब्रह्मसूत्र भाष्य आदि अनेक ग्रन्थ लिखे। उपनिषद्भाष्य, गीता-भाष्य, सनत्सुजातीय, नृसिंहतापिनी आदि ग्रन्थ शङ्करने बदरिका-श्रममें लिखे और अनेक तीर्थ क्षेत्रोंमें अनेक देवताओंके सैकड़ों मनोहर स्तव बनाये। काशीमें स्पर्शास्पर्शका बड़ा विचार था। शङ्करने अनेक शास्त्रार्थ कर, बौद्धोंके मतका खण्डन किया और चातुर्वर्ण्यकी पुनः प्रतिष्ठा कर, दशविध ब्राह्मणोंका प्रबन्ध किया। चातुर्वर्ण्यधर्म जिनका शिथिल हो गया था, उनमेंसे जो ब्राह्मण-तुल्य थे (जैसे नैपाली, पहाड़ी आदि) उन्हें ब्राह्मणके, क्षत्रिय-तुल्योंको क्षत्रियोंके, वैश्यतुल्योंको वैश्योंके अधिकार दिये और ब्रह्मचर्य्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ आदि आश्रमोंका पुनः प्रचार किया। अनेक ग्रन्थोंकी रचना, सामाजिक और धार्मिक सुधार तथा भ्रम-मूलक मतोंके प्रतिभापूर्ण खण्डनसे शङ्करके अनेक अनुयायी तथा शिष्य बन गये। १६ वर्षोंकी अवस्थामें समस्त भारतवर्षका भ्रमण कर, शङ्करने अद्वैतमतकी पताका समस्त संसारमें फहरा दी और अनेक शतकोंसे विशृङ्खल हुई हिन्दुजातिको पुनः सुशृङ्खल बना दिया। शङ्करकी मृत्युका दिन निकट आते देख, व्यासनारायणने अपनी आयुसे उन्हें और १६ वर्ष देकर शङ्करसे दिग्विजय करनेका अनुरोध किया। क्योंकि महत्कार्यका स्थायी प्रबन्ध न किया जानेसे अनेक शतकोंके किये हुए कष्ट मिट्टीमें मिल जाते हैं। यही सोचकर शङ्करने व्यासके कथनानुसार सुधन्वा राजाको स-सैन्य साथ लेकर दिग्विजय करना प्रारम्भ किया।

प्रयागमें कुमारिलभट्ट नामक एक परम प्रसिद्ध वैदिक-धर्म-प्रचारक विद्वान् ब्राह्मण रहते थे। उन्होंने ईश्वरवादका खण्डन

किया था और अपने बौद्ध गुरुसे 'मैं ब्राह्मण नहीं हूँ' इस प्रकार झूठ बोलकर शिक्षा प्राप्तकी थी तथा पीछेसे बौद्धोंका खण्डन किया था। इस अपराधसे बौद्धोंने उन्हें एक ऊँचे मकानसे ढकेल दिया था और कहा था कि, तुम्हारा वैदिक धर्म सत्य होगा, तो तुम नहीं मरोगे। परमात्माकी कृपासे वे मरे नहीं, पर लंगड़े हो गये। अन्तमें उन्हें ईश्वरपर विश्वास हो गया था। पूर्व विचारोंके (ईश्वर-निरासके) पश्चात्तापसे उन्होंने प्रायश्चित्तस्वरूप आत्म-यज्ञ करना निश्चित कर लिया था। वे चिता रचकर जल ही रहे थे कि, इतनेमें शङ्कर शास्त्रार्थके लिये उपस्थित हो गये। शङ्करने उन्हें बहुत समझाया कि, आपका पातक प्राणदण्डके योग्य नहीं है। वह आपकी नीति थी, विचार-स्वातन्त्र्य था, पर भट्टपादने शङ्करकी एक नहीं सुनी। लाचार हो, शङ्करने शास्त्रार्थकी भिक्षा मांगी। उसपर भट्टपादने कहा कि, मेरा शिष्य मण्डनमिश्र है, उसे हरानेसे मैं हारेके समान हूं। इस समय आप स्वयं शङ्कर मेरे सम्मुख हैं। कृपया मुझे उपदेश देकर कृतार्थ कीजिये। भगवान् आपको विजयी करेंगे। शङ्करने उन्हें तारकमन्त्रका उप-देश दिया। भट्टपादने चितामें अग्नि लगा दी। शङ्करके सम्मुख भट्टपाद जल गये। वह कैसा विचित्र दृश्य था? धन्य भारत! तेरे पुत्र ज़रासा झूठ बोलनेके कारण पश्चात्तापसे प्राण तक विसर्जन कर देते थे। क्या संसारके इतिहासमें ऐसा दूसरा उदाहरण कोई दिखा सकता है?

माहिष्मतीमें मण्डनसे १४ दिनों तक शास्त्रार्थ हुआ। सभा-पति मण्डनकी स्त्री सरस्वती हुई थी। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि, उस समय स्त्री-शिक्षाका अच्छा प्रचार था। मण्डनके हार जानेपर सरस्वतीने कहा कि, आपने आधे अङ्गको हराया है, आधा अङ्ग मैं बाकी हूं। उसे हराकर आप विजयी होंगे। स्त्रियोंसे

शास्त्रार्थ करनेको शङ्कर प्रस्तुत नहीं हुए। सरस्वतीने सुलभा, मैत्रेयी, गार्गी आदिके उदाहरण देकर उन्हें शास्त्रार्थमें प्रवृत्त कराया। शङ्करसे सरस्वतीने काम-शास्त्र सम्बन्धी प्रश्न किये। शङ्कर बाल-ब्रह्मचारी होनेके कारण उत्तर नहीं दे सके। क्योंकि यदि वे यतिशरीरसे स्त्रीशरीरमें संयम करते, तो उनका यतिधर्म नष्ट हो जाता। अतः छः महीनोंमें उत्तर देनेका उन्होंने अभिवचन दिया। सरस्वती सहमत हो गई। शंकरने अपना शरीर शिष्योंको सौंपकर उस नगरके राजा अमरकके उसी दिन गतप्राण हुए मृत शरीरमें प्रवेश किया। उसी शरीरमें उन्होंने कामशास्त्र सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त कर, वात्स्यायनप्रणीत कामसूत्रोंपर उत्तम भाष्य बनाया। छः मास बीतनेपर पुनः शंकर अपने शरीरमें आकर सरस्वतीसे शास्त्रार्थ करने गये। परन्तु सरस्वतीने सब बातें ताड़ ली थीं। तुरन्त उसने हार मान ली और मण्डन शंकरके शिष्य बन गये। उस समय सरस्वतीने भी कामशास्त्रनिपुण आचार्यको जानकर सतीत्वव्रतका भङ्ग होनेके भयसे हार स्वीकार कर ली।

फिर शंकर काश्मीर गये। वहां एक बहुमूल्य सर्वज्ञ-सिंहासन बना था—जिसे इस समय 'तख़्ते सुलेमान' कहते हैं—उसपर वहांकी राजाज्ञासे वही बैठ सकता था, जो संसारके सब धर्मोंके प्रतिनिधियोंको शास्त्रार्थमें हरा दे। शंकरने बातों बातोंमें सबको हरा कर सर्वज्ञ-सिंहासनपर पदार्पण किया। तबसे शंकर सर्वज्ञ माने जाने लगे। वहां शंकरको समाचार मिला कि, उनकी माता अस्वस्थ हैं। तुरन्त वे माताके निकट आये। माता पुत्रके दर्शनसे अत्यन्त सन्तुष्ट हुई। जीर्णकलेवरा माताका पुत्रके आगे आनन्दसे देहान्त हो जानेपर शंकरने माताके देहका उत्तम संस्कार किया। उनके कुटुम्बी उनकी सम्पत्ति तो हड़प कर गये, पर उनकी माता तथा उनके साथ उन्होंने अच्छा व्यवहार नहीं किया।

इससे दुःखित हो, शंकरने उन्हें शाप दिया कि, तुम कभी विद्वान् और धनी नहीं होगे। तदनुसार शंकरके कुटुम्बी अभी तक निर्धन और मूढ़ हैं। श्रीबली नामक स्थानमें प्रभाकर पण्डितके मूर्ख पुत्रको उन्होंने आशीर्वादसे पण्डित बनाकर अपना शिष्य बना लिया। इसी तरह गोकर्णक्षेत्रमें एक मृत पुत्रको उन्होंने तपोबलसे जिला दिया था। इसके बाद उन्होंने पुनः दिग्विजयके लिये यात्रा प्रारम्भ की। रामेश्वर, कांची, उज्जैन, नैपाल, द्वारका, जगन्नाथ, दरद, भरत, शूरसेन, कुरु, पाञ्चाल, मगध, मिथिला, कोशल, गौड़, वङ्ग आदि देशोंमें शास्त्रार्थ कर और कहीं कहीं युद्ध कर उन्होंने अनेक मतमतान्तरोंका खण्डन और मण्डन किया तथा वैदिक मार्गकी पुनः प्रतिष्ठा की। यह कार्य चिरस्थायी होनेके लिये उत्तरमें ज्योतिर्मठ, दक्षिणमें शृंगेरीमठ, पूर्वमें गोवर्द्धनमठ और पश्चिममें शारदामठकी स्थापना की और उनपर अपने चार प्रधान शिष्य बैठा दिये; जिनकी परम्परा आजतक चली आती है। वे मठ हिन्दुओं-के पवित्र धर्माचार्योंके क्षेत्र माने जाते हैं और उनपर अनेक महात्मा ग्रन्थकारोंने अधिष्ठान कर हिन्दुधर्मकी सब तरहसे सुरक्षा की है। श्रीभगवान्‌की जीवनीमें सबसे बड़ा कार्य यह हुआ था कि, उन्होंने इन चारों धर्मराज्योंके स्थापन द्वारा भारतवर्षको एक अनुशासन व्यवस्था (Organisation)में बाँध दिया था। जिस अनुशासन व्यवस्थाके लिये आज युरोप जगद्गुरु कहाता है; उसकी शिक्षा सबसे पहिले भगवान् शङ्करने जगत्‌को दी थी।

शंकरने अपने छोटेसे जीवनमें जैसी स्वदेशसेवा की, वैसी आजतक किसीने नहीं की है। उनके जीवनकी हरएक बात अलौकिक है। उनकी प्रतिभा, तपोबल, समाजके प्रबन्धकी चातुरी, वर्णाश्रमधर्मकी पुनः प्रतिष्ठा, आदर्श यतिधर्म, वेदोंका उद्धार, राजनीतिनिपुणता, अद्भुत वक्तृता, चिरस्थायी ग्रन्थ रचना, दृढ़

अनुशासन व्यवस्थाकी स्थापना, मानसिक तथा शारीरिक शक्ति एवम् पवित्रता आदि बातें मनुष्यको आश्चर्य चकित किये बिना नहीं रहतीं। आशीर्वादसे मूढ़को सज्ञान बनाना, मुर्देको जिलाना, व्यासके द्वारा अधिक आयुकी प्राप्ति करना, शापसे किसीको निरन्तरके लिये दुखी बना देना, परकाया प्रवेश करना, नदीका प्रवाह बदलना, ये सब बातें यद्यपि असम्भव जान पड़ती हैं, तथापि विद्वान् लोग उन्हें एकदम असम्भव नहीं मान सकते। परमात्माके साम्राज्यमें ऐसी अनन्त बातें छिपी पड़ी हैं, जिनका जान लेना मनुष्यकी शक्तिके बाहर है। कहते हैं कि, गंगोत्रीके मार्गमें जो गरम पानीकी धाराएँ बहती हैं, उनका प्रवाह सबसे पहिले शङ्करकी ही कृपासे प्रकट हुआ था। जो हो, बत्तीस वर्षोंकी अवस्थामें श्रीशंकराचार्यने निष्काम कर्मयोगकी इतनी गहरी साधना की कि, सम्पूर्ण जगत्को उन्होंने चिरकालके लिये ऋणी बना लिया है।

बत्तीस वर्ष बीत जानेपर बदरिकाश्रममें भगवान् शङ्कराचार्यने देह विसर्जन किया। इस समय उनके सब अभीष्ट सिद्ध हो चुके थे। भारत पुनः सर्वाङ्गसुन्दर हो गया था। अनेक धर्मोंके असंख्य लोग आंखोंमें आंसू भरकर वहां उपस्थित हुए थे। शङ्करके सुगठित गौर शरीरकी दिव्यकान्ति, विशाल कमल नेत्रोंका अपूर्व तेज, आरक्त ओष्ठ, अरुणवर्ण चरणतल, कुन्ददन्त, उन्नतवक्ष आदि देहान्तके पश्चात् भी ज्योंके त्यों थे। उनकी गम्भीर मूर्ति देखकर अनुमान होता था कि, भगवान् अभी आविर्भूत होकर संसारको ज्ञानामृत पान करानेको उत्कण्ठित हो रहे हैं और समस्त मानवजातिको आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक तथा शारीरिक, मानसिक एवम् आर्थिक स्वातन्त्र्यका अपनी मौन वाणीसे पाठ पढ़ा रहे हैं। इसी भावको लक्ष्य कर, उनके एक शिष्यने कहा है:—

" चित्रं वटतरोर्मूले वृद्धाः शिष्याः गुरुर्युवा।
गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यास्तु छिन्नसंशयाः॥"

" आश्चर्य है कि, वटवृक्षके निकट अनेक वृद्ध शिष्य युवा गुरुके पास उपस्थित हुए हैं। गुरु मौन वाणीसे ही उपदेश दे रहे हैं, जिससे शिष्योंके सन्देह मिट गये।" अर्थात् शङ्करके आचरणको ही देखकर मनुष्य ज्ञानी हो सकता है। यह योग्यता शंकर भगवान्‌के सिवा और किसीमें नहीं है।

शङ्करका शरीर अब इस लोकमें नहीं है, परन्तु उनकी आत्मा प्रत्येक मनुष्यकी आत्माके साथ इतनी मिल गयी है कि, शास्त्रीय चिन्ता करते समय संसारका कोई शिक्षित पुरुष शंकरके स्थिर किये हुए सिद्धान्तोंको छोड़कर एक पूरा वाक्य भी नहीं बोल सकता। इसीसे शंकर अवतार माने जाते हैं। शंकरने संसारमें जैसी चिरस्थायी विचारक्रान्ति की, वैसी आज तक कोई नहीं कर सका है। हमारी भाग्यशालिनी रत्नप्रसवा भारतभूमि धन्य है! जिस भूमिमें जगद्गुरु भगवान् शंकराचार्य जैसोंका पुत्र-रूपसे आविर्भाव हो सकता है, उस तेजस्विनी वीरमाताका जयजयकार हो! जो भारतके सर्वज्ञसिंहासनपर आरोहण करने-वाले ज्ञानी पुरुषका सृजन कर सकता है, उस भारतका जयजय-कार हो! और जिस स्वातन्त्र्यप्रिय स्वार्थत्यागी महात्माने अपने आचरणसे पवित्र भारतको जगद्गुरु बना डाला, उस भारतके प्राणस्वरूप भगवान् शंकराचार्यका जयजयकार हो!

——:*:——

श्रीरामानुजाचार्य।

—:०:—

श्री रामानुजाचार्य्यका जन्म मद्रास प्रान्तके भूतपुरी नामक ग्राममें सन् १०१७ की चैत्र शुक्ला ५ गुरुवारको मध्याह्नके समय हुआ। आपके पिताका नाम केशव और माताका नाम कान्तिमती था। इन्हें कोई हारीत वंशीय ब्राह्मण, कोई क्षत्रिय और कोई शूद्र भी सिद्ध करते हैं। हम उनके जातिनिर्णयके झगड़ेमें नहीं पड़ना चाहते, क्योंकि वह काम इतिहास-कोविदोंका है। हमें उनके उन कार्योंको देखना है, जिनसे वे सुप्रसिद्ध हुए और देशका कल्याण हुआ।

इसमें सन्देह नहीं कि, रामानुज असाधारण मेधावी महात्मा थे। उनकी प्रतिभाको देख, बड़े बड़े पण्डित ही नहीं, किन्तु उनके गुरु भी चकित हो जाते थे। उनकी बुद्धिमत्ताका प्रधान प्रमाण तो यह है कि, त्रिकालाबाधित अद्वैतवादके खण्डनमें उन्होंने लेखनी चलाई थी। अद्वैतवाद जैसे अतिसूक्ष्म विज्ञानवादका खण्डन करना साधारण बात नहीं है। अद्वैत सिद्धान्तसे उनका अकस्मात् मतभेद हुआ, उसकी कथा इस प्रकार है :—

आठवें वर्षमें यज्ञोपवीत संस्कार और सोलहवें वर्षमें उनका विवाह होनेपर उनके पिताका देहान्त हो गया था। तबतक व्याकरण-काव्य आदि उन्होंने पढ़ लिये थे। इसके उपरान्त वे काञ्चीमें प्रेममयी जननी और प्रणयिनी पत्नीके साथ आ बसे और उस समयके दर्शनशास्त्रके प्रचण्ड पण्डित यतिवर यादवप्रकाशके पास दर्शनशास्त्रका अध्ययन करने लगे। पिता-पितामह द्वारा उपार्जित विपुल सम्पत्ति उनके पास होनेके कारण उन्हें अर्थ-चिंता नहीं थी और ज्ञानपिपासा प्रबल थी, इससे उन्होंने अपनी सब शक्ति पढ़नेमें लगा दी।

एक दिन वेदान्तदर्शन पढ़ाते हुए यादवप्रकाशने "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" "नेह नानास्ति किञ्चन" इन श्रुतियोंकी व्याख्या की,—"यह सब कुछ (जगत् आदि) ब्रह्म है, ब्रह्मभिन्न कुछ भी नहीं है। हम लोग जो भिन्न भिन्न पदार्थ देखते हैं, यह सब मायाका विलास, अर्थात् आभास, मिथ्या है।" इस व्याख्यासे सहमत न होकर रामानुजने कहा,—"गुरुजी ! इन श्रुतियोंका यह अर्थ नहीं जँचता। इनका अर्थ तो यह होना चाहिये कि, यह सारा जगत् ईश्वर द्वारा अधिष्ठित है, प्रत्येक पदार्थमें ईश्वर विराजमान है। ईश्वर जगत्का आत्मा है, उससे पृथक् होकर कोई वस्तु ठहर नहीं सकती।"

इस व्याख्यासे अद्वैत सिद्धान्तपर ही कुठाराघात होते देख, गुरुजी झल्ला उठे। वे कुछ उत्तर तो दे नहीं सके, किन्तु झाड़ फटकार सुनाकर उन्होंने रामानुजको पाठशालासे निकाल दिया। रामानुज इस अपमानसे दुःखित नहीं हुए और शास्त्रचिन्तामें लगे रहे। आगे चल कर उन्होंने ब्रह्मसूत्रोंपर अपना एक भाष्य बनाया, जिसका नाम 'श्रीभाष्य' रक्खा और उन्होंने जो सम्प्रदाय चलाया, उसे 'श्रीसम्प्रदाय' कहते हैं। श्रीभाष्यमें श्रुतियोंके किये उक्त अर्थको पुष्ट करनेका ही प्रयत्न किया गया है। इससे जो सिद्धान्त निकला, वह 'विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त' के नामसे प्रसिद्ध है। वैष्णवोंके विशिष्टाद्वैत, द्वैत, द्वैताद्वैत और शुद्धाद्वैत ये जो चार मत हैं, उनमें विशिष्टाद्वैतका ही प्रचार अधिक हुआ। क्योंकि इसके प्रवर्तक रामानुज वैष्णवोंके आदि भाष्यकार हैं और उन्होंने अपने मतके प्रचारमें सबसे अधिक पुरुषार्थ किया है।

यादवप्रकाश एक बार रामानुजको प्रयाग चल कर त्रिवेणीस्नान करा लानेकी लालच दे, विन्ध्याचलके अरण्य तक साथ लिवा लाया। उसने सोचा, मार्गमें या त्रिवेणीमें डुबाकर रामानुजको

मार डालूँगा। 'रहेगा बाँस न बजेगी बाँसरी!' न यह रहेगा, न मेरी व्याख्याका खण्डन करेगा। परन्तु 'अपने मन कछु और है, कर्ताके कछु और!' यादवके दुर्दैवसे उसके शिष्योंमें रामानुजके मौसेरे भाई गोविन्दार्य भी थे, उन्होंने गुरुजीके शिष्यहनन-सम्बन्धी विचार जान लिये थे। वे भला रामानुजको विना चिताये कैसे रहते? उनसे गुरुजीके सुविचारोंको सुनते ही रामानुज चुपकेसे जङ्गलमें भाग गये और सीधे काञ्ची पहुंचे। कहते हैं, भील भीलनीके वेषमें साथ होकर उनके उपास्यदेव वरदराज और लक्ष्मी देवीने उन्हें घर पहुँचाया।

घर आनेपर वे पढ़नेके अतिरिक्त माताकी आज्ञासे वरदराजके मन्दिरके मुखिया काञ्चीपूर्णके पास रह कर देवसेवाका जल भी भर ला देते थे। काञ्चीपूर्णके गुरु यामुनाचार्य अपनी श्रीरङ्गम्‌की गद्दीके लिये बढ़ियाँ चेला चाहते थे। रामानुजके रूपको देख, वे बड़े प्रसन्न हुए। इधर यादवसे रामानुजका मन मोटा होगया था, उधर यामुनाचार्यने अपने शिष्य पूर्णाचार्यको रामानुजके पास, उन्हें किसी प्रकार समझा बुझाकर ले आनेके लिये भेजा। रामानुजको भी किसी अच्छे गुरुकी आवश्यकता थी। वे यामुनाचार्यके शिष्य होनेको तैयार होगये। परन्तु इनके पहुँचते पहुँचते यामुनाचार्यका देहान्त होगया। तब पूर्णाचार्यने ही उन्हें दीक्षित कर, सब वैष्णवोंकी सम्मतिसे गुरुकी गद्दीपर बैठा दिया। रामानुज गृहस्थी त्याग सन्न्यासी बन गये।

सर्वसाधारणमें भक्तिका प्रचार करना ही आचार्यका जीवनोद्देश्य था। तदनुसार भक्तिसुधाधाराका उन्होंने प्रवाह बहा दिया। यहाँ तक कि, उनके गुरुके गुरुभाई गोष्ठीपूर्णने उन्हें मन्त्रार्थ रहस्य बताकर कहा था कि, यह अनधिकारीको न सुनाना। परन्तु नृसिंहदेवकी यात्राके समय मन्दिरके द्वारपर बैठकर सब यात्रियोंको

उन्होंने मन्त्रार्थरहस्य सुना दिया, जो ७४ वैष्णवोंने ग्रहण किया। इससे असन्तुष्ट हो, गोष्ठीपूर्णने उनसे पूछा,—"इस गुरुअवज्ञाका फल तुम्हें क्या होगा?" आचार्यने कहा,—"नरक।" तब वे बोले,—"फिर तुमने यह काम क्यों किया?" रामानुजने उत्तर दिया,—"नरकमें तो केवल मैं अकेला जाऊँगा, किन्तु इस रहस्यको जान कर कितने ही मनुष्योंका उद्धार हो जायगा।" मानवजाति-पर समान भावसे कृपा करनेकी आचार्यकी प्रवृत्ति देख, गोष्ठीपूर्ण अवाक् होगये। स्वयं नरक भोगनेको तैयार होकर जनताके लिये स्वर्गके-ज्ञानके-द्वार खोल देनेवाले महात्मा धन्य हैं!

श्रीभाष्यके अतिरिक्त वेदान्तप्रदीप, वेदान्तसार, गीताभाष्य, गद्यत्रय आदि कई ग्रन्थोंकी रामानुजने रचना की और चारों धामकी यात्रा कर, वैष्णवधर्मकी पताका जहाँ तहाँ फहरा दी। बड़े बड़े राजा, विद्वान् आदि उनके शिष्य हुए, जिनमें मन्त्रार्थ रहस्यको ग्रहण किये हुए ७४ वैष्णव प्रधान थे। उन्होंने कई मठ-मन्दिर बनवाये, अपने सम्प्रदायका सुप्रबन्ध किया, अपने सामने ही अपनी प्रस्तरमूर्तियाँ श्रीरङ्गम् तथा भूतपुरीमें स्थापित कराईं और अपनी गद्दीपर कूरेशभट्टार्यको बैठाकर प्रसन्नचित्तसे माघ शुक्ला दशमी शनिवारको मध्याह्नके समय इहलोककी यात्रा समाप्त की। कहते हैं कि, देहावसानके समय उनका वयस् १२० वर्षोंका था।

"शत्रोरपि गुणा वाच्या दोषा वाच्या गुरोरपि।" आचार्य इस सिद्धान्तके थे। सत्यके प्रचारके लिये वे नरकसे भी नहीं डरते थे और सत्यके लिये गुरुसे भी भिड़नेमें सङ्कोच नहीं करते थे। विचार-स्वातन्त्र्य प्रत्येक व्यक्तिको होना चाहिये। उस स्वातन्त्र्यका उपयोग कर, अपने मतानुसार जनताके कल्याणमें उन्होंने अपना जीवन समर्पण किया था। उनके चरित्रसे सत्यनिष्ठा और पुरुषार्थपरायणताकी शिक्षा ग्रहण करने योग्य है।

श्रीमध्वाचार्य ।



मध्वाचार्य और श्रीवल्लभाचार्यने भी ब्रह्मसूत्रपर भाष्य बनाये हैं। उनके नाम हैं 'मध्वभाष्य' और 'अणु-भाष्य' मध्वाचार्यके सिद्धान्तको 'द्वैत' और वल्लभाचार्यके सिद्धान्तको 'शुद्धाद्वैत' कहते हैं। रामानुज, मध्व और वल्लभके अति-रिक्त सम्प्रदाय-प्रवर्तक एक और प्रसिद्ध वैष्णवाचार्य हुए। उनका नाम निम्बार्काचार्य था। उनका मत 'द्वैताद्वैत' नामसे प्रसिद्ध है। प्रायः सब वैष्णवाचार्योंने भगवान् शङ्कराचार्यजीके 'अद्वैत' सिद्धान्तका खण्डन करनेमें ही अपनी बुद्धि और शक्तिका उपयोग किया तथा मानवी अन्तः-करणोंपर शीघ्र परिणाम करनेवाले भक्तिमार्गका सर्वसाधारणमें प्रचार कर भारतवर्षमें प्रतिष्ठा पाई। अज्ञ शिष्यों-की वृद्धि द्वारा सम्पत्ति संग्रह करनेमें तो वैष्णवाचार्य एकसे बढ़-कर एक हुए। वल्लभ-सम्प्रदायके मन्दिरोंमें इस समय जैसी सम्पत्ति है, वैसी बड़ेसे बड़े महाराजाओंके पास कदाचित् ही होगी। वैष्णवोंमें रूढ़ीकी इतनी प्रबलता है कि, कैसा ही वेद-पाठी विशुद्ध ब्राह्मण क्यों न हो, सम्प्रदायके आचार्यसे विष्णुमन्त्र लिये बिना या कण्ठी बांधे बिना वह अछूत समझा जाता है और कण्ठीबन्द मूर्ख शूद्र उससे पवित्र माना जाता है। वैष्णवोंके आचार-विचारोंमें भी ऐसा ही अतिरेक देख पड़ता है। परन्तु ये सब दोष अनुयायियोंके हैं, सम्प्रदायके प्रवर्तक आचार्योंके नहीं। आचार्योंके हृदयोंमें भगवद्ज्योतिका प्रकाश हुआ था, इसीसे वे महात्मा कहलाये। उनमें भी भाष्यकार तीनों आचार्योंकी

विद्वत्ता और बुद्धिमत्ताके सम्बन्धमें तो किसीका मतभेद हो ही नहीं सकता ।

अस्तु, उडुपी नगरके निकट पाजिका क्षेत्रमें मध्वगेह नामक चरित्रवान् ब्राह्मणके घर सन् १२०० ई० में मध्वाचार्यका जन्म हुआ था । विना असाधारण बुद्धिके कोई मनुष्य आचार्यपदको नहीं पा सकता । यज्ञोपवीत संस्कारके पश्चात् अर्थात् नौ वर्षोंकी अवस्थामें ही विद्याध्ययन समाप्त कर, उन्होंने अच्युताचार्यजीसे संन्यास दीक्षा ग्रहण कर ली और थोड़े ही दिनोंमें ब्रह्मसूत्रोंपर भाष्य लिखकर शैव-वैष्णव जगत्को चकित कर डाला । उनका जन्मनाम वासुदेव था, परन्तु शीघ्र संन्यास ग्रहण करनेके कारण 'आनन्दतीर्थ' इस दीक्षानामसे ही वे प्रसिद्ध हुए । आनन्दतीर्थने अनेक देशोंमें परिभ्रमण कर तथा अनेक पण्डितोंसे शास्त्रार्थ कर अपने मतका अच्छा प्रचार किया । दक्षिण भारत, कर्नाटक और महाराष्ट्रमें माध्व मतके अधिक अनुयायी हुए । मध्वाचार्यको अद्वैतवादियोंकी तरह रामानुजियोंके साथ भी झगड़ना पड़ा था । इनके ग्रन्थोंसे इनका प्रगाढ़ पाण्डित्य प्रकट होता है । धनलोभ मध्वाचार्यमें कम होनेसे इन्होंने शिष्यपरम्पराको बढ़ानेका अधिक उद्योग नहीं किया । अधिकारी स्त्री-पुरुषोंको ही वे मन्त्रोपदेश करते थे । इनके मतमें वैदिक आधार अधिकांशसे पाया जाता है । ४० वर्षोंकी अवस्थामें आचार्यका देहावसान होनेपर उनके शिष्य जयतीर्थने न्यायदीपिका, तत्त्वप्रकाशिका, उपाधिखण्डन, आदि अनेक ग्रन्थ निर्माण कर उत्तर हिन्दुस्थानमें गयाजी तक अपने मतकी पताका फहरा दी । आचार्य बड़े ही संयमी, सदाचारी, योगी और देशसेवी थे ।

श्रीविश्वनाथो जयति।

धर्मप्रचारका सुलभ साधन।

समाजकी भलाई! मातृभाषाकी उन्नति!!

देशसेवाका विराट् आयोजन!!!



इस समय देशका उपकार किन उपायोंसे हो सकता है? संसारके इस छोरसे उस छोरतक चाहे किसी चिन्ताशील पुरुषसे यह प्रश्न कीजिये, उत्तर यही मिलेगा कि, धर्मभावके प्रचारसे; क्योंकि धर्मने ही संसारको धारण कर रक्खा है। भारतवर्ष किसी समय संसारका गुरु था, आज वह अधःपतित और दीन हीन दशामें क्यों पच रहा है? इसका भी उत्तर यही है कि, वह धर्मभावको खो बैठा है। यदि हम भारतसे ही पूछें कि, तू अपनी उन्नतिके लिये हमसे क्या चाहता है? तो वह यही उत्तर देगा कि, मेरे प्यारे पुत्रों! धर्मभावकी वृद्धि करो। संसारमें उत्पन्न होकर जो व्यक्ति कुछ भी सत्कार्य करनेके लिये उद्यत हुए हैं, उन्हें इस बातका पूर्ण अनुभव होगा कि, ऐसे कार्यों में कैसे विघ्न और कैसी बाधाएँ उपस्थित हुआ करती हैं। यद्यपि धीर पुरुष उनकी पर्वाह नहीं करते और यथासंभव उनसे लाभ ही उठाते हैं; तथापि इसमें सन्देह नहीं कि, उनके कार्यों में उन विघ्नबाधाओंसे कुछ रुकावट अवश्य ही हो जाती है। श्रीभारतधर्ममहामण्डलके धर्मकार्य्यमें इस प्रकारकी अनेक बाधाएँ होनेपर भी अब उसे जनसाधारणका हित-साधन करनेका सर्वशक्तिमान् भगवान्ने सुअवसर प्रदान कर दिया है। भारत अधार्मिक नहीं है, हिन्दूजाति धर्म्मप्राण जाति है, उसके रोम रोममें धर्म्मसंस्कार ओतप्रोत हैं। केवल वह अपने रूपको, धर्मभावको, भूल रही है। उसे अपने स्वरूपकी पहिचान करा देना—धर्मभावको स्थिर रखना ही श्रीभारतधर्म्ममहामण्डलका एक पवित्र और प्रधान उद्देश्य है। यह कार्य्य २२ वर्षोंसे महामण्डल कर रहा है और ज्यों ज्यों इसको अधिक सुअवसर मिलेगा, त्यों त्यों वह जोर शोरसे यह काम करेगा। उसका विश्वास है कि, इसी

उपायसे देशका सच्चा उपकार होगा और अन्तमें भारत पुनः अपने गुरुत्वको प्राप्त कर सकेगा।

इस उद्देश्यसाधनके लिये सुलभ दो ही मार्ग हैं। (१) उपदेशकों द्वारा धर्मप्रचार करना और (२) धर्म-रहस्य सम्बन्धीय मौलिक पुस्तकोंका उद्धार और प्रकाश करना। महामण्डलने प्रथम मार्गका अवलम्बन आरम्भसे ही किया है और अब तो उपदेशक महाविद्यालय स्थापित कर महामण्डलने वह मार्ग स्थिर और परिष्कृत कर लिया है। दूसरे मार्गके सम्बन्धमें भी यथायोग्य उद्योग आरम्भसे ही किया जा रहा है, विविध ग्रन्थोंका संग्रह और निर्माण करना, मासिकपत्रिकाओंका सञ्चालन करना, शास्त्रीय ग्रंथोंका आविष्कार करना, इस प्रकारके उद्योग महामण्डलने किये हैं और उनमें सफलता भी प्राप्त की है; परन्तु अभी तक यह कार्य संतोषजनक नहीं हुआ है। महामण्डलने अब इस विभागको उन्नत करनेका विचार किया है। तदनुसार दस लाखके मूलधनसे भारतधर्म सिण्डिकेट लिमिटेड नामकी कम्पनी महामण्डलने स्थापित की है उसके द्वारा कमसे कम दो लाख मूलधन लगाकर पुस्तक प्रकाशनका कार्य प्रारम्भ हो गया है। महामण्डलने अपनी संरक्षकतामें परिचालित निगमागम बुकडिपो भी उक्त सिण्डिकेटको दे दिया है।

उपदेशकों द्वारा जो धर्मप्रचार होता है उसका प्रभाव चिरस्थायी होनेके लिये उसी विषयकी पुस्तकोंका प्रचार होना परम आवश्यक है; क्योंकि वक्ता एक दो वार जो कुछ सुना देगा, उसका मनन विना पुस्तकोंका सहारा लिये नहीं हो सकता। इसके सिवाय सब प्रकारके अधिकोंरियोंके लिये एक वक्ता कार्यकारी नहीं हो सकता। पुस्तकप्रचार द्वारा यह काम सहल हो जाता है। जिसे जितना अधिकार होगा, वह उतने ही अधिकारकी पुस्तकें पढ़ेगा और महामण्डल भी सब प्रकारके अधिकारियोंके योग्य पुस्तकें निर्माण करेगा। सारांश, देशकी उन्नतिके लिये, भारत गौरवकी रक्षाके लिये और मनुष्योंमें मनुष्यत्व उत्पन्न करनेके लिये महामण्डलने अब पुस्तक प्रकाशन विभागको उक्त सेण्डिकेट द्वारा अधिक उन्नत करनेका विचार किया है और उसकी सर्वसाधारणसे प्रार्थना है कि, वे ऐसे सत्कार्य्यमें इसका हाथ बटावें एवं इस ज्ञानप्रचारक

कार्य्यमें इसकी सहायता कर अपनी ही उन्नति कर लेनेका प्रस्तुत हो जावें।

श्रीभारतधर्ममहामण्डलके व्यवस्थापक पूज्यपाद श्री १०८ स्वामी ज्ञानानन्दजी महाराजकी सहायतासे काशीके प्रसिद्ध विद्वानोंके द्वारा सम्पादित होकर प्रामाणिक, सुबोध और सुदृश्यरूपसे यह ग्रन्थमाला निकलेगी। ग्रंथमालाके जो ग्रन्थ छपकर प्रकाशित हो चुके हैं उसकी नीचे सूची प्रकाशित की जाती है।

स्थिर ग्राहकोंके नियम।

(१) इस समय हमारी ग्रन्थमालामें निम्नलिखित ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं:—

मंत्रयोगसंहिता (भाषानुवादसहित)	१)
हठयोगसंहिता ,,	॥)
भक्तिदर्शन (भाषाभाष्य सहित)	१)
योगदर्शन (भाषाभाष्य सहित नूतन संस्करण)	२)
दैवीमीमांसादर्शन प्रथम भाग (भाषाभाष्यसहित)	१॥)
कल्किपुराण (भाषानुवाद सहित)	१)
नवीन दृष्टिमें प्रवीण भारत (नवीन संस्करण)	१)
उपदेश पारिजात (संस्कृत)	॥)
गीतावली	॥)
भारतधर्ममहामण्डल रहस्य (नूतन संस्करण)	१)
धर्मकल्पद्रुम प्रथम खण्ड	२)
,, द्वितीय खण्ड	१॥)
,, तृतीय खण्ड	२)
,, चतुर्थ खण्ड	२)
,, पञ्चम खण्ड	२)
,, षष्ठ खण्ड	१॥)
श्रीमद्भगवद्गीता प्रथम खण्ड (भाषाभाष्यसहित)	१)
गुरुगीता (भाषानुवाद सहित	।)
शम्भुगीता (भाषानुवादसहित)	॥)
धीशगीता ,,	॥)
शक्तिगीता ,,	॥)
सूर्य्यगीता ,,	॥)
विष्णुगीता ,,	॥)
संन्यासगीता ,,	॥)
रामगीता (भाषानुवाद और टिप्पणी सहित सजिल्द)	२॥)
आचारचन्द्रिका	।)
नीति चन्द्रिका	।)
धर्म्म चन्द्रिका	१)
साधन चन्द्रिका	१॥)

(२) इनमेंसे जो कमसे कम ४) मूल्यकी पुस्तकें पूरे मूल्यमें खरीदेंगे अथवा स्थिरग्राहक होनेका चन्दा १) भेज देंगे उन्हें शेष और आगे प्रकाशित होनेवाली सब पुस्तकें ¾ मूल्यमें दी जायँगी।

(३) स्थिर ग्राहकोंको मालामें ग्रथित होनेवाली हर एक पुस्तक खरीदनी होगी। जो पुस्तक इस विभाग द्वारा छापी जायगी वह एक विद्वानोंकी कमेटी द्वारा पसन्द करा ली जायगी।

(४) हर एक ग्राहक अपना नम्बर लिखकर या दिखाकर हमारे कार्यालयसे अथवा जहां वह रहता हो वहां महामण्डलकी शाखा सभा हो तो वहांसे, स्वल्प मूल्य पर पुस्तकें खरीद सकेगा।

(५) श्रीमहामण्डलकी जो धर्मसभा इस धर्म्मकार्य्यमें सहायता करना चाहे और जो सज्जन इस ग्रन्थमालाके स्थायी ग्राहक होना चाहें वे मेरे नाम पत्र भेजनेकी कृपा करें।

गोविन्द शास्त्री दुगवेकर, अध्यक्ष शास्त्रप्रकाश विभाग,
श्रीभारतधर्ममहामण्डल प्रधानकार्य्यालय,
मार्फत भारतधर्म सिण्डिकेट लिमिटेड भवन
स्टेशनरोड जगतगंज बनारस शहर।

इस विभाग द्वारा प्रकाशित समस्त धर्मपुस्तकोंका विवरण।

सदाचारसोपान। यह पुस्तक कोमलमति बालक बालिकाओंके धर्म्म शिक्षाके लिये प्रथम पुस्तक है। उर्दू और बंगला भाषामें इसका अनुवाद होकर छपचुका है और सारे भारतवर्षमें इसकी बहुत कुछ उपयोगिता मानी गयी है। इसकी आठ आवृत्तियाँ छप-चुकी हैं। अपने बच्चोंकी धर्मशिक्षाके लिये इस पुस्तकको हर एक हिन्दूको मँगवाना चाहिये। मूल्य -) एक आना।

कन्याशिक्षासोपान। कोमलमति कन्याओंको धर्मशिक्षा देनेके लिये यह पुस्तक बहुतही उपयोगी है। इस पुस्तककी बहुत कुछ प्रशंसा हुई है। इसका बंगला अनुवाद छप चुका है। हिन्दूमात्रको अपनी अपनी कन्याओंको धर्म्मशिक्षा देनेके लिये यह पुस्तक मंगवानी चाहिये। मूल्य -) एक आना।

धर्म्मसोपान। यह धर्मशिक्षा विषयक बड़ी उत्तम पुस्तक है। बालकोंको इससे धर्मका साधारण ज्ञान भली भांति होजाता है।

यह पुस्तक क्या बालक बालिका, क्या वृद्ध स्त्री पुरुष, सबके लिये बहुत ही उपकारी है। धर्मशिक्षा पानेकी इच्छा करनेवाले सज्जन अवश्य इस पुस्तकको मंगावें। मूल्य ।) चार आना

ब्रह्मचर्य्यसोपान। ब्रह्मचर्यव्रतकी शिक्षाके लिये यह ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी है। सब ब्रह्मचारी आश्रम, पाठशाला और स्कूलोंमें इस ग्रंथकी पढ़ाई होनी चाहिये। मूल्य ≡) तीन आना

साधनसोपान। यह पुस्तक उपासना और साधनशैलीकी शिक्षा प्राप्त करनेमें बहुत ही उपयोगी है। इसका बंगला अनुवाद भी छपचुका है। बालक बालिकाओंको पहलेसे ही इस पुस्तकको पढ़ना चाहिये। यह पुस्तक ऐसी उपकारी है कि बालक और वृद्ध समानरूपसे इससे साधनविषयक शिक्षा लाभ कर सकते हैं। मू०≡)

शास्त्रसोपान। सनातनधर्मके शास्त्रोंका संक्षेप सारांश इस ग्रन्थमें वर्णित है। सब शास्त्रोंका कुछ विवरण समझनेके लिये प्रत्येक सनातनधर्म्मावलम्बीके लिये यह ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी है। मूल्य ।) चार आना।

धर्मप्रचारसोपान। यह ग्रंथ धर्मोपदेश देनेवाले उपदेशक और पौराणिक पण्डितोंके लिये बहुत हितकारी है। मू० ≡) तीन आना।

राजशिक्षासोपान। राजा महाराजा और उनके कुमारोंको धर्मशिक्षा देनेके लिये यह ग्रन्थ बनाया गया है; परन्तु सर्वसाधारण-को धर्मशिक्षाके लिये भी यह ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी है। इसमें सनातन धर्म्मके अंग और उसके तत्त्व अच्छी तरह बताये गये हैं। मू० ≡) तीन आना।

ऊपर लिखित सब ग्रन्थ धर्मशिक्षा विषयक हैं इस कारण स्कूल कालेज और पाठशालाओंको इकट्ठे लेनेपर कुछ सुविधासे मिल सकेंगे और पुस्तक विक्रेताओंको इनपर योग्य कमीशन दिया जायगा।

मन्त्रयोगसंहिता। योगविषयक भाषानुवादसहित ऐसा अपूर्व्व ग्रन्थ आज तक प्रकाशित नहीं हुआ है। इसमें मन्त्रयोगके १६ अङ्ग और क्रमशः उनके लक्षण, साधनप्रणाली आदि सब अच्छीतरहसे वर्णन किये गये हैं। गुरु और शिष्य दोनों ही इससे परम लाभ उठा सकते

हैं। इसमें मंत्रोंका स्वरूप और उपास्यनिर्णय बहुत अच्छा किया गया है। घोर अनर्थकारी साम्प्रदायिक विरोधके दूर करनेके लिये यह एक मात्र ग्रन्थ है। इसमें नास्तिकोंके मूर्तिपूजा, मन्त्रसिद्धि आदि विषयोंमें जो प्रश्न होते हैं उनका अच्छा समाधान है। मूल्य १) एक रुपया।

हठयोग संहिता। योगविषयक ऐसा अपूर्व्व ग्रन्थ आजतक प्रकाशित नहीं हुआ है। इसमें हठयोगके ७ अङ्ग और क्रमशः उनके लक्षण, साधन प्रणाली आदि सब अच्छी तरह वर्णन किये गये हैं। गुरु और शिष्य दोनों ही इससे परम लाभ उठा सकते हैं। मू० ।॥)

भक्तिदर्शन। श्रीशाण्डिल्य सूत्रोंपर बहुत विस्तृत हिन्दी भाष्यसहित और एक अति विस्तृत भूमिका सहित यह ग्रन्थ प्रणीत हुआ है। हिन्दीका यह एक असाधारण ग्रन्थ है। ऐसा भक्ति-सम्बन्धी ग्रन्थ हिन्दीमें पहले प्रकाशित नहीं हुआ था। भगवद्भक्तिके विस्तारित रहस्योंका ज्ञान इस ग्रन्थके पाठ करनेसे होता है। भक्तिशास्त्रके समझनेकी इच्छा रखनेवाले और श्रीभगवान्‌में भक्ति करनेवाले धार्मिकमात्रको इस ग्रन्थको पढ़ना उचित है। मूल्य १)

योगदर्शन। हिन्दीभाष्य सहित। इस प्रकारका हिन्दी भाष्य और कहीं प्रकाशित नहीं हुआ है। सब दर्शनोंमें योगदर्शन सर्व-वादिसम्मत दर्शन है और इसमें साधनके द्वारा अन्तजर्गत्‌के सब विषयोंका प्रत्यक्ष अनुभव करा देनेकी प्रणाली रहनेके कारण इसका पाठन और भाष्य एवं टीका निर्माण वही सुचारु रूपसे कर सकता है जो योगके क्रियासिद्धांशका पारगामी हो। इस भाष्यके निर्माणमें पाठक उक्त विषयकी पूर्णता देखेंगे। प्रत्येक सूत्रका भाष्य प्रत्येक सूत्रके आदिमें भूमिका देकर ऐसा क्रमबद्ध बना दिया गया है कि जिससे पाठकोंको मनोनिवेश पूर्वक पढ़नेपर कोई असम्बद्धता नहीं मालूम होगी और ऐसा प्रतीत होगा कि महर्षि सूत्रकारने जीवोंके क्रमा-भ्युदय और निःश्रेयसके लिये मानों एक महान् राजपथ निर्माणकर दिया है। इसका द्वितीय संस्करण छपकर तय्यार है इसमें इस भाष्यको और भी अधिक सुस्पष्ट, परिवर्द्धित और सरल किया गया है। मू० २)

दैवीमीमांसा दर्शन प्रथम भाग। वेदके तीन काण्ड हैं, यथाः—कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड। ज्ञानकाण्ड-का वेदान्त दर्शन, कर्मकाण्डका जैमिनी दर्शन और भरद्वाज दर्शन

और उपासनाकाण्डका यह अङ्गिरा दर्शन है। इसका नाम दैवी-मीमांसा दर्शन है। यह ग्रंथ आज तक प्रकाशित नहीं हुआ था। इसके चार पाद हैं, यथाः—प्रथम रस पाद, इस पादमें भक्तिका विस्तारित विज्ञान वर्णित है। दूसरा सृष्टि पाद, तीसरा स्थिति पाद और चौथा लय पाद, इन तीनों पादोंमें दैवीमाया, देवताओंके भेद, उपासनाका विस्तारित वर्णन और भक्ति और उपासनासे मुक्तिकी प्राप्तिका सब कुछ विज्ञान वर्णित है। इस प्रथम भागमें इस दर्शन शास्त्रके प्रथम दो पाद हिन्दी अनुवाद और हिन्दी भाष्यसहित प्रकाशित हुए हैं। मूल्य १॥) डेढ़ रुपया।

कल्किपुराण। कल्किपुराणका नाम किसने नहीं सुना है। वर्तमान समयके लिये यह बहुत हितकारी ग्रन्थ है। विशुद्ध हिन्दी अनुवाद और विस्तृत भूमिका सहित यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। धर्म्म जिज्ञासुमात्रको इस ग्रन्थको पढ़ना उचित है। मूल्य १)

नवीन दृष्टिमें प्रवीण भारत। भारतका प्राचीन गौरव और आर्य-जातिका महत्त्व जाननेके लिये यह एक ही पुस्तक है। इसका द्वितीय-संस्करण परिवर्द्धित और संस्कृत होकर छप चुका है। मूल्य १)

उपदेशपारिजात। यह संस्कृत गद्यात्मक अपूर्व ग्रन्थ है। सनातनधर्म्म क्या है, धर्मोपदेश किसको कहते हैं, सनातनधर्म्मके सब शास्त्रोंमें क्या विषय है, धर्म्मवक्ता होनेके लिये किन किन योग्यताओंके होनेकी आवश्यकता है इत्यादि अनेक विषय इस ग्रन्थमें संस्कृत विद्वान्‌मात्रको पढ़ना उचित है और धर्म्मवक्ता, धर्मोपदेशक, पौराणिक पण्डित आदिके लिये तो यह ग्रन्थ सब समय साथ रखने योग्य है। मूल्य ॥) आठ आना

इस संस्कृत ग्रन्थके अतिरिक्त संस्कृत भाषामें योगदर्शन, सांख्य दर्शन, दैवीमीमांसादर्शन, आदि दर्शन सभाष्य, लययोगसंहिता, राजयोगसंहिता, हरिहरब्रह्मसामरस्य, योगप्रवेशिका, धर्मसुधाकर, श्रीमधुसूदनसंहिता आदि ग्रन्थ छप रहे हैं और शीघ्रही प्रकाशित होनेवाले हैं।

गीतावली। इसको पढ़नेसे सङ्गीतशास्त्रका मर्म्म थोड़ेमें ही समझमें आसकेगा। इसमें अनेक अच्छे अच्छे भजनोंका भी

संग्रह है। सङ्गीतानुरागी और भजनानुरागियोंको अवश्य इसको लेना चाहिये। मूल्य ॥) आठ आना।

श्रीभारतधर्ममहामण्डलरहस्य। इस ग्रन्थमें सात अध्याय हैं, यथा—आर्यजातिकी दशाका परिवर्त्तन, चिन्ताका कारण, व्याधिनिर्णय, औषधि प्रयोग, सुपथ्यसेवन, बीजरक्षा और महायज्ञ साधन। यह ग्रन्थरत्न हिन्दूजातिकी उन्नतिके विषयका असाधारण ग्रन्थ है। प्रत्येक सनातनधर्मावलम्बीको इस ग्रन्थको पढ़ना चाहिये। द्वितीयावृत्ति छप चुकी है। इसमें बहुतसा विषय बढ़ाया गया है। इस ग्रन्थका आदर सारे भारतवर्षमें समान रूपसे हुआ है। धर्मके गूढ़ तत्त्व भी इसमें बहुत अच्छी तरहसे बताये गये हैं। इसका बंगला अनुवाद भी छप चुका है। मूल्य १) एक रुपया।

श्रीमद्भगवद्गीता प्रथमखण्ड। श्रीगीताजीका अपूर्व्व हिन्दी भाष्य यह प्रकाशित हो रहा है जिसका प्रथम खण्ड, जिसमें प्रथम अध्याय और द्वितीय अध्यायका कुछ हिस्सा है, प्रकाशित हुआ है। आजतक श्रीगीताजी पर अनेक संस्कृत और हिन्दी भाष्य प्रकाशित हुए हैं परन्तु इस प्रकारका भाष्य आजतक किसी भाषामें प्रकाशित नहीं हुआ है। गीताका अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूतरूपी त्रिविध स्वरूप, प्रत्येक श्लोकका त्रिविध अर्थ और सब प्रकारके अधिकारियोंके समझने योग्य गीता-विज्ञानका विस्तारित विवरण इस भाष्यमें मौजूद है। मूल्य १) एक रुपया।

तत्त्वबोध। भाषानुवाद और वैज्ञानिक टिप्पणी सहित। यह मूल ग्रन्थ श्रीशङ्कराचार्यकृत है। इसका बंगानुवाद भी प्रकाशित हो चुका है। मूल्य =) दो आना।

स्तोत्रकुसुमाञ्जलि मूल। इसमें पञ्चदेवता, अवतार और ब्रह्मकी स्तुतियोंके साथ साथ आज कलकी आवश्यकतानुसार धर्म्म-स्तुति, गंगादि पवित्र स्थानोंकी स्तुति, वेदान्तप्रतिपादक स्तुतियां और काशीके प्रधान देवता श्रीविश्वनाथादिकी स्तुतियां हैं। मूल्य ।)

निगमागमचन्द्रिका। प्रथम और द्वितीय भागकी दो पुस्तकें धर्म्मानुरागी सज्जनोंको मिल सकती हैं। प्रत्येकका मूल्य१)एक रुपया। पहलेके पाँच सालके पाँच भागोंमें सनातनधर्म्मके अनेक गूढ़

रहस्यसम्बन्धी ऐसे २ प्रबन्ध प्रकाशित हुए हैं कि, आजतक वैसे धर्म्मसम्बन्धी प्रबन्ध और कहीं भी प्रकाशित नहीं हुए हैं। जो धर्मके अनेक रहस्य जानकर तृप्त होना चाहें, वे इन पुस्तकोंको मँगावें। मूल्य पाँचों भागोंका २॥) रुपया।

मैनेजर, निगमागमबुकडिपो।
भारतधर्म सिंडिकेट, भवन स्टेशनरोड
जगतगंज, बनारस (शहर)

सप्त गीताएं।

पञ्चोपासनाके अनुसार पाँच प्रकारके उपासकोंके लिये पाँच गीताएँ—श्रीविष्णुगीता, श्रीसूर्य्यगीता, श्रीशक्तिगीता, श्रीधीशगीता और श्रीशम्भुगीता एवं सन्न्यासियोंके लिये सन्न्यासगीता और साधकोंके लिये गुरुगीता भाषानुवादसहित छप चुकी है। श्रीभारतधर्म-महामण्डलने इन सात गीताओंका प्रकाशन निम्नलिखित उद्देश्योंसे किया हैः—१म, जिस साम्प्रदायिक विरोधने उपासकोंको धर्मके नामसे ही अधर्म्म सञ्चित करनेकी अवस्थामें पहुँचा दिया है, जिस साम्प्रदायिक विरोधने उपासकोंको अहंकारत्यागी होनेके स्थानमें घोर साम्प्रदायिक अहंकारसम्पन्न बना दिया है, भारतकी वर्तमान दुर्दशा जिस साम्प्रदायिक विरोधका प्रत्यक्ष फल है और जिस साम्प्रदायिक विरोधने साकार-उपासकोंमें घोर द्वेषदावानल प्रज्वलित कर दिया है, उस साम्प्रदायिक विरोधका समूल उन्मूलन करना और २य, उपासनाके नामसे जो अनेक इन्द्रियासक्तिकी चरितार्थता-के घोर अनर्थकारी कार्य होते हैं, उनका समाजमें अस्तित्व न रहने देना तथा ३य, समाजमें यथार्थ भगवद्भक्तिके प्रचार द्वारा इहलौकिक और पारलौकिक अभ्युदय तथा निःश्रेयसप्राप्तिकी अनेक सुविधाओंका प्रचार करना। इन सातों गीताओंमें अनेक दार्शनिक तत्त्व, अनेक उपासनाकाण्डके रहस्य और प्रत्येक उपास्य देवकी उपासनासे सम्बन्ध रखनेवाले विषय सुचारुरूपसे प्रतिपादित किये गये हैं। ये सातों गीताएं उपनिषद्रूप हैं। प्रत्येक उपासक अपने उपास्यदेवकी गीतासे तो लाभ उठावेगा ही, किन्तु, अन्य चार गीताओंके पाठ करनेसे भी वह अनेक उपासनातत्त्वोंको तथा अनेक

वैज्ञानिक रहस्योंको जान सकेगा और उसके अन्तःकरणमें प्रचलित साम्प्रदायिक ग्रन्थोंसे जैसा विरोध उदय होता है, वैसा नहीं होगा और वह परमशान्तिका अधिकारी हो सकेगा। सन्न्यास-गीतामें सब सम्प्रदायोंके साधु और सन्यासियोंके लिये सब जानने योग्य विषय सन्निविष्ट हैं। सन्न्यासिगण इसके पाठ करनेसे विशेष ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। गृहस्थोंके लिये भी यह ग्रन्थ धर्म्म-ज्ञानका भाण्डार है। श्रीमहामण्डलप्रकाशित गुरुगीताके सदृश ग्रन्थ आज तक किसी भाषामें प्रकाशित नहीं हुआ है। इसमें गुरु-शिष्य-लक्षण, उपासनाका रहस्य और भेद, मन्त्र, हठ, लय और राजयोगोंके लक्षण और अङ्ग एवं गुरुमाहात्म्य, शिष्यकर्तव्य, परम तत्वका स्वरूप और गुरुशब्दार्थ आदि सब विषय स्पष्टरूपसे हैं। मूल, स्पष्ट सरल और सुमधुर भाषानुवाद और वैज्ञानिक टिप्पणी सहित यह ग्रन्थ छपा है। गुरु और शिष्य दोनोंका उपकारी यह ग्रन्थ है। इसका अनुवाद बंगभाषामें भी छप चुका है। पाठक इन सातों गीताओंको मंगाकर देख सकते हैं, ये छप चुकी हैं। विष्णुगीताका मूल्य ।।।) सूर्यगीताका मूल्य ।।) शक्तिगीताका मूल्य ।।।) धीशगीताका मूल्य ।।) शंभुगीताका मूल्य ।।।) सन्न्यासगीताका मूल्य ।।।) और गुरुगीताका मूल्य ।) है। इनमेंसे पञ्चोपासनाकी पांच गीताओंमें एक एक तीन रंगा विष्णुदेव सूर्य्यदेव भगवती और गणपतिदेव तथा शिवजीका चित्र भी दिया गया है। इनके अतिरिक्त शम्भुगीतामें प्रकाशित वर्णाश्रमबन्ध नामक अद्भुत और अपूर्व्व चित्र भी सर्वसाधारणके देखने योग्य है।

धार्मिक विश्वकोष।

(श्रीधर्मकल्पद्रुम)

यह हिन्दुधर्म्मका अद्वितीय और परमावश्यक ग्रन्थ है। हिन्दू जातिकी पुनरुन्नतिके लिये जिन जिन आवश्यकीय विषयोंकी ज़रूरत है, उनमेंसे सबसे बड़ी भारी ज़रूरत एक ऐसे धर्म्मग्रन्थकी थी कि, जिसके अध्ययन-अध्यापनके द्वारा सनातनधर्मका रहस्य और उसका विस्तृत स्वरूप तथा उसके अङ्ग उपांगोंका यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो सके और साथ ही साथ वेदों और सब शास्त्रोंका आशय तथा वेदों और सब शास्त्रोंमें कहे हुए विज्ञानोंका यथाक्रम स्वरूप

जिज्ञासुको भलीभाँति विदित हो सके। इसी गुरुतर अभावको दूर करनेके लिये भारतके प्रसिद्ध धर्मवक्ता और श्रीभारतधर्म्म-महामण्डलस्थ उपदेशक महाविद्यालयके दर्शनशास्त्रके अध्यापक श्रीमान् स्वामी दयानन्दजीने इस ग्रन्थका प्रणयन करना प्रारम्भ किया है। इसमें वर्त्तमान समयके आलोच्य सभी विषय विस्तृत-रूपसे दिये जायंगे। अबतक इसके छः खण्डोंमें जो अध्याय प्रकाशित हुए हैं वे ये हैं:—धर्म्म, दानधर्म्म, तपोधर्म, कर्मयज्ञ, उपासनायज्ञ, ज्ञानयज्ञ, महायज्ञ, वेद, वेदाङ्ग, दर्शनशास्त्र (वेदोपाङ्ग) स्मृतिशास्त्र, पुराणशास्त्र, तन्त्रशास्त्र, उपवेद, ऋषि और पुस्तक, साधारण धर्म्म और विशेष धर्म्म, वर्णधर्म्म, आश्रमधर्म्म, नारीधर्म (पुरुषधर्म्मसे नारीधर्म्मकी विशेषता), आर्यजाति, समाज और नेता, राजा और प्रजाधर्म्म, प्रवृत्तिधर्म्म और निवृत्तिधर्म्म, आपद्धर्म, भक्ति और योग, मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग, राजयोग, गुरु और दीक्षा, वैराग्य और साधन, आत्मतत्त्व, जीवतत्त्व, प्राण और पीठतत्त्व, सृष्टिस्थितिप्रलयतत्त्व, ऋषि देवता और पितृतत्त्व, अवतारतत्त्व, माया तत्त्व, त्रिगुणतत्त्व, त्रिभावतत्त्व, कर्मतत्त्व, मुक्तितत्त्व, पुरुषार्थ और वर्णाश्रमसमीक्षा, दर्शनसमीक्षा, धर्मसम्प्रदायसमीक्षा, धर्मपन्थसमीक्षा और धर्ममत समीक्षा। आगेके खण्डोंमें प्रकाशित होनेवाले अध्यायोंके नाम ये हैं:—साधनसमीक्षा, चतुर्दशलोकसमीक्षा, कालसमीक्षा, जीवन्मुक्ति-समीक्षा, सदाचार, पञ्च महायज्ञ, आह्निककृत्य, षोडश संस्कार, श्राद्ध, प्रेतत्व और परलोक, सन्ध्या, तर्पण, ओंकार-महिमा और गायत्री, भगवन्नाम-माहात्म्य, वैदिक मन्त्रों और शास्त्रोंका अपलाप, तीर्थ महिमा, सूर्य्यादिग्रहपूजा, गोसेवा, संगीत-शास्त्र, देश और धर्मसेवा इत्यादि इत्यादि। इस ग्रन्थसे आज कलके अशास्त्रीय और विज्ञानरहित धर्मग्रन्थों और धर्मप्रचारके द्वारा जो हानि हो रही है, वह सब दूर होकर यथार्थ रूपसे सनातनवैदिकधर्मका प्रचार होगा। इस ग्रन्थरत्नमें साम्प्रदायिक पक्षपातका लेश मात्र भी नहीं है और निष्पक्षरूपसे सब विषय प्रतिपादित किये गये हैं, जिससे सकल प्रकारके अधिकारी कल्याण प्राप्त कर सकें। इसमें और भी एक विशेषता यह है कि, हिन्दुशास्त्रके सभी विज्ञान शास्त्रीय प्रमाणों और युक्तियोंके सिवाय, आज कलकी पदार्थ विद्या (Science) के द्वारा भी प्रतिपादित किये गये

हैं, जिससे आज कलके नवशिक्षित पुरुष भी इससे लाभ उठा सकें। इसकी भाषा सरल, मधुर और गम्भीर है। यह ग्रंथ चौसठ अध्याय और आठ समुल्लासोंमें पूर्ण होगा और यह बृहत् ग्रन्थ रायल साइजके चार हजार पृष्ठोंसे अधिक होगा, तथा बारह खण्डोंमें प्रकाशित होगा। इसीके अन्तिम खण्डमें आध्यात्मिक शब्दकोष भी प्रकाशित करनेका विचार है। इसके छः खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं। प्रथम खण्डका मूल्य २) द्वितीयका १॥), तृतीयके द्वितीय संस्करणका २), चतुर्थका २) पञ्चमका २) और षष्ठका १॥) हैं। इसके प्रथम दो खण्ड बढ़िया कागज पर भी छापे गये हैं और दोनों ही एक बहुत सुन्दर जिल्दमें बांधे गये हैं। मूल्य ५) है। सातवाँ खण्ड यन्त्रस्थ है।

मैनेजर, निगमागम बुक्डिपो,
भारतधर्मसिण्डिकेट भवन, स्टेशनरोड जगत्गंज, बनारस (शहर)

श्रीरामगीता।

यह सर्व जीवहितकर उपनिषद् ग्रन्थ अबतक अप्रकाशित था। श्रीमहर्षि वशिष्ठकृत 'तत्त्व सारायण' नामक एक विराट ग्रंथ है, उसीके अन्तर्गत यह गीता है। इसके १८ अध्याय हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं, १-ब्रह्माण्डपादिवर्णन, २-प्रमाणसारविवरण, ३-ज्ञानयोगनिरूपण, ४-जीवन्मुक्तिनिरूपण, ५-विदेहमुक्तिनिरूपण, ६-वासनाक्षयादिनिरूपण, ७-सप्तभूमिकानिरूपण, ८-समाधिनिरूपण, ९ वर्णाश्रमव्यवस्थापन, १०-कर्मविभागयोगनिरूपण, ११-गुणत्रयविभागयोगनिरूपण, १२-विश्वरूपनिरूपण, १३-तारकप्रणवविभागयोग, १४-महावाक्यार्थविवरण, १५-नवचक्रविवेकयोगनिरूपण, १६-अणिमादिसिद्धिदूषण, १७-विद्यासन्ततिगुरुतत्त्वनिरूपण, १८-सर्वाध्यायसङ्गतिनिरूपण। कर्म, उपासना और ज्ञानका अद्भुत सामञ्जस्य इस ग्रन्थमें दिखाया गया है। विषयोंके स्पष्टीकरणके लिये ग्रन्थमें ७ त्रिवर्ण चित्र भी दिये गये हैं। वे इस प्रकार हैं—१ श्री राम, सीतामाता, वीर लक्ष्मण, २—श्री राम, लक्ष्मण और जटायु, ३—श्रीराम, सीता और हनूमान्, ४—बृहत् श्रीरामपञ्चायतन, ५—श्रीसीताराम, ६—श्रीरामपञ्चायतन, ७—श्रीराम

हनूमान्। इनके सिवाय इसके सम्पादक स्वर्गीय श्रीदरबार महारावल बहादुर डूँगरपुर नरेश महोदयका भी हाफ टोन चित्र छापा गया है। बढ़िया कागज़ पर सुन्दर छपाई और मजबूत जिल्दबन्दी भी हुई है। स्वर्गीय महारावल बहादुरने बड़े परिश्रमसे इस ग्रन्थका सरल हिन्दी भाषामें अनुवाद किया है और उनके पूज्यपाद गुरुदेवने अति सुन्दर वैज्ञानिक टिप्पणियाँ लिखकर ग्रंथको सर्वाङ्ग सुन्दर बनाया है। ग्रन्थके प्रारम्भमें जो भूमिका दी गई है, उसमें श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रकी समालोचना अलौकिक रीति पर की गई है, जिसके पढनेसे पाठक कितनेही गूढ़ रहस्योंका परिचय पा जायंगे। आज तक ऐसा ग्रन्थ प्रकाशित न होनेसे यह अप्राप्य और अमूल्य है। आशा है, सर्व साधारण इसका संग्रह कर नित्यपाठ कर और इसमें उल्लिखित तत्त्वोंका चिन्तन कर कर्म, उपासना और ज्ञानके अद्भुत सामञ्जस्यका अलभ्य लाभ उठावेंगे और श्रीभारतधर्म-महामण्डलके शास्त्रप्रकाशक विभागको अनुगृहीत करेंगे। मूल्य२॥)

अंग्रेजी भाषाके धर्म्मग्रन्थ।

श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल-शास्त्रप्रकाशक विभाग द्वारा प्रकाशित सब संहिताओं गीताओं और दार्शनिक ग्रन्थोंका अंग्रेजी अनुवाद तयार हो रहा है जो क्रमशः प्रकाशित होगा। सम्प्रति अंग्रेजी भाषामें एक ऐसा ग्रंथ छप गया है जिसके द्वारा सब अंग्रेजी पढ़े व्यक्तियोंको सनातनधर्मका महत्त्व, उसका सर्वजीवहितकारी स्वरूप, उसके सब अङ्गोंका रहस्य, उपासनातत्त्व, योगतत्त्व, काल और सृष्टितत्त्व, कर्म्मतत्त्व, वर्णाश्रमधर्मतत्त्व इत्यादि सब बड़े बड़े विषय अच्छी तरह समझमें आ जावें। इसका नाम "वर्ल्ड्स इटरनल रिलिजन" है। इसका मूल्य रायलएडीशनका ५) और साधारणका ३) है। दोनोंमें जिल्द बंधी हुई है और सात त्रिवर्ण चित्र भी दिये हैं।

विविध विषयोंकी पुस्तकें।

असस्यरमणी =) आनन्द रघुनन्दन नाटक॥) आचारप्रबन्ध १) इङ्गलिशग्रामर।) उपन्यास कुसुम ≡) कल्किपुराण उर्दू॥) कार्तिकप्रसादकी जीवनी =) काशीमुक्ति विवेक।=) गोवंशचिकित्सा।) दुर्गेशनन्दिनी द्वितीय भाग।=) धनुर्वेद संहिता।) पारिवारिक प्रबन्ध १) प्रयाग-माहात्स्य॥=) प्रवासी =) बारहमासी -) मानस

मञ्जरी ।) मङ्गलदेव पराजय =) रागरत्नाकर २) रामगीता ≡) वीरबाला ॥।) वैष्णवरहस्य)॥ शास्त्रीजीके दो व्याख्यान ॥=) सार-मञ्जरी ।) सिद्धान्तकौमुदी २) क्षत्रियहितैषिणी ˉ)

नोट-पचीस रुपयोंसे अधिककी पुस्तक खरीदनेवालेको योग्य कमीशनी भी दिया जायगा ।

शीघ्र छपने योग्य ग्रन्थ--हिन्दी साहित्यकी पुष्टिके अभिप्रायसे तथा धर्मप्रचारकी शुभ वासनासे निम्नलिखित ग्रन्थ छापनेको तैयार हैं। यथाः-भरद्वाजकृत कर्ममीमांसादर्शनके भाषाभाष्यका प्रथम खंड, सांख्यादर्शनका भाषाभाष्य; अतोत्सवचन्द्रिका नित्यकर्मचन्द्रिका ।

मैनेजर, निगमागम बुक्डीपो

भारतधर्मसिण्डिकेटभवन, स्टेशनरोड जगत्‌गंज बनारस (शहर)

श्रीमहामण्डलस्थ उपदेशक-महाविद्यालय ।

श्रीभारतधर्ममहामण्डल प्रधानकार्य्यालय काशीमें साधु और गृहस्थ धर्मवक्ता प्रस्तुत करनेके अर्थ श्रीमहामण्डल उपदेशक महाविद्यालय नामक विद्यालय स्थापित हुआ है। इसमें उपयुक्त छात्रावास और छात्रवृत्तिका भी प्रबन्ध है जो साधुगण दार्शनिक और धर्मसम्बन्धी ज्ञानलाभ करके अपने साधु जीवनको कृतकृत्य करना चाहें और जो विद्वान् गृहस्थ धार्मिक शिक्षा लाभ करके धर्म-प्रचार द्वारा देशकी सेवा करते हुए अपना जीवन निर्वाह करना चाहें वे निम्नलिखित पते पर पत्र भेजें।

प्रधानाध्यक्ष, श्रीभारतधर्ममहामण्डल, प्रधान कार्यालय,
जगत्‌गंज, बनारस (छावनी)।

श्रीभारतधर्म्म महामण्डलमें नियमित धर्मचर्चा ।

श्रीभारतधर्ममहामण्डल धर्मपुरुषार्थमें जैसा अग्रसर हो रहा है, सर्वत्र प्रसिद्ध है। मण्डलके अनेक पुरुषार्थोंमें 'उपदेशक महाविद्यालय' की स्थापना भी गणना करने योग्य है। अच्छे धार्मिक वक्ता इसमें निर्माण हुए, होते हैं और होते रहेंगे, ऐसा इसका प्रबन्ध हुआ है। अब इसमें दैनिक पाठ्यक्रमके अतिरिक्त यह भी प्रबन्ध

हुआ है कि, रात्रिके समय महीनेमें दस दिन व्याख्यान-शिक्षा, दस दिन शास्त्रार्थ-शिक्षा और दस दिन संगीत-शिक्षा भी दी जाया करे। वक्तृताके लिये संगीतका साधारण ज्ञान होना आवश्यक है और इस पंचम वेदका (शुद्ध संगीतका) लोप हो रहा है। इस कारण व्याख्यान और शास्त्रार्थ-शिक्षाके साथ संगीत-शिक्षाका भी समावेश किया गया है। सर्वसाधारण भी इस धर्मचर्चामें यथासमय उपस्थित होकर लाभ उठा सकते हैं।

निवेदक—सेक्रेटरी महामण्डल,
जगत्‌गंज, बनारस।

हिन्दू धार्मिक विश्वविद्यालय।

(श्री शारदामण्डल)

हिन्दूजातिकी विराट् धर्म्मसभा श्रीभारतधर्म्ममहामण्डलका यह विद्यादान विभाग है। वस्तुतः हिन्दूजातिके पुनरभ्युदय और हिन्दूधर्म्मकी शिक्षा सारे भारतवर्षमें फैलानेके लिये यह विश्वविद्यालय स्थापित हुआ है। इसके प्रधानतः निम्न लिखित पाँच कार्य विभाग हैं।

(१) श्री उपदेशक महाविद्यालय (हिन्दू कालेज ओफ डिविनिटी) इस महाविद्यालयके द्वारा योग्य धर्मशिक्षक और धर्मोपदेशक तैयार किये जाते हैं। अंग्रेजी भाषाके बी० ए० पास अथवा संस्कृत भाषाके शास्त्री आचार्य्य आदि परीक्षाओंकी योग्यता रखनेवाले पण्डित ही छात्ररूपसे इस महाविद्यालयमें भरती किये जाते हैं। छात्रवृत्ति २५) माहवार तक दी जाती है।

(२) धर्मशिक्षाविभाग। इस विभागके द्वारा भारतवर्षके प्रधान प्रधान नगरोंमें ऊपर लिखित महाविद्यालयसे परीक्षोत्तीर्ण एक एक पण्डित स्थायीरूपसे नियुक्त करके उक्त नगरोंके स्कूल, कालेज और पाठशालाओंमें हिन्दूधर्मकी धार्मिक शिक्षा देनेका प्रबन्ध किया जाता है। वे पण्डितगण उन नगरोंमें सनातनधर्मका प्रचार भी करते रहते हैं। ऐसा प्रबन्ध किया जा रहा है कि जिससे महामण्डलके प्रयत्नसे सब बड़े बड़े नगरोंमें इस प्रकार धर्मकेन्द्र स्थापित हों और वहां मासिक सहायता भी श्रीमहामण्डलकीओरसे दी जाय।

(३) श्रीआर्य्यमहिलामहाविद्यालय भी इसी शारदामण्डलका अंग समझा जायगा और इस महाविद्यालयमें उच्च जातिकी विधवाओंके पालन पोषणका पूरा प्रवन्ध करके उनको योग्य धर्मोपदेशिका, शिक्षयित्री और गवर्नेस आदिके काम करनेके उपयोगी बनाया जायगा।

(४) सर्व्वधर्मसदन (हाल आफ आल रिलिजन्स) इस नामसे यूरोपीय महायुद्धके स्मारक रूपसे एक संख्या स्थापित करनेका प्रवंध हो रहा है। यह संस्था श्रीमहामण्डलके प्रधान कार्य्यालय तथा उपदेशक महाविद्यालयके निकट ही स्थापित होगी। इस संस्थाके एक ओर सनातन धर्मके अतिरिक्त सब प्रधान प्रधान धर्ममतोंके उपासनालय रहेंगे जिनमें उक्त धर्म्मोंके जाननेवाले एक एक विद्वान् रहेंगे। दूसरी ओर सनातनधर्मके पञ्चोपासनाके पाँच देवस्थान और लीलाविग्रह उपासना आदिके देवमन्दिर रहेंगे। इसी संस्थामें एक वृहत् पुस्तकालय रहेगा कि जिसमें पृथिवी भरके सब धर्ममतोंके धर्मग्रंथ रक्खे जायँगे और इसी संस्थासे संश्लिष्ट एक व्याख्यानालय और शिक्षालय (हाल) रहेगा जिसमें उक्त विभिन्न धर्मोंके विद्वान् तथा सनातन धर्मके विद्वान्गण यथाक्रम व्याख्यानादि देकर धर्मसम्बन्धीय अनुसन्धान तथा धर्मशिक्षा—कार्य्यकी सहायता करेंगे। यदि पृथिवीके अन्य देशोंसे कोई विद्वान् काशीमें आकर इस सर्वधर्मसदनमें दार्शनिक शिक्षा लाभ करना चाहेगा तो उसका भी प्रवन्ध रहेगा।

(५) शास्त्रप्रकाशक विभाग। इस विभागका कार्य स्पष्ट ही है। इस विभागसे धर्मशिक्षा देनेके उपयोगी नाना भाषाओंकी पुस्तकें तथा सनातनधर्मकी सब उपयोगी मौलिक पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं और होंगी।

इस प्रकारसे पाँच कार्य्यविभाग और संस्थाओंमें विभक्त होकर श्रीशारदामण्डल सनातनधर्मावलम्बियोंकी सेवा और उन्नति करनेमें प्रवृत्त रहेगा।

प्रधान मंत्री
श्रीभारतधर्म महामण्डल,
प्रधान कार्यालय, बनारस।

आर्यजातिकी वास्तविक उन्नति।

अनन्तकालसे यह आर्य्यजाति अपने स्वरूपमें विद्यमान है। इस जातिके देखते देखते पृथिवीकी कितनी ही मनुष्य जातियाँ थोड़े समयमें ही कालसमुद्रमें डूबकर अपनी सत्ता खो बैठीं। इसकी निद्रावस्थामें ही कितनी जातियाँ आईं और कितनी चली गईं और यह अबतक भी इस घोर कलिकालमें अपनी रक्षा करती चली जा रही है—इसका कारण केवल शिक्षा है। पहले इस जातिकी शिक्षा-प्रणाली ऐसी सुधरी हुई थी कि, यवनकालमें सैकड़ों हृदयविदारक घोर अत्याचार होनेपर भी इसका बाल बांका नहीं हो सका। परन्तु आश्चर्य्य है कि, आज अनायास ही यह जाति विजातीय धारा-प्रवाहमें बहती चली जा रही है। वास्तविकमें किसी जातिका रहना या न रहना उसकी शिक्षा ही पर निर्भर है। शिक्षाके ही प्रभावसे विदेशीय अनेक जातियोंकी सत्ता नष्ट हो चुकी है,—इसका प्रत्यक्ष प्रमाण पाश्चात्य इतिहास दे रहा है। आजकल भी जो यह जाति विदेशीय प्रवाहमें बहती है, विचार करनेपर पता लगेगा कि, इसका कारण भी शिक्षा ही है। आर्य्यजातिके दुर्भाग्य-वश किसी स्कूल-कालेज, हिन्दी या संस्कृत विद्यालय कहीं भी इस धर्मप्राण आर्य्यजातिकी धार्मिकशिक्षाका प्रबन्ध कुछ भी नहीं है। यह सौभाग्यकी बात है कि, श्रीभारतधर्ममहामण्डल, स्कूल कालेजों-में आर्य्यजातिको धार्मिक शिक्षा देनेका प्रबन्ध कर रहा है। इसके लिये उपयुक्त ग्रंथ अंग्रेजी, हिन्दी और अन्यान्य भाषाओंमें भी तैयार कर चुका है। निम्नलिखित पुस्तकें कालेज, स्कूल, हिन्दी और संस्कृत पाठशालाओंमें धर्मशिक्षा देनेके लिये कैसी पर्याप्त हैं, सो निम्नलिखित सूचीके पाठ करनेसे ही विदित होगा।

(१) वर्ल्डस इटरनल रिलिजन—यह सम्प्रति अंग्रेजी भाषामें एक ऐसा ग्रन्थ छप गया है, जिसके द्वारा सब अंग्रेजी पढ़े व्यक्तियोंको सनातनधर्मका महत्त्व, उसका सर्वजीव हितकारी स्वरूप उसके सब अङ्गोंका रहस्य, उपासनातत्त्व, योगतत्त्व, काल और सृष्टि-तत्त्व, कर्मतत्त्व, वर्णाश्रमधर्मतत्त्व इत्यादि सब बड़े २ विषय अच्छी तरह समझमें आ जावेंगे। इसका मूल्य राजसंस्करणका ५) और

साधारण संस्करणका ३) है। अंग्रेजी भाषामें आजतक सनातन-धर्मका कोई भी ग्रंथ ऐसा प्रकाशित नहीं हुआ था। ८ त्रिवर्ण चित्र भी इसमें दिये गये हैं।

(२) प्रवीण दृष्टिमें नवीन भारत---यह पुस्तक प्रकाशित हो गयी। नामसे ही इसका गुण प्रकाशित है। मूल्य २)

(३) साधनचन्द्रिका---इसमें मंत्रयोग, हठयोग, लययोग और राजयोग इन चारों योगोंका संक्षिप्त परन्तु अति सुन्दर वर्णन किया गया है। मूल्य १।।)

(४) शास्त्रचन्द्रिका---यह ग्रन्थ हिन्दुशास्त्रोंकी बातें दर्पणवत् प्रकाशित करनेवाला है। [यन्त्रस्थ]

(५) धर्मचन्द्रिका---एन्ट्रेन्स क्लासके बालकोंके पाठनोपयोगी उत्तम धर्म-पुस्तक है। इसमें सनातनधर्मका उदार सार्वभौम स्वरूप-वर्णन, यज्ञ, दान, तप आदि धर्माङ्गोंका विस्तृत वर्णन, वर्णधर्म, आश्रमधर्म, नारीधर्म, आर्य्यधर्म, राजधर्म तथा प्रजाधर्मके विषयमें बहुत कुछ लिखा गया है। कर्म-विज्ञान, सन्ध्या, पञ्च महायज्ञ आदि नित्यकर्मोंका वर्णन, षोडश संस्कारोंके पृथक् पृथक् वर्णन और संस्कारशुद्धि तथा क्रियाशुद्धि द्वारा मोक्षका यथार्थ मार्ग निर्देश किया गया है। इस ग्रन्थके पाठसे छात्रगण धर्मतत्त्व अवश्य ही अच्छी तरहसे जान सकेंगे। मूल्य १)

(६) नवीन दृष्टिमें प्रवीण भारत---भारतका प्राचीन गौरव और आर्यजातिका महत्त्व जाननेके लिये यह एक ही पुस्तक है। इसका द्वितीय संस्करण परिवर्द्धित और सुन्दर होकर छप चुका है। मूल्य १)

(७) आचारचन्द्रिका---यह भी स्कूलपाठ्य, सदाचार-सम्बन्धीय धर्मपुस्तक है। इसमें प्रातः कालसे लेकर रात्रिमें निद्राके पहले तक क्या क्या सदाचार किसलिये प्रत्येक हिन्दुस्तानीको अवश्य पालने चाहिये, इसका रहस्य उत्तम रीतिसे बताया गया है और आधुनिक समयके विचारसे प्रत्येक आचार पालनका

वैज्ञानिक कारण भी दिखाया गया है। यह ग्रन्थ बालकोंके लिये अवश्य ही पाठ करने योग्य है। मूल्य ॥)

(८) नीतिचन्द्रिका---इस ग्रन्थमें नीतिकी मार्मिक बातोंका भली भाँति वर्णन किया गया है। बीच २ में संस्कृत श्लोकोंके हिन्दी भाषामें मनोहर अनुवाद भी दिये गये हैं। मूल्य ॥)

(९) चरित्रचन्द्रिका---इस ग्रन्थमें पौराणिक ऐतिहासिक और आधुनिक महापुरुषोंके सुन्दर मनोहर विचित्र चरित्र वर्णित हैं।

[१०] धर्म्मसोपान-- यह धर्म्मशिक्षा विषयक बड़ी उत्तम पुस्तक है। बालकोंको इसमें धर्मका साधारण ज्ञान भली भाँति हो जाता है। यह पुस्तक क्या बालक बालिका, क्या वृद्ध, स्त्री, पुरुष सबके लिये बहुत ही उत्तम है। धर्मशिक्षा पानेकी इच्छा करनेवाले सज्जन अवश्य इस पुस्तकको मँगावें। मूल्य ।) चारआना।

[११) धर्मप्रश्नोत्तरी—सनातनधर्मके प्रायः सब सिद्धान्त अति संक्षिप्तरूपसे इस पुस्तिकामें लिखे गये हैं। प्रश्नोत्तरीकी प्रणाली ऐसी सुन्दर रक्खी गई है कि, छोटे बच्चे भी धर्मतत्त्वोंको भली भाँति हृदयङ्गम कर सकेंगे। भाषा भी अति सरल है। कागज और छपाई बढ़ियाँ होनेपर भी मूल्य केवल ।) मात्र है।

[१२] सदाचारसोपान—यह पुस्तक कोमलमति बालक बालिकाओंके धर्मशिक्षाके लिये प्रथम पुस्तक है। उर्दू और बंगला भाषामें इसका अनुवाद होकर छपचुका है और सारे भारतवर्षमें इसकी बहुत कुछ उपयोगिता मानी गई है। इसकी पांच आवृत्तियाँ छपचुकी हैं। अपने बच्चोंकी धर्मशिक्षाके लिये इस पुस्तकको हर एक हिन्दूको मँगवाना चाहिये। मूल्य -)

पता—

मैनेजर, निगमागम बुकडिपो

भारतधर्म सिंडिकेट भवन, स्टेशनरोड, जगत्गञ्ज, बनारस।

श्रीभारतधर्म्ममहामण्डलके सभ्यगण और मुखपत्र।

श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल प्रधान कार्य्यालय काशीसे एक हिन्दी भाषाका और दूसरा अंग्रेजी भाषाका, इस प्रकार दो मासिक-पत्र प्रकाशित होते हैं, एवं श्रीमहामण्डलके अन्यान्य भाषाओंके मुखपत्र श्रीमहामण्डलके प्रान्तीय कार्य्यालयोंसे प्रकाशित होते हैं। यथाः-फिरोजपुर (पञ्जाब) के कार्य्यालयसे उर्दू भाषाका मुखपत्र और मेरठ और कानपुरके कार्य्यालयोंसे हिन्दी भाषाके मुखपत्र।

श्रीमहामण्डलके पांच श्रेणीके सभ्य होते हैं, यथाः-स्वाधीन नरपति और प्रधान प्रधान धर्म्माचार्य्यगण संरक्षक होते हैं। भारतवर्षके सब प्रान्तोंके बड़े बड़े ज़मींदार, सेठ, साहुकार आदि सामाजिक नेतागण उस उस प्रान्तके चुनावके द्वारा प्रतिनिधि सभ्य चुने जाते हैं। प्रत्येक प्रान्तके अध्यापक ब्राह्मणगणमेंसे उस उस प्रान्तीय मण्डलके द्वारा चुने जाकर धर्म्मव्यवस्थापक सभ्य बनाये जाते हैं। भारतवर्षके सब प्रान्तोंसे पांच प्रकारके सहायक सभ्य लिये जाते हैं, विद्यासम्बन्धी कार्य करनेवाले सहायक सभ्य, धर्म-कार्य्य करनेवाले सहायक सभ्य, महामण्डल, प्रान्तीयमण्डल और शाखासभाओंको धनदान करनेवाले सहायक सभ्य, विद्यादान करने वाले विद्वान् ब्राह्मण सहायक सभ्य और धर्म्मप्रचार करनेवाले साधु संन्यासी सहायक सभ्य। पाँच श्रेणीके सभ्य साधारण सभ्य होते हैं जो हिन्दुमात्र हो सकते हैं। हिन्दु कुलकामिनीगण केवल प्रथम तीन श्रेणीकी सहायक सभ्या और साधारणःसभ्या हो सकती हैं। इन सब प्रकारके सभ्यों और श्रीमहामण्डलके प्रान्तीय मण्डल, शाखा सभा और संयुक्त सभाओंको श्रीमहामण्डलका हिन्दी अथवा अंग्रेज़ी भाषाका मासिकपत्र विना मूल्य दिया जाता है। नियमितरूपसे नियत वार्षिक चन्दा २।) दो रुपये आठ आने आमदनी देनेपर हिन्दू नरनारी साधारण सभ्य हो सकते हैं। साधारण सभ्योंको विना मूल्य मासिकपत्रिकाके अतिरिक्त उनके उत्तराधिकारियोंको समाज हितकारी कोषके द्वारा विशेष लाभ मिलता है।

प्रधानाध्यक्ष, श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल, प्रधानकार्य्यालय।

जगत्‌गंज, बनारस।

आर्यमहिलामहाविद्यालयकी नियमावली।

(१) आर्यमहिलाओंमें तथा हिन्दू-अन्तःपुरोंमें सनातनधर्मका प्रचार, आर्यसदाचारका विस्तार, धर्मशिक्षादान और स्वदेश तथा स्वजातिप्रेमकी जागृतिके उद्देश्यसे धर्मप्रचारिकाएँ, शिक्षयित्रियां और बालप्रतिपालिकाएँ (Governess) प्रस्तुत करनेके लिये श्रीकाशीपुरीमें यह आर्यमहिलामहाविद्यालय स्थापित रहेगा।

(२) वर्णाश्रमको माननेवाली ब्राह्मण तथा उच्च जातिकी विधवायें इस महाविद्यालयमें भर्त्ती की जायँगी। विशेष कारण होनेपर उच्चकुलकी सधवा, अथवा कुमारी स्त्रियां भी भर्त्ती की जायँगी।

(३) इस महाविद्यालयसे संरक्षित एक विधवाश्रम रहेगा। जिसमें साधारणतः उच्चजातिकी विधवायें अर्थात् जिस जातिमें विधवाविवाह अधर्म समझा जाता है, ली जायँगी। यह विधवाश्रम आर्यमहिलामहाविद्यालयका पोषक भी समझा जायगा। इसमें साधारण तौरपर हिन्दी भाषा, धर्म तथा शिल्पादिकी शिक्षा दी जायगी।

(४) विशेष विभाग, जो कि नं० १ और २ के अनुसार स्थापित किया जायगा, उसमें भर्त्ती होनेकी योग्यता निम्नलिखित होगी:—

(क) धर्मप्रचारिका-श्रेणीमें केवल ब्राह्मण-विधवायें ली जायंगी।

(ख) शिक्षयित्री-श्रेणी तथा बालप्रतिपालिका-श्रेणीमें सब उच्चजातिकी विधवायें ली जा सकेंगी, जिनमें विधवाविवाहका होना अधर्म समझा जाता है।

(ग) इस विशेष विभागमें भर्त्ती होनेवाली सब आर्यमहिलाओंको एक विशेष धर्मप्रतिज्ञा पत्रपर दस्तख़त करके आजीवन धर्म और देशसेवाके व्रतको धारण करना होगा।

(घ) किसी प्रादेशिक भाषा अथवा हिन्दीमें कुछ ज्ञान पहलेसे रहना आवश्यक होगा। संस्कृतका बोध रहे, तो वह आदरणीय होगी।

(४) महाविद्यालयमें जबतक उक्त विधवायें पढ़ेंगी, तबतक उनको महाविद्यालय तथा आर्य्यमहिलामहापरिषद्की नियमावली माननी होगी और पाठ समाप्त करके धर्मकार्य करनेके समय श्रीभारतधर्ममहामण्डल तथा आर्य्यमहिलामहापरिषद्के नियम और उपनियमोंके अनुसार उनको कार्य करना होगा।

(५) विधवाश्रममें केवल भोजन वस्त्रके लायक सहायता दी जायगी और विशेष विभागमें योग्यतानुसार ८) से २०) तक मासिक वृत्ति दी जायगी। जबतक वे परीक्षाकोटिमें रहेंगी, तब तक इससे कम वृत्ति दी जायगी।

(६) महाविद्यालयकी पाठ समाप्तिके अनन्तर जो महिलाएं केवल स्वधर्म, स्वजाति और स्वदेशकी सेवाके लिये प्रधान कार्यालय काशीमें रहकर शुभ धर्मव्रतका पालन करेंगी, उनके आजीवन तीर्थवासका तथा उनका अन्यान्य सब खर्च सभा उठावेगी और जो महिलाएं परीक्षोत्तीर्ण होनेके बाद बाहर वेतन लेकर कार्य करना चाहेंगी, उनके लिये योग्य वेतनपर कार्य ढूंढ़ कर दिया जायगा

(७) विधवाश्रममें रहनेका कोई समय नियत नहीं रहेगा। परन्तु महाविद्यालयमें शिक्षाका समय तीन वर्षसे सात वर्ष तकका होगा। उच्चशिक्षा चाहनेवाली आर्य्यमहिलाओंको और भी अधिक समय दिया जा सकेगा।

(८) विद्या, धर्मसेवा और कार्य्यपटुता आदि गुणावलीके विचारसे परीक्षोत्तीर्ण आर्य्यमहिलाओंको श्रीभारतधर्ममहामण्डलसे मानपत्र अथवा विद्या वा धर्मको उपाधि दिलाकर उत्साहित किया जायगा।

(९) महाविद्यालयकी आर्य्यमहिलाओंको सदाचार पालन, मर्यादापालन और धर्मव्रत पालनके विशेष विशेष नियमोंको पालन करना होगा। अवश्य ही ये सब नियम वर्णाश्रममर्यादा, स्वकुलमर्यादा और अपनी अपनी उपासना मर्यादाके विरुद्ध नहीं होंगे।

(१०) महाविद्यालयकी विद्यार्थिनियां महाविद्यालयके छात्रीनिवासमें रह सकेंगी, विधवाश्रममें रह सकेंगी अथवा काशीमें अन्यत्र भी रह सकेंगी।

(११) सब विद्यार्थिनियोंको नियमित रूपसे व्याख्यानश्रेणी, बैठकर परस्पर धर्मजिज्ञासाश्रेणी और सङ्गीत श्रेणीमें अवश्य शिक्षालाभ करना होगा।

(१२) हिन्दी भाषामें योग्यता लाभ करना सबके लिये अवश्य कर्त्तव्य होगा।

(१३) महाविद्यालयकी साधारण शिक्षापद्धतिमें निम्नलिखित विषय होंगे, अर्थात् प्रथमावस्थामें सबको निम्नलिखित विषयोंमें शिक्षालाभ करना होगाः—

(क) संस्कृत भाषा शिक्षा।
(ख) हिन्दी भाषा शिक्षा।
(ग) अंग्रेजी भाषाकी साधारण शिक्षा।
(घ) वक्तृताके द्वारा साधारण इतिहास शिक्षा।
(ङ) नकशेपर भूगोलकी साधारण शिक्षा।
(च) अङ्क शास्त्रकी साधारण शिक्षा।
(छ) धर्म सम्बन्धीय शिक्षा।
(ज) सङ्गीत विद्याकी साधारण शिक्षा।
(झ) नित्य कर्म उपासनादिकी शिक्षा।
(ञ) चिकित्सा विद्याकी साधारण शिक्षा।
(ट) देशकाल ज्ञानकी मौखिक शिक्षा।

(१४) महाविद्यालयकी विशेष शिक्षा पद्धतिमें निम्नलिखित विषय होंगेः—

(क) धर्मप्रचारिका विभागमें सप्त दर्शनोंकी शिक्षा, सब प्रकारके योगसाधनकी साधारण शिक्षा, वक्तृता देनेकी, बैठकर धर्म सिद्धान्त निर्णयकी विशेष शिक्षा और धर्मशास्त्रकी शिक्षा दी जायगी।

(ख) शिक्षयित्री विभागमें पढ़ानेकी शैलीकी शिक्षा, कारीगरी और शिल्प आदिकी शिक्षा, सङ्गीत शास्त्रकी शिक्षा, हिन्दी, संस्कृत और अंगरेजी भाषाओंकी विशेष शिक्षा और धर्मशास्त्रादिकी विशेष शिक्षा दी जायगी।

(ग) बालप्रतिपालिका (Governess) विभागमें ऊपर लिखित 'ख' विभागके सब विषयोंकी शिक्षा देनेके अतिरिक्त बालक

बालिकाओंके लालन पालन करनेकी रीतिकी शिक्षा, पाकप्रणालीकी विशेष शिक्षा, चिकित्सा विद्याकी विशेष शिक्षा, आचार तथा रीतिनीतिकी शिक्षा और अन्यान्य गृहकर्मकी शिक्षा दी जायगी।

(१५) व्याख्यान श्रेणीके साथ ही साथ ऐसा प्रवन्ध रहेगा कि, मौखिक उपदेश द्वारा महाविद्यालयकी आर्य्यमहिलाओंको नाना आवश्यकीय विषयोंकी शिक्षा दी जायगी।

(१६) सबको नियमित उपासना और योगादिका अधिकारानुसार शिक्षालाभ तथा अनुष्ठान करना होगा।

"आर्यमहिला"के नियम।

१—श्रीआर्य्यमहिलाहितकारिणी-महापरिषद्की मुखपात्रकाके रूपमें आर्य्यमहिला प्रकाशित होती है।

२—महापरिषद्की सब प्रकारकी सभ्या महोदयाओं और सभ्य महोदयोंको यह पत्रिका विना मूल्य दी जाती है। अन्य ग्राहकोंको ६) वार्षिक अग्रिम देनेपर प्राप्त होती है। प्रति संख्याका मूल्य १।।) है।

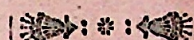
३—पुस्तकालयों (पब्लिक लाइब्रेरियों), वाचनालयों (रीडिंगरूमों) और कन्यापाठशालाओंको केवल ३) वार्षिक मूल्यमें दी जाती हैं।

४—योग्य लेखकको तथा लेखिकाओंको नियत पारितोषिक दिया जाता है और विशेष योग्य लेखकों तथा लेखिकाओंको अन्यान्य प्रकारसे भी सम्मानित किया जाता है।

५—हिन्दी लिखनेमें असमर्थ मौलिक लेखक लेखिकाओंके लेखोंका अनुवाद कार्यालयसे कराकर छापा जाता है।

पत्र व्यवहार सम्पादक 'आर्य्यमहिला' के नाम करना चाहिये।

श्रीभारतधर्ममहामंडलके सभ्यगण और मुखपत्र ।



श्रीभारतधर्ममहामण्डल प्रधान कार्य्यालय काशीसे एक हिन्दी भाषा और दूसरा अंग्रेजी भाषाका इस प्रकार दो एवं प्रान्तीय कार्यालयोंसे अन्यान्य भाषाओंके कई मासिकपत्र प्रकाशित होते हैं।

श्रीमहामण्डलके पाँच श्रेणीके सभ्य होते हैं। यथाः-स्वाधीन नरपति और प्रधान प्रधान धर्माचार्यगण संरक्षक होते हैं। भारतवर्षके सब प्रान्तोंके बड़े बड़े जमींदार सेठ साहूकार आदि सामाजिक नेता उस उस प्रान्तके चुनावके द्वारा प्रतिनिधि सभ्य चुने जाते हैं। प्रत्येक प्रान्तोंके अध्यापक ब्राह्मणोंमेंसे उस उस प्रान्तीय मण्डल द्वारा चुने जाकर धर्मव्यवस्थापक सभ्य बनाये जाते हैं। भारतवर्षके सब प्रान्तोंसे पांच प्रकारके सहायक सभ्य लिये जाते हैं, विद्यासम्बन्धीय सहायक सभ्य, धर्मकार्य्य करनेवाले सहायक सभ्य, महामंडल, प्रान्तीय मण्डल और शाखासभाओंको धनदान करनेवाले सहायक सभ्य, विद्वान् ब्राह्मण सहायक सभ्य और साधु संन्यासी सहायक सभ्य। पांचवीं श्रेणीके सभ्य साधारण सभ्य कहाते हैं जो २॥) वार्षिक देनेसे हिन्दू स्त्री-पुरुष हो सकते हैं। इन सब प्रकारके सभ्यों और श्रीमहामण्डलका प्रान्तीय मण्डल, शाखासभा और संयुक्त सभाओंको श्रीमहामण्डलका हिन्दी अथवा अंग्रेजी मासिकपत्र विना मूल्य दिया जाता है। इसके अतिरिक्त समाजहितकारीकोषके द्वारा उनके उत्तराधिकारियोंको विशेष लाभ मिलता है। पत्रव्यवहार इस पतेपर करें—

प्रधानाध्यक्ष,
श्रीभारतधर्ममहामण्डल, जगत्गञ्ज, काशी।

भारतधर्म ।

हिन्दुधर्म तथा हिन्दुजीवनमें जागृति उत्पन्न करनेवाला विविध विषय विभूषित उक्त राष्ट्रीय साप्ताहिक पत्र प्रति मङ्गलवारको प्रकाशित होता है। छपाई सुन्दर, कागज मोटा, कवर रंगीन, पृष्ठ १६, बँधाई उत्तम, लिखावट मनोहर, विषय उत्तेजक और ग्राहकसंख्या भरपूर होनेसे पाठक और विज्ञापनदाता दोनोंको इससे लाभ होगा। आज ही ग्राहकश्रेणीमें नाम लिखवाइये और विज्ञापन भेजिये। वार्षिक मूल्य केवल ३)

मैनेजर—

'भारतधर्म' बनारस सिटी।

इसे पढ़िये ।

इसी ग्रन्थकारका दूसरा ग्रन्थ "सती-चरित्र-चन्द्रिका" इस पतेसे मँगाकर पढ़िये :—

निगमागम बुकडिपो,

बनारस सिटी।

महाशक्ति ।

'भारतधर्म' के ही उद्देश्यसे उसी ढाँचेका यह अंग्रेजी साप्ताहिक पत्र प्रति शनिवारको प्रकाशित होता है। मूल्य केवल ६) वार्षिक। ग्राहक बनिये और विज्ञापन भेजिये।

मैनेजर—

'महाशक्ति' बनारस सिटी।